KHADIBOLI HINDI KAVYA ME PAURANIC PATRA
(1900 - 1960)

Thesis Submitted to

THE UNIVERSITY OF COCHIN

for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

RITTY JOSEPH M.

Prof: and Head of the Department

Dr. N. RAMAN NAIR

Supervisor

Dr. L. SUNEETHA BAI

DEPARTMENT OF HINDI

UNIVERSITY OF COCHIN

1985

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में पौराणिक पात्र (1900 - 1960)

कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में
पी-एच॰डी॰ की उपाधि केलिए प्रस्तुत शोधप्रबन्ध

रिट्टी जोसफ॰ एम॰

निर्देशक
डॉ॰ एम॰ सुनीता बाई
रीडर
हिन्दी विभाग,
कोचिन विश्वविद्यालय

कोचिन-22
1985

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by SMT. RITTY JOSEPH, M. under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
University of Cochin
COCHIN Pin 682022

Dr. L. SUNEETHA BAI
(Supervising Teacher)

ACKNOWLEDGEMENTS

This work was carried out in the Department of Hindi, University of Cochin, Cochin-22 during the tenure of scholarship awarded to me by the University of Cochin and the University Grants Commission. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin and the University Grants Commission for this kind help and encouragements.

Department of Hindi,
University of Cochin,
Cochin - 682 022.

RITTY JOSEPH. M.

পূর্ব্বকথন

प्राक्कथन

पुराणमित्येव न साधु सर्वं ।
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।।

प्रस्तुत कथन पौराणिक चरित्रों की आधुनिक व्याख्या के संदर्भ में युक्तियुक्त कहा जा सकता है । खड़ीबोली हिन्दी काव्य मूलत: पौराणिक साहित्य पर आधारित रहा है । भारतीय भाषाओं के समस्त साहित्य केलिए अपने सामने संस्कृत साहित्य की सम्पन्न विरासत रही है । इस विरासत का कविगण इच्छानुसार उपयोग भी करते आये हैं । संस्कृत के काव्य नाटकादि से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य किसी न किसी रूप में पौराणिक साहित्य का ऋणी रहा है । खड़ीबोली हिन्दी काव्य का विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि तत्कालीन समय के अधिकांश काव्यों का प्रेरणास्रोत भी प्राचीन भारतीय साहित्य याने संस्कृत साहित्य ही रहा है । इस समय पौराणिक विषयों को आधार बनाकर युगीन समस्याओं के विश्लेषण केलिए अनेक प्रबन्धकाव्यों का प्रणयन किया गया है । इन प्रबन्धकाव्यों के चरित्रों का विश्लेषण ही प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का विषय रहा है ।

पौराणिक चरित्रों के अध्ययन के संदर्भ में काव्यमीमांसा के प्रणेता राजशेखर की उक्ति विशेषतः स्मर्तव्य है -

इतिहासपुराणाभ्यां नेत्राभ्यामिव सत्कविः ।
विवेकाञ्जनशुद्धाभ्यां सूक्ष्ममप्यर्थमीक्षते ।।

आधुनिक हिन्दी कवियों ने बुद्धिवादी युग में जीवित रहकर पौराणिक कथानकों एवं चरित्रों का आधार लेकर विवेक रूपी अञ्जन से शुद्ध की हुई दृष्टि से ही अपने काव्यों की रचना की है । इस प्रक्रिया में अनेक चिर प्राचीन चरित्र चिर नवीन बन गये हैं । इन चरित्रों की युगानुकूल दृष्टि आलोच्य युग की विशेषता रही है ।

किसी भी काव्य के कथानक का मूल आधार चरित्र ही रहता है । खड़ीबोली हिन्दी काव्य की भी यही स्थिति रही । खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अन्तर्गत जितने ही प्रबन्ध काव्यों की सृष्टि हुई उनमें अधिकांश पौराणिक कथानकों पर आधारित रहे । इन काव्यों में न्यूनाधिक मात्रा में पौराणिक चरित्रों का भी समावेश मिलता है । ये चरित्र संख्या में अनेक हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध में इनमें से करीब चालीस पात्रों के चरित्र-विवेचन का प्रयास हुआ है जो सन् 1900-1960 तक के काव्यों में मिलते हैं ।

आधुनिक युग हिन्दी कविता का संक्रान्ति-युग रहा है । इस युग में जीवन के प्रतिमान बदल गए हैं । आधुनिक युग में भारतेन्दु के युग से ही परिवर्तन की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होने लगती है, द्विवेदी युग, छायावादी युग तथा प्रगतिवादी युग में इसका विकास होता है और प्रयोगवाद और नई कविता के युग में परिवर्तन का रूप पूर्णतया स्थिर हो जाता है ।

परिवर्तन और प्रयोग केलिए अधिक महत्व देने पर भी इस युग के काव्य में परम्परा की मात्रा भी कम नहीं है । इस विषय को लेकर अब तक बहुत कम शोध प्रबन्ध ही प्रस्तुत हुए हैं । आधुनिक हिन्दी काव्य-प्रवृत्तियों और साहित्य-विधाओं के सम्बन्धमें कई शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा चुके हैं । रामायण और महाभारत पर आधारित आधुनिक हिन्दी काव्यों का अनुशीलन भी हो चुका है । डॉ॰ विनय तथा डॉ॰ राम प्रसाद पाण्डेय ने महाभारत पर आधारित आधुनिक हिन्दी काव्यों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । डॉ॰ परमलाल गुप्त ने आधुनिक राम काव्यों का अनुशीलन किया है । डॉ॰ राजूरकर ने रामकथा के पात्र नामक प्रबन्ध प्रस्तुत किया है जिसमें उन्होंने वाल्मीकि, तुलसीदास तथा मैथिलीशरण गुप्त के पात्रों का विश्लेषण किया है । लेकिन किसी ने भी आधुनिक जीवन एवं कला के बदलते हुए भावों के आधार पर समग्र रूप में पौराणिक पात्रों का मूल्यांकन नहीं किया है । प्राचीन और नवीन चिंतन का समन्वय और अन्योन्याश्रित विश्लेषण करते हुए खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक पात्रों को युगीन परिवेश में जिस दृष्टि से प्रस्तुत किया है उसका शोधपरक विश्लेषण ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है । सन् 1900-1960 तक के खड़ीबोली हिन्दी काव्यों में चित्रित पौराणिक पात्रों पर प्रकाश डालते हुए उनमें युगानुकूल दिखाई पड़नेवाले परिवर्तनों का चित्रण और प्राचीन बातों की बौद्धिक व्याख्या का विवरण इस प्रबन्ध में दिया गया है । इस केलिए उपजीव्य ग्रन्थों को दृष्टि में रखकर खड़ीबोली के पौराणिक पात्रों को तीन प्रकार से विभाजित किया गया है -

1. रामायण पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पात्र
2. महाभारत पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पात्र
3. अन्य पुराणों पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पात्र

संपूर्ण प्रबन्ध का विवेचन आठ अध्यायों में किया गया है और इनका विषय विवेचन क्रमश: इस प्रकार है । प्रथम अध्याय में खड़ीबोली के पौराणिक काव्य का प्रारंभ और तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है । द्वितीय अध्याय में पुराण की परिभाषा, रामायण, महाभारत तथा पुराणों का परिचयात्मक अध्ययन तथा इन पर आधारित खड़ीबोली के करीब पच्चीस प्रमुख प्रबन्ध काव्यों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । तृतीय से सातवें अध्याय तक विशद रूप से प्रत्येक प्रमुख पौराणिक चरित्र का उद्घाटन करके युगीन प्रभाव में आकर उनके चरित्र में आए हुए परिवर्तनों का विकासात्मक चित्र खींचा गया है । तृतीय और चतुर्थ अध्याय में रामायण पर आधारित खड़ीबोली के पात्रों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है तो पंचम और छठें अध्याय में महाभारत पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पात्रों का चरित्र विश्लेषण किया गया है । सातवाँ अध्याय अन्य पुराणों पर आधारित पात्रों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है । आठवें अध्याय में तत्कालीन युग के परिप्रेक्ष्य में पौराणिक पात्रों का मूल्यांकन किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की रीडर डॉ॰ एम॰ सुनीताबाई के निर्देशन में तैयार हुआ है । उन्होंने समय समय पर आवश्यक निर्देश देकर मेरे प्रति जो कृपाभाव दिखाया है उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करती हूँ ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ॰ एन॰ रामन नायर तथा अन्य सभी गुरुजनों के प्रति भी अपनी विनीत श्रद्धा अर्पित करती हूँ ।

हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विश्वविद्यालय,
कोच्चिन,पिन 602022॰
ता॰ 06 03 1985

रिट्टी जोसफ, एम॰

अनुक्रम

पृष्ठ-संख्या

प्रथम अध्याय .... 1 - 29

आधुनिक हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि

खड़ीबोली हिन्दी काव्य का प्रारंभ - आलोच्य काल - साहित्य परिस्थितियों की उपज है - स्वातन्त्र्यपूर्व युग - राजनैतिक परिस्थितियाँ - सामाजिक परिस्थितियाँ - ब्रह्मसमाज - आर्यसमाज - रामकृष्ण मिशन - थियोसोफिकल सोसायटी - गान्धीजी का प्रभाव - टैगोर का प्रभाव - लोकमान्य तिलक का कर्मवाद - पाश्चात्य प्रभाव - मार्क्सवाद - स्वातन्त्र्योत्तर युग (सन् 1947-1960) - राजनैतिक परिस्थितियाँ - महात्मा गान्धी का महाप्रस्थान - अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ - सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ - खड़ीबोली हिन्दी काव्य पर परिस्थितियों का प्रभाव - पौराणिक कथानकों का आग्रह - प्राचीन भारतीय संस्कृति पर बल - पुराणों का पुनराख्यान - बौद्धिकता - मानवतावाद गान्धीवाद - युगीन समस्याओं का चित्रण - नारीजागरणवाद - स्वातंत्र्योत्तर युग - प्रतीकवाद - बिम्बवाद - मनोवैज्ञानिकता निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

द्वितीय अध्याय .... 30 - 72

पुराण और उन पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य

पुराण शब्द - पुराणों का मूल स्रोत - पुराणों का निर्माण काल - पुराणों की संख्या और उनका विषय - पुराणों का लक्षण - सर्ग - प्रतिसर्ग - वंश - मन्वन्तर - वंशानुचरित - ब्रह्म पुराण - विष्णु पुराण - पद्म पुराण - वायु अथवा शिव पुराण - अग्नि पुराण - नारदीय महापुराण - ब्रह्मवैवर्त महापुराण - स्कन्द पुराण - वराह पुराण - मार्कण्डेय पुराण - वामन पुराण - कूर्म पुराण - गरुड पुराण - ब्रह्माण्ड पुराण - लिंग पुराण - भविष्य पुराण - हरिवंश पुराण - मत्स्य पुराण - भागवत पुराण - रामायण और महाभारत रामायण - महाभारत - प्रबन्धकाव्यों की सामग्री के संदर्भ में पुराण - साहित्य का महत्व - रामायण पर आधारित काव्य - रामचरित चिन्तामणि - पंचवटी - साकेत - वैदेही वनवास साकेत- सन्त - उर्मिला - कैकेयी - राम-राज्य महाभारत पर आधारित प्रबन्ध काव्य - जयद्रथ वध - कुरुक्षेत्र - नहुष - कर्ण - रश्मिरथी - अंगराज - जयभारत - एकलव्य - सेनापति कर्ण द्रौपदी - अंधायुग - अन्य पुराणों पर आधारित काव्य - द्वापर - प्रियप्रवास - कामायनी - कनुप्रिया - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

तृतीय अध्याय .... 73 - 123

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के पात्र - ।

राम - अलौकिकता - लौकिकता - शौर्य - आदर्श भ्राता - आदर्श मित्र - आदर्श पति - आदर्श पुत्र - आदर्श राजा - लोकसेवक - भावुकता नवीन रूप - देशप्रेम - हास - परिहास ।

लक्ष्मण - प्राचीन रूप - वीरता - भ्रातृभक्ति और त्याग भावना - नवीन रूप - सरलता एवं कोमलता - हास - परिहास ।

भरत - धर्मनिष्ठा और त्याग - भ्रातृप्रेम - कर्मण्यता

रावण - रावण-चरित्र का सद् पक्ष - रावण-चरित्र का असद् पक्ष ।

हनुमान - आदर्श सेवक और राम के अनन्य भक्त बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता - वीरता और पराक्रम - दुर्बलताएं ।

विभीषण - धर्मनिष्ठा - आदर्शमित्र ।

सुग्रीव - युद्धकुशलता और राजनीतिज्ञता - दुर्बलताएं

दशरथ - आदर्श राजा - पुत्रप्रेम - सत्यप्रेम या प्रतिज्ञापालन - विषय लम्पटता ।

शत्रुघ्न - व्यवहार कुशलता और दायित्व बोध विनोदप्रियता ।

पृष्ठ-संख्या

चतुर्थ अध्याय .... 124 - 163

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के पात्र - 2

सीता - पतिव्रता - आदर्श बहू - गर्वीमता -
स्वावलम्बन - हास परिहास -
आदर्श शिक्षिका - पर दुःख दुःखिनी
लोकरंजिका ।

उर्मिला - त्याग एवं कर्तव्य भावना - प्रेम की
मूर्ति - कलाप्रेम - विनोदप्रियता
वीर क्षत्राणी - उदारता एवं कोमल - कैकेयी
कुटिलता - उदारता - कैकेयी के चरित्र का
महत्व - कौसल्या - पुत्रस्नेह - सुमित्रा -
आदर्श पत्नी - आदर्श सपत्नी - आदर्श माता
आदर्श विमाता - माण्डवी - त्याग - सेवा
भावना - प्रिया रूप - मंथरा - कुटिलता -
दुर्बलता - निष्कर्ष ।

पंचम अध्याय .... 164 - 214

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित महाभारत के पात्र - 1

कर्ण - पौरुष - वीरता - दानवीरता - कृतज्ञता
कष्टसहिष्णुता और गुरुभक्ति - पश्चाताप
की भावना - धृष्टता एवं कोमलता ।

पृष्ठ-संख्या

युधिष्ठिर - उत्तरदायित्वबोध - आज्ञा - पालन - शान्ति तथा सहनशीलता - दया एवं क्षमा - त्याग - समाप्ति के समर्थक - मानवीय दुर्बलताएं ।

अर्जुन - शौर्य वीरत्व - गुरुभक्ति आज्ञाकारिता एवं कर्मपरायणता - भावुकता अर्जुन के चरित्र की नवीन विशेषताएं ।

दुर्योधन - पाण्डव विद्वेष - वीरता एवं पराक्रम भावुकता - द्रौपदी - अटल प्रतिज्ञा धैर्य एवं प्रतिहिंसा - दया और पश्चाताप - प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ।

षष्ठ अध्याय .... 215 - 270

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित महाभारत के पात्र - 2

भीम - धैर्य तथा वीरता - दया सद्भावना गर्व या औद्धत्य - नवीन रूप -

अश्वत्थामा - महाभारत के अश्वत्थामा का चरित्र - खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अश्वत्थामा का चरित्र ।

द्रोण - आचार्य द्रोण - वीरता - ब्राह्मणत्व का अभाव - चारित्रिक कमी ।

भीष्म - आदर्श पितृभक्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य - वीरता - नवीनताएं ।

पृष्ठ-संख्या

एकलव्य - धनुर्वेद शिक्षा - साधना - गुरुभक्ति

धृतराष्ट्र - पाण्डव विद्वेष -

अभिमन्यु - वीरता तथा साहस - प्रेमी रूप ।

युयुत्सु - सत्य और न्याय के पक्षधर ।

कुन्ती - आदर्श पत्नी - वीर क्षत्राणी -
परोपकार - मातृत्व ।

गान्धारी - पातिव्रत - निर्भीकता न्याय-
प्रियता और नीतिप्रियता -
ममता -

हिडिम्बा - निष्कर्ष ।

सप्तम अध्याय .... 271 - 319

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अन्य पुराणों के पात्र

श्रीकृष्ण - अलौकिकता - लौकिकता - पाण्डव
हितैषी - राजनीतिज्ञ रूप -
आधुनिक जटिल मनुष्य का प्रतिरूप - लोकरक्षक
रूप - लीलामय रूप -

राधा - प्रेमिका रूप - लोकसेविका ।

विधृता - क्रान्तिकारी रूप ।

देवकी - यशोदा - उदारता - नन्द -
आदर्श पति - उद्धव - अन्य पात्र ।

मनु - देवता मनु - ऋषि मनु - महादेव
इडा - कृषि प्रसारक मनु -
शिवाराधक मनु - श्रद्धा - त्याग
की मूर्ति - पतिपरायणता -

पृष्ठ-संख्या

आदर्श माता एवं गृहिणी - आनन्द की पथ-प्रदर्शिका

इड़ा - जनप्रिय रानी - बुद्धिवाद का प्रतीक - विलासिता की मोहक शक्ति - कोमल एवं उदार नारी - आनन्द - पथ - गामिनी - मानव - मातृस्नेह - पितृप्रेम - निष्कर्ष ।

अष्टम अध्याय .... 320 - 344

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पौराणिक पात्र - एक मूल्यांकन

बौद्धिकता - नारी की महत्ता - परंपरा और आधुनिकता का संगम - धर्मपरायणता - मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा - कर्मण्यता - विश्वबन्धुत्व की भावना - गान्धीवाद का प्रभाव - मानवता वाद का प्रभाव - युगीन समस्याओं का निरूपण वर्ण - व्यवस्था - छुआ छूत - युद्ध की समस्या - प्रतीकात्मकता - बिम्बवाद - मनोवैज्ञानिकता - निष्कर्ष ।

उपसंहार .... 345 - 349

संदर्भ ग्रंथ सूची .... 350 - 364

प्रथम अध्याय

आधुनिक हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय

आधुनिक हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि

खड़ीबोली हिन्दी काव्य का प्रारंभ

साहित्य के इतिहास में काल का सीमांकन एक जटिल समस्या है। साहित्य की अन्तर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, उसकी परम्पराओं के उत्थान-पतन एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा परिवर्तन को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन का उद्देश्य होता है। हिन्दी काव्य साहित्य के काल-विभाजन का प्रथम प्रयास जार्ज ग्रियर्सन ने किया है। आगे चलकर मिश्र बन्धुओं ने काल विभाजन का नया प्रयास किया जो ग्रियर्सन के प्रयास की तुलना में अधिक प्रौढ़ एवं विकसित कहा जा सकता है। उन्होंने वि.सं. 1926 को आधुनिक काल का प्रारंभिक वर्ष माना है। गणपति चन्द्रगुप्त ने सन् 1857 से अब तक के साहित्य को ही आधुनिक काल नाम से अभिहित किया है[1]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करते हुए काल-विभाजन का नूतन प्रयास किया है।

---

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्रगुप्त - पृ.6

उन्होंने संवत् 1900 को ही आधुनिक काल का प्रारंभिक वर्ष माना है।[1]
इसीप्रकार शुक्लजी के बाद डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने भी संवत् 1900 को आधुनिक काल का प्रारंभिक वर्ष माना है। उपर्युक्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए, सन् 1857 को ही आधुनिक काल का प्रारंभिक वर्ष मानना उचित लगता है। हिन्दी साहित्य में यह पुराने युग की समाप्ति एवं नये युग के आरंभ का सूचक है। नये युग के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्म तिथि सन् 1850 है।[2] सात आठ वर्ष की अवस्था में ही वे अपनी पहली कविता लिख चुके थे। इसलिए सन् 1857 को ही नये वर्ष का प्रारंभिक वर्ष माना जा सकता है। इसी साल को ही खड़ीबोली हिन्दी काव्य का प्रारंभिक वर्ष माना जा सकता है। क्योंकि खड़ीबोली इसी समय से काव्य क्षेत्र में अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी थी। अंग्रेज़ों ने भारत की आर्थिक, शैक्षिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। भारत के लोग भी इस नये संदर्भ में कुछ नया सोचने और करने केलिए बाध्य हुए। अपने नये विचारों की अभिव्यक्ति केलिए वे एक नयी भाषा की खोज कर रहे थे क्योंकि उस समय की भाषा, ब्रजभाषा इसकेलिए अनुपयुक्त थी। इसलिए साहित्यकारों ने उस समय की बोलचाल की भाषा खड़ीबोली को अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार किया। खड़ीबोली का समुचित विकास द्विवेदी युग में ही हो सका था। द्विवेदी युग में प्रबन्ध काव्यों तथा गद्य साहित्य के आविर्भाव से ही खड़ीबोली पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई थी।

आलोच्यकाल

हमारा आलोच्यकाल सन् 1900 से सन् 1960 का है। इस समय के काव्य साहित्य का मूल्यांकन, विशेषकर इस समय के खड़ीबोली

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ॰6
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - बृजरत्नदास - पृ॰62

हिन्दी काव्यों में आनेवाले पौराणिक पात्रों और उनके चरित्र चित्रण का अध्ययन करने केलिए उनके निकटतम पूर्ववर्ती साहित्य का अनुशीलन भी आवश्यक हो आया है । आधुनिक युग को कविता की दृष्टि से अनेक खण्डों में विभक्त किया गया है जैसे भारतेन्दु युग [सन् 1857-1900], द्विवेदी युग [सन् 1900-1920], छायावाद युग [सन् 1920-1937], प्रगतिवाद युग [सन् 1937-1945], प्रयोगवाद युग [सन् 1945-1960] और नई कविता [सन् 1960 से 1970 तक] सन् 1900-1960 के विवेच्यकाल के अन्तर्गत भारतेन्दु काल से लेकर, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता तक के पौराणिक काव्यों का अध्ययन और अनुशीलन आवश्यक हो आया है । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आलोच्यकाल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - स्वतंत्रता पूर्व युग और स्वातंत्र्योत्तर युग ।

स्वतंत्रतापूर्व-युग परिवर्तन का समय रहा । इस समय राजनीतिक सामाजिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन देखा जा सकता है । काल-विभाजन की दृष्टि से परखा जाने पर खड़ीबोली हिन्दी साहित्य के प्रगति-वादी साहित्य तक इसके अन्तर्गत आ जाएगा और विवेच्यकाल के स्वातंत्र्योत्तर युग में प्रयोगवाद और नई कविता आ जाएगी । परिवर्तनों की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग को उत्क्रांति काल कहा जा सकता है । इस युग की विशेषता दिखाते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि "हमारा युग संक्रांति का युग है । सब ओर परिवर्तन एक नियति से हमें खींचे लिए जा रहा है । समाज संगठन में, राज्य व्यवस्था में, साहित्य की ओर आए तो - वस्तु और शैली में, तुक और छन्द में, सर्वत्र और परिवर्तन हो रहा है[1] ।"

---

1. त्रिशंकु - अज्ञेय - पृ.49,50

साहित्य परिस्थितियों की उपज है

किसी भी काल के साहित्य के समुचित विवेचन के लिए उस काल की प्रेरक परिस्थितियों का अध्ययन परम आवश्यक रहता है क्योंकि किसी भी सृजन के मूल में युगीन परिस्थितियों का संबल रहता है। रचनाकार को युगीन संघर्षों से होकर गुजरना पड़ता है। वह अपनी यात्रा में युग सत्यों को अनुभूति के स्तर पर आत्मसात् करते हुए उसे वाणी देता चलता है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अपने अभिन्न मत प्रकट किये हैं। मैथ्यू आर्नोल्ड के अनुसार काव्य जीवन की व्याख्या है और कवि की महानता जीवन से अपने विचारों के शक्तिशाली और सुन्दर समन्वय में है[1]। एक कदम आगे बढ़कर डब्लू॰बी॰ वार्सफील्ड ने लिखा है कि कलावादी समीक्षक काव्य का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं मानता। यह सत्य है कि काव्य में जीवन की वास्तविक अनुभूति न होकर उसकी कल्पित अनुभूति होती है और उसमें जीवन की अविकल प्रतिलिपि के स्थान पर उसका पूर्ण एवं स्वतंत्र चित्र होता है। फिर भी इस कल्पित अनुभूति का सम्बन्ध वास्तविक अनुभूति तथा जीवन से है। यही कारण है कि प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग की प्रधान विचारधाराओं एवं स्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है। जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों में साहित्य का स्वरूप भी परिवर्तित हो जाता है। निष्कर्ष रूप में साहित्य मानवता का मस्तिष्क है। जिस प्रकार व्यक्ति में मस्तिष्क उसकी पूर्ण संवेदनाओं, उसके, अनुभवों और उसके अर्जित ज्ञान का विवरण सुरक्षित रखता है तथा उसके प्रकाश में प्रत्येक नवीन संवेदना और अनुभव का विवेचन करता है, उसी प्रकार विज्ञान जाति अपने साहित्य में इतिहास का विवरण रखती है[2]।" डॉ॰पृथ्वीनाथ अग्निहोत्री ने भी इससे मिलती जुलती राय ...

---

1. एज़ेज़ इन क्रिटिसिज़्म - मैथ्यू आर्नोल्ड
{आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य - एन॰ई॰विश्वनाथ्यर
पृ॰6।

2. जजमेन्ट इन लिटरेचर - डब्लू॰बी॰वार्सफील्ड - पृ॰17
{आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य-एन॰ई॰विश्वनाथ्यर-

ही प्रकट की है । उनके अनुसार "आधुनिक से लेकर आधुनिकतम काव्य का अध्ययन करते समय हमें समकालीन राजनीतिक, आर्थिक और उनसे उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों पर भी दृष्टि रखनी चाहिए । काव्य अपनी प्रारम्भिक स्थिति में एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसका निर्माण उपर्युक्त परिस्थितियों से होता है[1] । डॉ॰ रत्नाकर पाण्डेय के विचार भी विशेष रूप से चिन्तनीय है । उनके अनुसार "मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास केलिए सामाजिक परिस्थितियां अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि निःसंग एकान्तिकता में व्यक्ति की सभी आवश्यकताएं और मानसिक भाव अव्यक्त रह जाते हैं । व्यक्ति सामूहिक, सामाजिक परिस्थितियों का एक अंग है[2] । बाबू गुलाब राय ने साहित्य और जीवन की अभिन्नता स्वीकार करते हुए कहा है कि "साहित्य जीवन से भिन्न नहीं, वरन् वह उसका ही मुखरित रूप है । वह जीवन के महासागर से उठी हुई उच्छ्वसम तरंग है । मानव जाति के विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रसारित होती है । साहित्य जीवन विटपी का मधुमय सुमन है । वह जीवन का चरम विकास है किन्तु जीवन से बाहर उसका अस्तित्व नहीं ।" इन विद्वानों की रायों को दृष्टि में रखते हुए काव्याभिव्यक्ति की प्रेरक परिस्थितियों का अध्ययन आगे किया जाएगा ।

स्वतन्त्रतापूर्व युग

राजनैतिक परिस्थितियाँ

सन् 1856 होते होते अंग्रेज़ों ने सारे भारत को अपने अधीन कर लिया । इससे असंतुष्ट भारतीय जनता ने स्थान स्थान पर अंग्रेज़ों के शासन तथा उनकी नीतियों के विरुद्ध आन्दोलन किया ।

1॰ आधुनिक काव्य - डॉ॰ भागीरथ मिश्र एवं डॉ॰ बलभद्र तिवारी

2॰ हिन्दी साहित्य-सामाजिक चेतना - डॉ॰ रत्नाकर पाण्डेय - पृ॰185

ईसाई धर्मप्रचारकों के प्रवर्तन ने भारतीय जनता के मन में अंग्रेज़ी शासकों के प्रति सन्देह उत्पन्न किया । ईसाई मिशनरियों ने हिन्दू धर्म तथा जाति की अवहेलना करके उन्हें ईसाई बनाने का परिश्रम किया । हिन्दुओं ने खुलकर विद्रोह करके अपने धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करने का परिश्रम किया । अंग्रेज़ों की धार्मिक नीति से भी भारतीय जनता पूर्ण रूप से असंतुष्ट थी ।

आर्थिक दृष्टि से भी अंग्रेज़ों ने भारतीय जनता को दबाने का कार्य किया । उन्होंने भारतीय उद्योग-धन्धे नष्ट करके भारतीय व्यापार पर एकाधिकार जमा लिया । ब्रिटीश शासन ने जब अपनी तरफ से भारतीय भू-कर व्यवस्था में संशोधन किया तब यहाँ की स्थिति और भी परिवर्तित हो चली । इन परिवर्तन धाराओं ने यहाँ के सामाजिक गठन को भी थोड़ा बहुत प्रभावित किया । ब्रिटीश शासन के समय भारत में कोई एक, याने सार्वत्रिक भू-कर व्यवस्था नहीं रही । भूमि के पूरे स्वामित्व की बात तो प्रारंभिक युग में यहाँ नहीं थी । भूमि में विशेष रुचि रखने वालों के दो प्रमुख वर्ग यहाँ थे ⁅1⁆ ज़मीन के मालिक, जो खेती नहीं करते थे, ⁅2⁆ हल चलानेवाले किसान । खेती करनेवाले व्यक्ति भी अलग अलग खेती नहीं करते थे, उल्टे परिवार के सारे सदस्य मिलकर ही हल चलाते थे । प्रवृत्ति तो यही रही कि खेत पर निर्भर रहनेवाले लोगों की संख्या बढ़ती जाय । यहाँ तक कि किसी किसी परिवार को खेती से केवल सूखी रोटी ही सुलभ होती थी[1] । देश में बेकारी और गरीबी की समस्या फैलने लगी जिसका उत्तरदायित्व अंग्रेज़ों पर था ।

---

1. दि इक्कनोमिक डेवलप्मेन्ट आफ इण्डिया - वेरा आन्सटी - पृ.97-99
⁅आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य -
एन.ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ.2

विदेशी शासकों की स्वार्थपूर्ण राजनीति ने भारतीय जनता के जीवन में अशान्ति, भय तथा दुर्बलता उत्पन्न कर दी । इसलिए शिक्षित भारतीयों ने संगठित होकर राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में एक नवीन राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा कर दिया । जन-जागरण की दिशा में भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो सबसे प्रमुख घटना हुई वह थी अखिल भारत राष्ट्रीय महासभा की स्थापना थी[1] । राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रयत्नों से आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता का विकास होने लगा । इसने भारतीयों के हृदय में प्राचीन गौरव और संस्कृति से अवगत कराने का प्रयत्न किया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को नया उत्साह और प्रेरणा मिली । ये आन्दोलन दो रूपों में खुलकर प्रकट हुए थे - अहिंसात्मक और हिंसात्मक । सत्याग्रह, अंग्रेजों की नीतियों की सविनय अवज्ञा आदि के माध्यम से महात्मा गान्धी, लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू आदि नेताओं ने अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया तो आजाद, तिलक आदि के नेतृत्व में कुछ क्रान्तिकारी लोगों ने अंग्रेजी अफसरों की हत्या आदि क्रान्तिकारी मार्गों से अंग्रेजों को यहाँ से भगाने का परिश्रम किया । सन् 1942 से यह स्वाधीनता आन्दोलन उग्रतम रूप धारण कर गया था ।

सामाजिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक क्षेत्र के जैसे उस समय भारत का सामाजिक वातावरण भी अस्वस्थ था । विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों के ताने-बाने में उलझी भारतीय जनता ज्ञान, भक्ति और कर्म के सच्चे स्वरूप को विस्मृत कर जड भक्ति और अन्धविश्वासों में उलझी हुई थी । वर्ण व्यवस्था तथा जाति-नियमों के सिद्धान्तों का पालन करना हिन्दू लोगों का आवश्यक सामाजिक कर्तव्य था । परस्पर जटिल जाति-नियमों तथा नियन्त्रणों ने समाज में भेद

---

1. कांग्रेस का इतिहास, पहला भाग - डॉ॰सीतारामैया

जाति की खाई को चौड़ा कर दिया था और उसने एक नये अछूत वर्ग का निर्माण कर दिया था । इसी प्रकार संयुक्त परिवार के कठोर बन्धनों में बन्धे हिन्दुओं के उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों का नाश हो गया था और उनके जीवन में बाह्य आडम्बरों तथा सामाजिक कुरीतियों का समावेश हो गया था । बहु विवाह, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, सती-प्रथा, शिशु-हत्या जैसी कुप्रथाओं से स्त्रियों की दशा अत्यन्त हेय और पतित थी ।

राजनीतिक आन्दोलनों की भांति ही विभिन्न सामाजिक संस्थाएं जैसे; आर्य समाज, ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल सोसायटी रामकृष्ण मिशन आदि ने पतित भारतीय सामाजिक चेतना को उद्दीप्त और जागृत कराने का परिश्रम किया । निष्क्रियता, आलस्य एवं विलास वृद्धि के कारण नाश के कगार पर खड़े भारतीय जन जीवन को नई चेतना और स्फूर्ति देकर उसे पुनर्जागरित करने का कार्य राजा राममोहन राय, दयानन्द, विवेकानन्द और एनीबेसेन्ट आदि महात्माओं ने किया ।

ब्रह्मसमाज

राजा राममोहनराय ने ईसाइयत के अधीन बने हिन्दुत्व का पुनरुत्थान करने केलिए अपनी मानवतावादी विचारधारा का प्रचार किया । उनके अनुसार सब मनुष्य समान हैं और वे मानव की प्रतिष्ठा के पूजक थे । राजा ने तत्कालीन धार्मिक प्रथाओं तथा अन्धविश्वासों की आलोचना की । उन्होंने धर्म के नाम पर चलनेवाले अन्धविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों, पुरोहितवाद तथा अवतारवादी विचारों का खण्डन किया । उस समय समाज में प्रचलित सती-प्रथा तथा हिन्दू नारी के प्रति होनेवाली अन्य अन्यायपूर्ण प्रथाओं की ओर भी उन्होंने आवाज़ उठायी ।

उन्होंने धर्म और जीवन को नवीन दृष्टिकोण से परिभाषित करने का परिश्रम किया और ब्रह्मसमाज के माध्यम से अपनी धारणा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का परिश्रम किया ।

आर्यसमाज

इसी समय ब्रह्मसमाज के जैसे एक दूसरे सामाजिक आन्दोलन का कार्य दयानन्द के नेतृत्व में आर्य समाज कर रहा था । ब्रह्मसमाजियों ने त्रस्त और प्रकम्पित भारत के स्वर को मुखरित करने का परिश्रम किया तो आर्य समाज ने वैदिक संस्कृति के मूल सामाजिक तत्त्वों के आधार पर जन-साधारण को आर्य-जाति के अतीत की ओर उन्मुख कराने का परिश्रम किया । उन्होंने वेदों और उपनिषदों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों एवं रूढ़ियों का खण्डन किया । आर्य समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक आख्यानों से भारत में एक बौद्धिक जागरण का विकास हुआ । उन्होंने भारत के अतीत की जो उज्ज्वल झलक समाज के सामने रखी उससे भारतीय लोगों में स्वाभिमान आत्मगौरव और आत्मशक्ति जाग्रत हुई ।

रामकृष्ण मिशन

भारत की सांस्कृतिक, ऐतिहासिकता, उसकी गरिमा तथा श्रेष्ठता का जो विचार दयानन्द में पनप चुका था वह विवेकानन्द में अपने चरमोत्कर्ष पर देखा जा सकता है । वे हिन्दुत्व के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्षों के भी प्रतिष्ठापक हैं । विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन के माध्यम से त्याग और तपस्या के आदर्श को प्रस्तुत करने का परिश्रम किया इस समाज ने भी एक ईश्वर की उपासना एवं सामाजिक सुधार का आदर्श

जनता के सम्मुख रखा तथा संत नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि से प्रेरणा लेते हुए अछूत उद्धार, शिक्षा-प्रचार, विधवा-विवाह, स्त्री-पुरुष की समानता, अन्तर्जातीय विवाह, अनाथालयों की स्थापना आदि कार्य किये और जनता में पारस्परिक सौहार्द, सेवा-भावना, सामाजिक एकता आदि का प्रचार किया[1]। साधारणतया इस मिशन ने शिक्षा, धर्म-प्रचार, समाज-सेवा तथा अन्य लोकोपकारी कार्यों की प्रेरणा समाज में उत्पन्न की है। आज भी भारत में अनेक अस्पताल, अनाथालय, शिक्षालय आदि इसी मिशन द्वारा चलाये जा रहे हैं। प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय करके इस मिशन ने उस समय धार्मिक विश्वास, आध्यात्मिकता, लोक सेवा, मानव-प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता आदि को जाग्रत करने में बड़ा ही सराहनीय कार्य किया था[2]। उनके विचार में हरिजनों की दशा सुधारना उच्च जातियों का कर्तव्य है, हरिजनों को अपनी दशा सुधारने के लिए स्वयं प्रयत्नशील होना है, और निर्धन तथा धनिक में संघर्ष नहीं, सहानुभूतिपूर्ण समन्वय लाने की आवश्यकता है। विवेकानन्द भारत के प्रति भक्ति, उसके अतीत के प्रति गौरव-भाव और उसके भविष्य के प्रति आस्था के प्रेरक थे। भारत की नई पीढ़ी को उन्होंने आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान की प्रेरणा दी।

थियोसोफिकल सोसाइटी

भारत में आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि से मिलता जुलता आन्दोलन थियोसोफिस्टों ने आगे चलाया था। भारत में श्रीमती एनीबेसेन्ट के अध्यक्ष काल में काफी सर्वोन्नति हुई थी। भारतीय जनता को उन्होंने सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रेरणा दी थी। इस सोसायटी ने

---

1. इन्डियन कल्चर थ्रू दी एजेज - 364
2. वही - पृ॰362 [आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य - एन॰ई॰विश्वनाथय्यर - पृ॰99]

भारतीयों, विशेषतः हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति गर्व करने की प्रेरणा दी और प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अध्ययन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया । वेदों की ओर उन्नयन और पुनरागमन उस काल का नारा था जिसे थियोसोफिस्टों ने और आगे बढाया । श्रीमती बेसन्ट ने एक ओर हिन्दू समाज का सुधार करने का प्रयास किया । एक विदेशी होकर जब श्रीमती बेसन्ट ने हिन्दुत्व और भारतीयता का पक्ष लिया तो उससे भारतीयों में आत्मसम्मान जाग उठा और भारतीयता के पुनरुन्नयन के प्रति उनके मन में उत्साह बढा । भारतीय जीवन पर इसका प्रभाव संकीर्ण रूढियों के प्रति अनास्था के रूप में पडा ।

गान्धीजी का प्रभाव

भारतीय जनता को शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करने में भारत के मुक्तिदाता और विश्व के महान चिंतक महात्मा गांधी का प्रभाव भी विशेष उल्लेखनीय है । गान्धीजी समन्वयकारी थे और उनके चिन्तन में पाश्चात्य तथा पौरस्त्य विचारों का समन्वय देखा जाता है । उनका मूल योगदान राजनीति के क्षेत्र में है और वे सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह आदि सिद्धान्तों को प्रमुखता देने के पक्ष में हैं । वे मानव समानता के परम पक्षधर रहे । उन्होंने कहा - "मेरा अटल विश्वास है कि सभी मनुष्य जन्मना समान है, सभी में, चाहे वे भारत में पैदा हों या अमरीका में या इंग्लैण्ड में या चाहे अन्य किसी परिस्थिति में पैदा हों, वही एक आत्मा रहती है[1] । सत्य गान्धीजी के तत्वज्ञान का केन्द्र है । यह सत्य ही उनका ईश्वर है । यह ब्रह्म या सत्य का साक्षात्कार ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है[2] । यह सत्य ही उनका ईश्वर है ।

1• हिन्दू धर्म - गान्धीजी - पृ•36

2• गान्धीवाद की रूपरेखा - रामनाथ सुमन - पृ•59-186

यह ब्रह्म या सत्य का साक्षात्कार ही मानवजीवन का चरम लक्ष्य है । इसी प्रकार अहिंसा शब्द ही गान्धी धर्म का निचोड है । दिनकर ने कहा है कि हिंसा से पूरित विश्व में यह एक शब्द गान्धीजी का जितना व्यापक प्रतिनिधित्व करता है, उतना उनके और सारे उपदेश मिलकर भी नहीं कर पाते[1] । गान्धीजी की यह अहिंसा केवल अनाघात की ही व्यंजक नहीं, बल्कि जीव के प्रति आन्तरिक प्रेम और भक्ति भावना की अभिव्यक्ति है । वे अपने हृदय में करुणा का अपार पारावार लेकर आये थे और दुःखी जनों का कष्टमोचन करना चाहते थे । गान्धीजी का व्यावहारि पक्ष बडा विस्तृत है । वे स्वदेशी के सिद्धान्त से अनुप्रेरित हैं और उन्होंने आर्थिक समानता, खादी तथा ग्रामोद्योग का विकास इत्यादि के माध्यम से भारतीय जनता को समृद्ध बनाने का परिश्रम किया । इसी प्रकार सांप्रदा सौहार्द की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण, नारी जागृति, समाज-सेवा, सफाई आदि को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया । तत्कालीन ही नहीं, अब भी भारत के साथ पाश्चात्य देशों के लोग भी गान्धीजी की महत्ता समझ रहे हैं और उनके निकट पहुँचने में लगे हैं ।

टैगोर का प्रभाव

गान्धीजी के समान महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी तत्कालीन जनता को संबल प्रदान करने का परिश्रम किया है । विश्व महाकवि टैगोर ने अपने मानवतावादी विचारों की अभिव्यक्ति "गीतांजली" जैसे महाकाव्यों के माध्यम से की है और भारतीय जनता इससे कुछ प्रभावित भी हुई है ।

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ.535

लोकमान्य तिलक का कर्मवाद

तिलक ने गीता रहस्य के माध्यम से लोगों को कर्मपथ की ओर अग्रसर कराने का परिश्रम किया । उन्होंने जन साधारण को संदेश दिया कि फलाफल की चिन्ता किये बिना अहिंसा और सत्य के आधार पर कर्म करते रहो, जीवन का यही मूल मन्त्र है ।

पाश्चात्य प्रभाव

इसी बीच भारतीय जनता अंग्रेजी शिक्षा से अंग्रेजी साहित्य और सभ्यता से परिचित हो चुकी थी । समाज में व्याप्त कुरीतिय अनाचारों और अन्धविश्वासों को मिटाने की इसने प्रेरणा प्रदान की ।

मार्क्सवाद

अंग्रेजों के आधिपत्य तथा दूसरे विश्वयुद्ध के विध्वंस से निराशा ग्रस्त भारतीय जनता का उद्धार करने केलिए मार्क्स और उनके सिद्धान्तों का बड़ा हाथ है । सभी प्रचलित परम्पराओं का खण्डन करके नया मार्ग खोज निकालने की उन्होंने प्रेरणा दी । मानव की महत्ता उद्घा करने के साथ शोषकों की उन्होंने घोर अवज्ञा की और इससे भारतीय साहित्यकार खूब प्रभावित हुए ।

स्वातन्त्र्योत्तर युग - सन् 1947-1960

राजनैतिक परिस्थितियाँ

महात्मा गान्धी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस के तीव्र प्रतिरोध के फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्र होने पर भी भारतवासियों को देश-विभाजन से उत्पन्न अनेक समस्याओं जैसे साम्प्रदायिक वैमनस्य, मार-काट, हत्या-बलात्कार एवं शरणार्थियों के पुनर्वास आदि का सामना करना पड़ा। विस्थापित हो जाने से लोगों के हृदय में प्रिय जनों की वियोग-व्यथा, पुनर्स्थापन की दुश्चिन्ता एवं दुर्निवार कष्टों की आशंका के कारण उनमें घोर निराशा का भाव भर गया।

महात्मा गान्धी का महाप्रस्थान

साम्प्रदायिकता के विद्वेष को शान्त करने की गान्धी जी की नीति से असंतुष्ट होकर नाथूराम गोडसे ने राष्ट्रपिता की हत्या कर दी। गान्धीजी की मृत्यु पर सारा देश हाहाकार कर उठा। महात्मा गान्धी, की मृत्यु से भारतीय इतिहास का एक युग समाप्त हो गया और गान्धीजी के द्वारा पुनर्स्थापित आस्था का वातावरण टूट गया।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ

स्वतंत्रता के बाद चीन के आक्रमण ने भारत की राजनीति में हलचल मचाया। इसीप्रकार रूस और अमरीका की बढ़ती हुई वैज्ञानिक शक्ति, आयुधों का होड़ तथा दोनों के भिन्न और अधार्मिक शासन प्रणाली तथा सिद्धान्तों ने समस्त विश्व के सामने अनेक समस्याएं तथा संकट का वातावरण उपस्थित कर दिया। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ

स्वातन्त्र्योत्तर युग में देश-विभाजन एवं शरणार्थी समस्या के कारण भारत की आर्थिक स्थिति डावाँडोल हो गयी। अन्न-वस्त्र के अभाव तथा भीषण बेकारी से लोग पीड़ित हुए। स्वाधीनता के हर्षोल्लास की जगह युवकों का मन निराशा, क्षोभ, अशांति, विघटन और क्षोभ ने घेर भी लिया। औद्योगिकरण, पूँजीवाद, शहरीकरण, बेरोजगारी, समाजवादी विचारधारा एवं पाश्चात्य शिक्षा-संस्कृति के प्रचार ने भारत के मध्यवर्गीय जीवन को असंतुलित और अस्थिर बना दिया। भारतीय समाज की पुरातन रूढ़िवादी जाति-व्यवस्था का ढ ढाँचा भी आर्थिक झंझावात में हिल उठा। नई शिक्षा के आलोक में शिक्षित नवयुवकों ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए सराहनीय कार्य किया। डॉ॰ अंबेडकर द्वारा संवैधानिक रीति से अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किया। आचार्य विनोबा भावे ने भी अस्पृश्यता निवारण करने का परिश्रम किया और जनमानस तथा लोक व्यवहार में व्यापक परिवर्तन आया। सदियों से शोषण एवं विलासिता की उपकरण नारी भी महात्मा गान्धी तथा परवर्ती नेताओं की प्रेरणा के फल-स्वरूप स्वावलंबन और सम्मानपूर्ण सामाजिक जीवन के संगठन की ओर उन्मुख हुई। धीरे धीरे नारी जाति का आत्मबल बढ़ने लगा और वह विधवा - विवाह, बाल-विवाह, वेश्यावृत्ति, अस्पृश्यता, परदा प्रथा आदि सभी सामाजिक समस्याओं के विरोध में प्रतिफलित होने लगा। क्रमशः नारी समाज एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों से स्पर्धा करती हुई उसे चमत्कृत करने लगी और वह समाज सेवी, अभिनेत्री, कवयित्री, लेखिका, गायिका, विदुषी, आदि सभी रूपों में मान की अधिकारिणी बनी।

गान्धीजी की मृत्यु के बाद भारतीय समाज का उद्धार करने केलिए विनोबा भावे, डॉ॰ अम्बेडकरआदि नेताओं ने जो कार्य किया वह पूर्ण रूप से सफल नहीं बन गया । व्यक्तिगत स्वार्थभावना, चोरी बेईमानी, कालेबाजारी तथा वैज्ञानिक प्रगति आदि ने युगों से समादृत नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक मूल्यों पर भारी प्रश्नचिन्ह लगा दिया है । विज्ञान ने ईश्वरी अस्तित्व तक को नकार दिया है । मार्क्सवादी दर्शन जो कभी सुहावना लगता था आज अपनी चमक खो बैठा है । लोकतन्त्र सर्वोत्तम शासन की गरिमा समझा जाता रहा, आज उसमें भी प्रदूषण दिखाई देने लगे हैं । इस प्रकार पुराने प्रतिमानों का तीव्रता से अवमूल्यन हुआ है । तेज़ी से विघटन हुआ है । इसी समय में नये युग के अनुकूल पौराणिक पात्रों को उपस्थित करके लोगों को सजग बनाने का परिश्रम किया गया है ।

खड़ीबोली हिन्दी काव्य पर परिस्थितियों का प्रभाव

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है । इसलिए आलोच्यकाल के राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जिस प्रकार नई चेतना के साथ नई विचारधाराओं और मान्यताओं का जन्म हो रहा था, उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर देखा जा सकता है । आलोच्यकाल की परिस्थितियों के बढ़ते हुए दबाव के प्रभाव से इस काल के काव्य साहित्य में जिन नवीन प्रवृत्तियों का आगमन हुआ है, वे निम्नलिखित हैं -

1· पौराणिक कथानकों का आग्रह

नाना प्रकार की कुरीतियों से आक्रान्त, विलासिता में डूबी हुई सुप्त भारतीय जनता को जागृत करने केलिए, उसका उद्धार करने केलिए खड़ीबोली के हिन्दी कवि पौराणिक वाङ्मय में चित्रित हमारे उज्ज्वल अतीत वैभव का गौरव गान करने की ओर आकृष्ट हुए क्योंकि भारतीय

साहित्य का अतीत विश्व के किसी भी गौरवशाली साहित्य के अतीत से कम नहीं है । भारत के पौराणिक वाङ्मय-वेदों, पुराणों तथा रामायण एवं महाभारत लोकप्रिय एवं उपादेय सामग्री से सम्पन्न ज्ञान-राशि है । यह पौराणिक वाङ्मय भारत की उज्ज्वल संस्कृति की चिरन्तन निधि है और देश के सांस्कृतिक अभ्युदय का सत्य, विराट और विशद चित्र अंकित करने में सफल हुआ है । भारतीय मनीषा के विविधोन्मुखी चिन्तन और चेतना की जितनी सुन्दर, सुव्यवस्थित, संपूर्ण और सर्वग्राह्य अभिव्यक्ति पौराणिक वाङ्मय में प्राप्त है, उसकी अन्यत्र दुर्लभ है । भारत के पौराणिक वाङ्मय में विपरीत गुणगान, राजकुल यशोगान, प्रकृति विज्ञान और अलौकिक आख्यान के होते हुए भी, उसका मूल स्वर मानवतावादी है क्योंकि समीक्षा मूल लक्ष्य मानव की मंगल कामना है, मानव जीवन की सर्वांगीण व्याख्या ही इसमें अभिव्यक्त है । महाभारत का "न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्" में इसकी अभिव्यक्ति मिलती है । श्रीराम प्रसाद त्रिपाठी के शब्दों में - मानव जीवन को हर पहलू से संवारने में पुराणों ने बहुत बड़ा योगदान किया है[1] । इसलिए खड़ीबोली के प्रमुख काव्य जैसे प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, साकेत, जयभारत, जयद्रथ वध, पंचवटी, साकेत-सन्त, उर्मिला, राम-राज्य, कामायनी, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, कौरव, सेनापति कर्ण, कर्ण, नहुष, एकलव्य, द्रौपदी, कनुप्रिया, अन्धायुग आदि के कवियों ने पुराणों से अनेक कथा प्रकार से सामग्री का संकलन किया है और भारतवासियों को नया मार्ग, नया उत्साह, नई दिशा तथा नई ज्योति प्रदान करने का परिश्रम किया है । सभी पुराणों में असंख्य अमूल्य कथारत्न वर्तमान हैं जिनमें वर्तमान जीवन संघर्ष के लिए निश्चित निर्देशों का अनुसन्धान किया जा सकता है । इस दिशा में कविवर दिनकर, रामकुमार वर्मा, धर्मवीर भारती के प्रयास विशेष सराहनीय हैं । दिनकर की "रश्मिरथी", "कुरुक्षेत्र" तथा "उर्वशी" और भारती का अन्धायुग तथा कनुप्रिया आदि काव्य निश्चय ही हिन्दी साहित्य की चिरन्तन निधि बन गए हैं । अभी पुराणों में निहित गूढ़ जीवन

---

1. श्री रामप्रसाद त्रिपाठी - वायुपुराण - आमुख - पृ. 5

संदेश को वर्तमान सांस्कृतिक परिस्थिति के अनुकूल चित्रित किया गया है । खड़ीबोली के कवियों ने अतीत भारत की उज्ज्वल साहित्य सृष्टियों से वस्तु ग्रहण करके पात्रों को नवीन जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार प्रकट कराके जनता को नया मनोबल और उत्साह प्रदान करने का परिश्रम किया है । भारत के गंभीर इतिहास विवेचक भी इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में देश की पराधीनता के फलस्वरूप पूर्व और पश्चिम का जो संघर्ष स्थापित हुआ उससे भारत में जो नवीन चेतना उत्पन्न हुई उसके मूल में भारत का अपनी खोई हुई आत्म गरिमा खोजने का अथक प्रयास था और उसका राजनीतिक संघर्ष इसी का एक महत्वपूर्ण पक्ष था[1] ।

प्राचीन भारतीय संस्कृति पर बल

भारत के पौराणिक वाङ्‌मय भारतीय संस्कृति के अक्षय स्रोत है । पौराणिक कथानकों के सहारे खड़ीबोली के कवियों ने असंस्कृत और सुप्त तत्कालीन भारतीय जनता को नई दिशा प्रदान करने केलिए प्राचीन भारतीय संस्कृति पर बल देने की प्रवृत्ति अपनाई । भारत में सहस्राब्धियों पूर्व आर्यों औरअन्य जातियों के मिलन से जिस सामाजिक संस्कृति का ढाँचा निर्मित हुआ, उसे भारतीय संस्कृति कहा जाता है । भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं हैं - समन्वयवाद, धर्मपरायणता, सत्य, तप, त्याग, न्याय, अहिंसा, दान, उदारता, मैत्री आदि मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा, वर्ण-व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, कर्मण्यता, नारी की महत्ता आदि ।

भारतीय संस्कृति की उपर्युक्त प्रवृत्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन विभिन्न चरित्रों के माध्यम से आधुनिक हिन्दी काव्य में किया गया है । इन काव्यों के अधिकांश पात्र समन्वयवादी है । 'प्रियप्रवास' के कृष्ण, राधा, 'साकेत' के भरत, लक्ष्मण, उर्मिला, माण्डवी आदि में समन्वयात्मकता

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - दशम भाग

की यह भावना बहुत सुन्दरता के साथ मिलती है । आलोच्य युग के अनेक कवियों ने अपने आदर्शात्मक पात्रों में प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहित धर्मपरायणता को दिखाया है । ऐसे अधिकांश पात्र नैतिक शिष्टाचार, कर्तव्य पालन, आदि पर बल देते दिखाए गए हैं । राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, उर्मिला, माण्डवी, राधा, कृष्ण, आदि पात्र धर्मपरायणता को पूर्ण रूप से व्यक्त करते हैं । तत्कालीन जीवन के मूल्यगत संक्रमण और पतनोन्मुखी जनता की विक्षिप्त अवस्था को पुनर्जागरित करने के लिए खड़ीबोली के कवियों ने प्राचीन भारतीय जीवन मूल्य-सत्य, तप, त्याग, न्याय, अहिंसा, दान, मैत्री, परोपकार आदि पर बल देकर अपने चरित्रों की सृष्टि की है । इन चरित्रों में स्वार्थ की अपेक्षा परार्थ, भोग की अपेक्षा त्याग, व्यक्तिहित की अपेक्षा राष्ट्रहित आदि का प्रतिपादन मिलता है । आदर्श परिवार और समाज को इन काव्यों में विशेष स्थान दिया गया है । "साकेत" "प्रियप्रवास" आदि में निहित आदर्श परिवार इसके उदाहरण हैं । भारतीय संस्कृति के "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता का" इन कवियों ने अक्षरार्थ में पालन किया है । इनके अनुसार नारी निन्दा का पात्र नहीं, पूजा की अधिकारिणी है । कर्मण्यता की भावना खड़ीबोली हिन्दी काव्यों के चरित्रों में समाविष्ट की गई है । इन कवियों ने कर्मनिरत चरित्रों के माध्यम से सामाजिक विद्रूपताओं से बचने का सन्देश दिया है । "कुरुक्षेत्र" के भीष्म, "प्रियप्रवास" के कृष्ण, "साकेत" की सीता, "साकेत-सन्त" की माण्डवी आदि इसके उदाहरण हैं । वसुधैवकुटुम्बकम् का आदर्श भारतीय जीवन में बहुत ही महत्व रखता है । खड़ीबोली के सभी पौराणिक काव्यों में कवियों ने इस आदर्श को चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है । इन काव्यों के पात्र परिवार, जाति, समाज आदि संकुचित सीमाओं से बाहर निकलकर सर्व भूतहित एवं लोक कल्याण में रत रहते हैं । "साकेत" की उर्मिला, "कामायनी" की श्रद्धा, "वैदेही-वनवास" की सीता आदि इसके उदाहरण हैं ।

पुराणों का पुनराख्यान

खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में कवियों ने भारत के अतीत वैभव को प्रदर्शित करने के साथ साथ युगचेतना को व्यक्त करने का सफल प्रयास भी किया है, याने कवियों ने अतीत के भव्य प्रासाद पर खड़े होकर वर्तमान को भविष्य का संदेश देने का प्रयास भी किया है। इस केलिए खड़ीबोली के महाकवियों ने पुराणों से वस्तु ग्रहण करके युगीन परिस्थितियों, समसामयिक वातावरण और तत्कालीन जीवनादर्शों के अनुरूप उन्हें आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ उपस्थित किया है। युगीन विशेषताएँ जैसे बौद्धिकता, मानवतावाद, गान्धीवाद आदि के प्रभाव में आकर तत्कालीन कवियों ने पौराणिक कथावस्तु तथा पात्रों को नवीन आलोक प्रदान किया है इसी प्रकार युग की सामाजिक कुरीतियों से लोगों को अवगत कराने केलिए भी कवियों ने इन पौराणिक पात्रों को ही प्रमुख उपकरण बनाया है। बाबू गुलाबराय ने खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों की इसी विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि - "इस युग में इतिहास पुराणों से सम्बन्धित कुछ महाकाव्य भी लिखे गए हैं, किन्तु उनमें नवीन विचारधाराओं का समावेश हुआ है। इन महाकवियों में प्राचीन और नवीन का अपूर्व समन्वय है"[1]।

बौद्धिकता

ब्रह्म-समाज, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन आदि के सहयोग से बुद्धिवाद का निरंतर विकास हुआ[2]। व्यक्ति में ज्ञान की प्रेरणा से सत् के अन्वेषण और जिज्ञासा की जो वृत्ति आती है, वही बुद्धिवाद

1. काव्य विमर्श - डॉ॰ बाबू गुलाबराय - पृ॰287
2. आधुनिक साहित्य की भूमिका - डॉ॰ बलभद्र तिवारी - पृ॰114

कहलाती है । अंग्रेज़ी शिक्षा के संस्पर्श से तथा विज्ञान के विकास से तत्कालीन युग तर्कबुद्धि से ही परिचालित है और पुराणों में चित्रित अस्वाभाविक और अलौकिक घटनाओं को यथावत् स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं होता । इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक वाङ्मय में चित्रित अलौकिक घटनाओं को लौकिक बनाकर तथा आदर्श पात्रों को भी दोष-गुण-परिपूर्ण यथार्थ मानव के रूप में अंकित करने का परिश्रम किया है । खड़ीबोली के "प्रियप्रवास", "वैदेही वनवास", "साकेत" आदि सभी काव्यों में ऐसा ही हुआ है । खड़ीबोली के कवि अपने देश के प्राचीन गौरव के प्रति सचेष्ट रहकर भी वर्तमान देश की दशा के प्रति अत्यन्त क्षुब्ध बने रहे और कवि लोग वेद-पुराण युग, रामायण महाभारत की यात्रा करते हुए भी वर्तमान के चारों ओर ही फिरते रहे आलोच्य कवियों ने पौराणिक वाङ्मय में चित्रित अलौकिक घटनाओं और दिव्य पुरुषों को क्रमानुसार विश्वसनीय घटनाओं और महापुरुषों के रूप में प्रतिष्ठित करके जनता के समक्ष अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया ।

मानवतावाद

यह आधुनिक युग की एक विशेषता रही है । पारलौकिक मूल्यों के स्थान पर इहलौकिक लक्ष्यों को प्रमुखता देनेवाली विचारधारा है मानवतावाद । इस विचारधारा की विशेषता यह है कि यह मानव की महत्ता उद्घोषित करने के साथ उसके अन्तरंग और बाह्य, व्यक्तिगत और सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी रूपों को तत्कालीन साहित्य में अंकित करती है । युगविशेष के अनुसार मानवतावाद का स्वरूप बदलता रहता है । खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में कवियों ने व्यक्तिवादी, उदारतावादी भव्यवादी, करुणासिक्त और आध्यात्मपरक दृष्टि से मानव की समस्याओं पर

विचार किया है । कवियों ने मनुष्य मनुष्य के बीच समता, प्रेम और सहानुभूति प्रतिष्ठा की है और मनुष्यों के बीच उठी हुई संकीर्णता की दीवारों को तोड़कर उसे मुक्त वातावरण में साँस लेने का अवसर प्रदान किया गुप्तजी, हरिऔध जी, मिश्र जी, नवीन जी आदि तत्कालीन कवियों ने दिव्य गुण सम्पन्न पौराणिक पात्रों को मानवीय रूप में चित्रित करके मानव की महत्ता उद्घोषित की है । गुप्तजी जैसे द्विवेदी युग के कवियों ने मानव की महत्ता की स्वीकृति की है । वे मानव में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करके भी ईश्वर को नहीं भुला सके हैं, मनुष्य के पुरुषार्थ के प्रति आस्थावान होकर भी वे भाग्य और प्रारब्ध के विश्वास को नहीं छोड़ सके हैं । छायावाद की रचना "कामायनी" में कवि ने मानवता के जनक मनु के चरित्र के उद्घाटन से मानवता की जयध्वनि की है । 'कुरुक्षेत्र' में भी सर्वत्र मानव, मानव-जगत और मानवीय मूल्यों की महिमा का ही बखान किया गया है । युधिष्ठिर की विडम्बना का चित्रण और निवृत्तिमूलक वृत्तियों का विरोध करके भी कवि अन्ततः मानव की महत्ता को स्थापित करना चाहता है । कुरुक्षेत्र युद्ध के भयंकर विनाश पर भी कवि मानवता का अवसान नहीं मानते, वे मानवता के उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा से युक्त संदेश प्रसारित करते हैं । प्रगतिवाद के पौराणिक काव्यों जैसे "रश्मिरथी", "कर्ण", "सेनापति कर्ण", एकलव्य", "कैकेयी", "अंगराज", आदि काव्यों में मानवतावाद का पूर्ण विकसित रूप ही देखा जाता है । इन काव्यों के कवियों ने मानव की भलाई की आशा मात्र नहीं व्यक्त की है, बल्कि उन्होंने सामाजिक विषमताओं को मिटाने केलिए क्रान्ति और संघर्ष के माध्यम से समाजवाद की प्रतिष्ठा का आह्वान किया है । उन्होंने वर्गभेद, शोषण और उत्पीड़न का विरोध करके व्यक्ति की समानता स्थापित करने का प्रयास किया है । राष्ट्रीय अत्याचारों को मिटाने का आह्वान किया है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में साम्राज्यवाद तथा अन्यायपूर्ण युद्धों की भर्त्सना की है तथा उन्होंने मानवता के विकास और सर्वतोमुखी प्रगति केलिए विश्वशान्ति की

स्थापना का आग्रह प्रकट किया है । "रश्मिरथी", "अंगराज", "कर्ण", "सेनापति कर्ण" आदि काव्यों में कर्ण के चरित्र को आधुनिक मानवतावाद के प्रकाश में उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया गया है । इन कवियों ने कर्ण के चरित्र के माध्यम से कलंकित, उपेक्षित मानवता की मूकता को वाणी दी है और उन्होंने कुलगृह, जाति-जन्य, आभिजात्य जन्य झूठी मान मर्यादा और दम्भ को मिथ्या सिद्ध कर दिया है । स्वातन्त्र्योत्तर युग के प्रयोगवाद और नई कविता मानवता और स्वातंत्र्य की कविता है । इसमें सामाजिकता और स्वातंत्र्य की कविता है/x सर्वों/सत्ता से आक्रान्त व्यक्ति की स्वरक्षा का तीव्र उद्घोष है और लघुमानव की प्रतिष्ठा है । नई कविता मानव की स्वतन्त्रता में बाधक सभी तत्वों के प्रति खण्डनात्मक पद्धति लेकर चली है । जगदीश गुप्त ने लिखा है कि मानव परम्परा से ईश्वर, धर्म एवं देव देवियों की अंध श्रद्धा का शिकार रहा है । फलत: धर्मों, सम्प्रदायों और ईश्वर एवं देवताओं की परिधि में बंधकर व्यक्त होनेवाली मानव-चित-चेतना को यथाशक्ति बंधनमुक्त करके विज्ञान की वस्तुपरक उपलब्धियों से सम्बद्ध करके सामाजिक स्तर पर प्रस्तुत करना आज का प्रमुख ध्येय है[1] । इसलिए धर्मवीर भारती जैसे कवि पौराणिक वृत्तों एवं चरित्रों के द्वारा नव मानव को व्यापक अनीति और शोषण के समक्ष मानवता की मशाल जलाए हुए अग्रसर होने का आह्वान करते हैं ।

गान्धीवाद

महात्मा गान्धी के दर्शन को गान्धीवाद के नाम से अभिहित किया गया है । भारत का स्वतंत्रतापूर्व युग गान्धीजी से खूब प्रभावित था तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में गान्धी विचारों का प्रभाव पड़ चुका था । खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में भी

1· डॉ· जगदीश गुप्त - आलोचना - जुलाई 63, पृ·88

इसकी झलक देखी जा सकती है । सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, साम्राज्यवाद का विरोध, नीतिमूलक धार्मिक आचरण, सामाजिक दृष्टि से सेवा भाव, सुधारवाद आदि गान्धीजी के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन "साकेत", "उर्मिला" "वैदेही वनवास", "राम-राज्य", "साकेत-सन्त", "कामायनी", "नहुष" आदि सभी काव्यों में देखा जाता है । गान्धीजी के व्यक्तित्व और उनकी आदर्शवादी विचारधारा का बड़ा ही गहरा प्रभाव प्रगतिवाद के पौराणिक काव्यों में भी देखा जा सकता है । प्रगतिवाद के पौराणिक काव्यों में गान्धीवाद का प्रभाव समाज सुधार आन्दोलन जैसे अछूतोद्धार, मद्य-निषेध, स्वावलम्बी जीवन में निष्ठा और इस प्रकार की अन्य प्रवृत्तियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । "उर्मिला" के राम गान्धीजी के जैसे साम्राज्यवाद के विरोधी हैं । "साकेत" में गान्धीवाद के सभी आदर्श किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं । "साकेत" की सीता गान्धीजी के आदर्शों के अनुकूल नीच जाति कोल-भिल्ल बालाओं के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करती है और उन्हें कातना बुनना सिखाती है । "कामायनी" की श्रद्धा भी हाथों में तकली लेकर बुनती है । "कामायनी" के प्रारम्भिक सर्ग में अहिंसा की जिस विचारणा का समर्थन कवि ने श्रद्धा के माध्यम से कराया है, वह पूर्ण रूप से गान्धीवादी विचारधारा का द्योतक है । प्रयोगवाद के पौराणिक काव्यों जैसे "एकलव्य", "रश्मिरथी", "अंगराज", "सेनापति कर्ण", "उर्मिला" आदि में पौराणिक पात्रों की युग संपृक्त अभिव्यक्ति में वर्ण-वैषम्य, छुआछूत, मानव की दुर्बलताओं, दीन दुःखियों की आहों, शोषित और पीड़ित वर्ग पर हो रहे अत्याचारों, जीवन के अभावों, विवशताओं और विडम्बनाओं के चित्रण में गान्धीवाद का प्रभाव अवश्य देखा जाता है ।

युगीन समस्याओं का चित्रण

खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में कवियों ने युगीन समस्याओं का चित्रण करने केलिए पौराणिक पात्रों को ही प्रमुख साधन बनाया है। पौराणिक पात्रों के माध्यम से कवियों ने सामाजिक दोषों का यथार्थ चित्रण करके जनता को उनसे दूर रहने की प्रेरणा दी है। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत, शोषण, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों पर अपनी लेखनी चलाई है। "साकेत" में कवि ने क्षत्रियकुलभूषण राम तथा निम्नवर्गीय वनवासी गुह को परस्पर गले लगाकर मिलते हुए अंकित किया है और इस प्रकार उन्होंने अस्पृश्यता निवारण तथा उच्च-नीच जातियों में समन्वय स्थापित करने की भावना प्रकट की है। पूंजीवादी और साम्यवाद, से आक्रान्त जनता की रक्षा केलिए "साकेत सन्त" के कवि ने भरत के माध्यम से साम्यवादी विचारों का प्रचार कराया है। "नहुष" काव्य में शोषण का विरोध प्रकट किया गया है तो "कुरुक्षेत्र" में युद्ध की समस्या पर विचार प्रकट किया गया है। "रश्मिरथी", "कर्ण", "सेनापति कर्ण", "अंगराज", "एकलव्य" आदि काव्यों में जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओं की खुलकर विवेचना की गई है तो स्वातन्त्र्योत्तर युग के "अंधायुग" में युद्ध की समस्या ही उद्घाटित की है।

नारीजागरण

सामाजिक जीवन में जो नारी सदियों से शोषण एवं विलासिता का उपकरण रही है वही नारी महात्मा गान्धी तथा अन्य नेताओं का आधार पाते ही स्वावलम्बन और सम्मानपूर्ण सामाजिक जीवन के संगठन की ओर उन्मुख हुई। खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में भी नारी की समस्या का अंकन किया गया है। शताब्दियों से नारी जाति पर होनेवाले शोषण तथा अत्याचार एवं समाज में उसकी पतित स्थिति की ओर

कवियों ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से प्रकाश डाला है । स्वातंत्र्योत्तर युग में "द्रौपदी", "कनुप्रिया", आदि काव्यों में पूर्ण रूप से पुरुष के समतुल्य एवं पुरुष को शक्ति तथा स्फूर्ति प्रदान करनेवाली सहचरी या सहधर्मिनी आधुनिक नारी का यथार्थ चित्र अंकित करते हुए नारीजागरण का प्रभाव दिखाया गया है ।

स्वातंत्र्योत्तर युग

पहले देखा जा चुका है कि स्वतंत्रता के पूर्व की युगीन परिस्थितियों के प्रभाव में आकर नवीन प्रवृत्तियाँ जैसे मानवतावाद, बौद्धिकवाद, गान्धीवाद, नारीजागरण, प्राचीन भारतीय संस्कृति पर बल देने की प्रवृत्ति आदि खड़ीबोली हिन्दी काव्य में देखी जाती है । इन्हीं प्रवृत्तियों का सुगठित विकास स्वातंत्र्योत्तर युग के पौराणिक काव्यों में देखा जाता है । इसके अलावा धर्मवीर भारती जैसे नये कवियों ने टूटे मूल्य और विघटित मान मर्यादाओं की स्थिति में लघुमानव की प्रतिष्ठा भी की है । पौराणिक देवताओं और घटनाओं के प्रति कवि दोनों आस्था और अनास्था व्यक्त करते हैं । - "अंधायुग" में कवि जहाँ अभिशापों से मुक्ति पाने केलिए आस्था और विश्वास का गायन करते हैं तो तत्क्षण इसके विपरीत अपनी कुंठित स्थिति का आभास देकर आस्था को आन्दोलित भी कर देते हैं । उन्होंने लघुमानव की लघुता केलिए अधिनायकों का अधिनायकत्व और देवताओं के देवत्व को उत्तरदायी घोषित किया है । "अंधायुग" में कवि ने अश्वत्थामा की महत्ता उद्घाटित की है और उसके चरित्र के माध्यम से यही तथ्य उद्घोषित किया है कि देवतुल्य युधिष्ठिर तथा कृष्ण के अर्द्धसत्य विक्षुब्ध, जर्जर, मानसिक रोग से आक्रान्त होने के कारण ही उन्होंने लघुता या कुकृत्यों का आचरण किया है ।

अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव में आकर भारतीय साहित्य को भावपक्ष के साथ साथ अभिव्यक्ति पक्ष की दृष्टि से भी अंग्रेज़ी साहित्य के समतुल्य बनाने का परिश्रम किया गया है । फलत: भारतीय साहित्य में भी प्रतीकवाद, बिंबवाद, मनोविश्लेषणवाद आदि नवीन प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं । स्वतंत्रता के बाद के पौराणिक काव्यों पर भी इसका प्रभाव देखा जाता है । आज के नये कवियों ने पौराणिक कथाओं की अपेक्षा उनके सूक्ष्म सन्दर्भों का उपयोग अधिक किया है । ये संदर्भ प्राय: उपमा, रूपक, प्रतीक और बिम्ब के रूप में पाये जाते हैं ।

प्रतीकवाद

किसी मन:स्थिति, विचारधारा या भाव दशा को सांकेतिक रूप से अभिव्यक्त करना ही प्रतीक विधान का मूल उद्देश्य है । सन् 1960 में प्रकाशित "अंधायुग", "कनुप्रिया" तथा "द्रौपदी" में यह प्रवृत्ति पूर्ण रूप से देखी जाती है । प्रतीक विधान की विशेषता यह है कि नये कवि आधुनिक जटिल प्रश्नों का समाधान अन्तर्मुखी दृष्टि द्वारा करना चाहते हैं । धर्मवीर भारती ने महाभारत में चित्रित घटनाओं या पात्रों के प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान की अभिव्यक्ति की है । वर्तमान युग में विज्ञान की प्रगति दिन प्रति दिन बढ़ती रहती है और अणुबम, न्यूट्रोन बम जैसे घोर विध्वंसकारी अस्त्र शस्त्रों के निर्माण में इसका दुरुपयोग किया जाता है । इसी अणुबम तथा न्यूट्रोन बमों के घातक, दुर्दम्य अभिशप्त प्रभाव को ही भारती ने ब्रह्मास्त्र के माध्यम से प्रकट किया है - उनका "ब्रह्मास्त्र" अणुबम का सार्थक और स्पष्ट प्रतीक है । "द्रौपदी" काव्य में भी कवि ने द्रौपदी तथा अन्य पात्रों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की है ।

बिम्बवाद

बिम्बों के माध्यम से सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने की विधा हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव से शुरू हो गई। खड़ीबोली के पौराणिक काव्य भी इस विधा से अछूते नहीं हैं। कविता में सूक्ष्म अनुभूतियों को विविध आकार, प्रतीक आदि ऐन्द्रिय मूर्त आधारों के माध्यम से गोचर रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को बिम्ब कहा जाता है। छायावादी काव्य में अनेक प्रकार की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति देखी जाती है। वर्तमान काल के प्रयोगवादी और नये कवियों ने पौराणिक संदर्भों को तोड़ मरोड़ कर समकालीन यथार्थ के जटिल स्तरों को प्रतिबिम्बित किया है। धर्मवीर भारती की कनुप्रिया तथा 'अंधायुग' में यह प्रवृत्ति परिलक्षित है।

मनोवैज्ञानिकता

हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में चरित्रों को मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करनेवाला कवि चरित्र को जीवन की विविध परिस्थितियों में चित्रित करके मानसिक प्रक्रियाओं के माध्यम से उसका व्यक्तित्व निरूपण करता है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान की प्रधानता के कारण ही चरित्र चित्रण में इस विशेष शैली का प्रयोग किया जाता है। इससे चरित्र चित्रण अधिक स्वाभाविक और मार्मिक बन जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने रस सिद्धान्त के विवेचन में इसी तथ्य की ओर संकेत किया है। वे लिखते हैं कि 'रस सिद्धान्त लेकर आगे बढ़ने पर हम काव्य की उच्च भूमि में पहुँचते हैं जहाँ मनोविकार अपने क्षणिक रूप में ही दिखाई न देकर जीवन व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसी स्थायित्व की प्रतिष्ठा द्वारा शील-निरूपण और पात्रों का चरित्र चित्रण होता है'[1]।

---

1. रामचन्द्रशुक्ल - त्रिवेणी - पृ.152

मनोविज्ञान के सहारे से व्यक्ति के अन्तःसंघर्ष को व्यक्त किया जाता है और इस प्रकार पात्रों का वास्तविक रूप सामने आ जाता है। इसके माध्यम से व्यक्ति के मन की समस्याओं, उलझनों और प्रतिक्रियाओं को सहज अभिव्यक्ति मिल जाती है। आधुनिक कवियों ने पात्रों के विवेचन में इस प्रवृत्ति को खूब अपनाया। मैथिलीशरण गुप्त से लेकर धर्मवीर भारती तक के कवियों के पात्र चित्रण में यह प्रवृत्ति सहज ही परिलक्षित होती है। इस प्रवृत्ति से फिर कलंकित पौराणिक पात्र भी इन काव्यों में सुधरे हुए रूप में दिखाई पड़ते हैं : "साकेत" की कैकेयी, "सेनापति कर्ण" के कर्ण तथा "अंधायुग" के अश्वत्थामा इसके सुन्दर सबूत हैं।

निष्कर्ष

खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों की पृष्ठभूमि तथा सन् 1900 - 1960 तक के पौराणिक काव्यों पर तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव का अनुशीलन किये जाने पर यह देखा जा सकता है कि बदलती परिस्थितियों के फलस्वरूप खड़ीबोली के पौराणिक काव्य पहले लोकभूमि पर उतरे जाने उसकी दृष्टि ईश्वर परक से मानव परक हुई और फिर उन्होंने जाति कुल आदि के बंधनों से विमुक्त उच्चादित सम्पन्न मनुष्यत्व की महत्ता उद्घोषित की। इसके अलावा प्रयोगवाद तथा नई कविता के पौराणिक संकेतों या प्रतीकों तथा बिम्बों के माध्यम से नवीन अर्थ प्रदान करने की प्रवृत्ति भी अपनाई है गई।

द्वितीय अध्याय

पुराण और [illegible] पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य

द्वितीय अध्याय

पुराण और उन पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य

पुराण शब्द

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में पाणिनी, यास्क तथा स्वयं पुराणों का उल्लेख महत्वपूर्ण रहा है। पाणिनी के अनुसार "पुरा" शब्द से "ट्यु" प्रत्यय लगाने और "तुट्" के आगमन से "पुरातन" शब्द की व्युत्पत्ति होती है, जिसका अर्थ प्राचीन काल में होनेवाला अथवा प्राचीन है[1]। यास्क ने पुराण की व्युत्पत्ति "पुरा नवं भवति" के रूप में बतायी है, जिसका अर्थ है - जो प्राचीन होकर भी नया होता है[2]। वायुपुराण में पुराण की व्युत्पत्ति "पुरा अनति" है अर्थात् जो प्राचीन काल में जीवित था[3]। पद्मपुराण के अनुसार "पुरा परम्परां वष्टि कामयते" अर्थात् जो प्राचीनता अथवा परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है[4]।

---

1. पाणिनीसूत्र 4/3/23
2. यास्क का निरुक्त 3/19
3. वायुपुराण 1/103
4. पद्मपुराण 5/2/53

इसके पृथक् ब्रह्माण्ड पुराण में बताई गई व्युत्पत्ति है - "पुरा एतद् अभूत्" जिसका प्रयोग प्राचीन काल में ऐसा हुआ के अर्थ में हुआ है[1]। इन समस्त व्युत्पत्तियों का विवेचन करने से स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों का प्रतिपाद्य प्राचीन काल से सम्बन्धित विषय रहा है।

पुराण शब्द का साधारण अर्थ पुराना होने पर भी मात्र प्राचीन होने से पुराणों को यह नाम नहीं दिया गया है। वैदिक साहित्य को पुराण साहित्य से प्राचीन माना जाता है, लेकिन वेदों को कोई पुराण नहीं कहता। इसके अलावा पुराणों में ही एक भविष्यद् पुराण भी है और यहाँ भविष्यद् (भावी) तथा पुराण (पुराना) - परस्पर विरोधी अर्थवाले शब्द एक ही जगह मिलते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि "पुराण" शब्द एक विशेष पारिभाषिक अर्थ का बोध कराता है। प्राचीन ग्रन्थों में "पुराण" और "इतिहास" शब्दों का प्रयोग प्रायः एक साथ किया हुआ मिलता है। पुराणों का अध्ययन करने के बाद पुराणों को इतिहास मानना तो दूर की बात है क्योंकि इन में ऐसी घटनाएं भरी पड़ी हैं जिन पर आधुनिक युग में बड़ी कठिनता से भी विश्वास न किया जाए। पौराणिक युग में इतिहास न विषय था और पुराण समानार्थक शब्द नहीं रहे हैं। इतिहास का अर्थ आज इतिवृत्त का सच्चा बोध करानेवाला साहित्य है और पुराण अंशतः या पूर्णतः ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा लेकर आध्यात्मिक रहस्यों और तत्वों का बोध करानेवाला वाङ्मय है।

आज पुराण शब्द से यही तात्पर्य समझा जाता है कि पुराण वेद उपनिषदों के सूक्ष्म ज्ञान को कथा, उपाख्यान, दृष्टान्त और उदाहरण देकर समझानेवाला साहित्य है[2]।

---

1. ब्रह्माण्ड पुराण 1/1/173
2. हिन्दी के पौराणिक नाटक - डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री - पृ. 7

अंग्रेजी भाषा में पुराण शब्द का बोध "माइथालाजी" शब्द से होता है, जिसका अर्थ यह है कि माइथालाजी सभ्यता के आरम्भिक काल की समस्त कथाओं, दन्तकथाओं और परम्पराओं के सामूहिक अध्ययन को कहा जाता है।[1] इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द मिथस (Mythus) से बताई जाती है। यह शब्द प्राचीन मान्यताओं के आधार पर कल्पित अथवा असत्य पर आधारित कहानियों का बोध कराता है। माइथालाजी शब्द पुराण से मिलता जुलता शब्द होने पर भी उसमें भिन्नताएं भी अवश्य देखी जा सकती हैं। प्राचीन विश्वास, दिव्य अथवा दिव्यादिव्य व्यक्तियों के चरित्र, प्राकृतिक शक्तियों को मानव रूप में उतारने में पुराण माइथालाजी के समतुल्य हैं। वहाँ उसमें झूठी कथाओं के ग्रहण पर बल नहीं है। इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि इसमें कल्पना का मिश्रण नहीं है।

पुराणों का मूल स्रोत

पुराणों में प्राचीन आख्यायिकाएं हैं, उनका मूल चारों वेदों की संहिताओं में, ब्राह्मणों में और उपनिषदों में भी है।[2] इस आधार पर पुराणों का मूल स्रोत वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् स्वीकार किये जा सकते हैं वेदनिहित सिद्धान्तों की व्याख्या करना पुराण का उद्देश्य माना जाता है, अतः यह ठीक ही प्रतीत होता है कि पुराणों का मूल स्रोत उपर्युक्त वैदिक साहित्य है। वैदिक साहित्य में जो कथाएं सूत्र रूप में दी गई थीं, उनका विस्तार आवश्यक था और इसी की पूर्ति के प्रयास में संभवतः पुराणों की रचना हुई।[3] कतिपय विद्वान पुराणों का मूल स्रोत महाभारत मानते हैं और उनका रचना काल ई॰पू॰300 से 800 के बीच मानते हैं। पुराणों को आधुनिक रूप देने में भले ही महाभारत का हाथ रहा हो, परन्तु महाभारत के पूर्व पुराण का अस्तित्व अवश्य रहा था। इस मत की पुष्टि गौतमधर्मसूत्र और आपस्तम्ब

1• दी न्यू पापुलर इन्साइक्लोपीडिया - वाल्यूम - 1, पृ॰401

2• संस्कृत साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी बुक डिपो, कलकत्ता से 1933 में प्रकाशित, प्रथम संस्करण, पृ॰73

3• सूर और उनका साहित्य ‑ डॉ॰ हरवंशलाल शर्मा - पृ॰174,175

धर्मसूत्रों में आये हुए पुराणों के श्लोकों से होती है, जिनका समय पाश्चात्य विद्वानों ने क्रमशः ई॰पू॰ 600 तथा ई॰पू॰ 500 मान लिया है,[1] जबकि महाभारत का समय इन धर्मसूत्रों के उपरान्त ही माना जाता है ।

पुराणों का निर्माणकाल

पुराणों की रचना या इसके निर्माणकाल के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं । अनेक भारतीय मनीषी पुराणों को विश्व के प्राचीनतम साहित्य, वेद के आसपास रचित मानते हैं । शतपथ ब्राह्मण[2] में पुराण को वेद के समकक्ष बताया गया है । अथर्ववेद[3] में चारों वेदों के साथ पुराण को भी उल्लिखित किया गया है । यदि वेदों के साथ ही पुराण की उत्पत्ति मानी भी जाय तो पुराण भी वेदों के समान ही सृष्टि के साथ उत्पन्न हुए, जिसे ज्योतिष की गणना के अनुसार विक्रमी संवत् के [illegible] वर्ष 1912 की समाप्ति तक 1,15,48,85,17 (एक अरब, पचानबे करोड़, अट्ठावन लाख, पचासी हजार, सत्रह) सौर वर्ष तथा 56 होते हैं[4] । अधिकांश पण्डितों का मत तो यह है कि पुराण अत्यन्त प्राचीन होने पर भी, जिस रूप में पुराण आज उपलब्ध होते हैं उस रूप में प्राचीन काल में न रहे होंगे[5] । उनकी राय में वेदों के समान पुराणों का स्वरूप सदा सर्वदा के लिए निश्चित नहीं किया गया है, परन्तु यह समय परिवर्तन के प्रभाव से स्वयं परिवर्तनशील है । इसलिए पुराण की यह व्युत्पत्ति - 'पुरापि नवं भवति' बहुत समीचीन लगती है क्योंकि यह प्राचीन होने पर भी कालान्तर में उत्पन्न परिवर्तनों को अपने में आत्मसात् कर लेता है[6] । पुराणों की रचना के सम्बन्ध में और एक मत यह है कि पुराण के विकास में दो धाराएँ हैं - (1) व्यासपूर्व धारा

---

1. सैक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट सीरिज़ - वाल्यूम 14, बुहलर
2. शतपथ ब्राह्मण 13/14/3/12-13 तथा 11/5/6/8
3. अथर्ववेद 3/4/1
4. सूर और उनका साहित्य - डॉ॰हरवंशलाल शर्मा, पृ॰164
5. वही - पृ॰165
6. पुराण विमर्श - पृ॰39

[2] व्यासोत्तर धारा । व्यास के पहले पुराण की कथाएं लोकप्रचलित परन्तु अव्यवस्थित इतस्ततो विकीर्ण लोकवृत्तात्मक विद्याविशेष थी । लेकिन इनको सुव्यवस्थित रूप में वेदव्यास ने प्रस्तुत किया ।

पुराणों की संख्या और उनका विषय

मत्स्यपुराण के 53 वें अध्याय में बताया गया है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में एक ही श्रुति और स्मृति थी और उनमें से अनेक श्रुतियाँ और स्मृतियाँ निकलीं, इसी प्रकार पहले एक ही पुराण था और उसमें से अनेक पुराण निकले । "पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ"[1] वैदिक वाङ्मय में भी पुराण शब्द एकवचन में आया है[2] । इसका बहुवचन में प्रयोग सर्वप्रथम आश्वलायन गृह्यसूत्र [4.6] में मिलता है । पुराणों में विशेषकर विष्णु पुराण में बताया गया है कि वेदों का संपादन करने के उपरान्त पुराण के तत्व को जाननेवाले भगवान वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि के साथ साथ पुराण संहिता की रचना की । लोमहर्षण नामक उनके एक सूत शिष्य को उन्होंने यह पुराण संहिता दी । लोमहर्षण के तीन शिष्यों ने मूल संहिता के आधार पर एक पुराणसंहिता की रचना की । इन्हीं चार संहिताओं का सार लेकर यह पुराण संहिता रची गई । वैदिक साहित्य में पुराण शब्द का उल्लेख इसी कारण हुआ है ।

आज अठारह महापुराण और अठारह उपपुराण विद्यमान है । पुराणों के नाम ये हैं - ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु अथवा शिव, भागवत [श्रीमद्भागवत तथा देवीभागवत], नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड ।

---

1. पुराण विमर्श - पृ.37
2. ऋच सामानि छन्दांसि यजुषा सह अथर्ववेद - 11/7/24

विषय

पुराणों के नाम से ही उनके विषय का आभास मिल जाता है । पुराणों के स्थूल अध्ययन से यह देखा जा सकता है कि सभी पुराणों में प्रायः समान विषयों की पुनरावृत्ति की गई है । लेकिन भिन्न भिन्न उद्देश्यों के अनुसार प्रत्येक पुराण में कोई प्रसंग विशेष रूप से आ गया है । सभी पुराणों में ब्रह्म के नाना रूपों की कल्पना करके उनके अवतारों की चर्चा की गई है । उनकी कथाओं और माहात्म्य से पुराण भरे पड़े हैं[1] । सभी पुराणों का उद्देश्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति की उपासना और मुख्य रूप से किसी एक देव की उपासना है । अधिकांश पुराणों में भागवत धर्म की प्रतिष्ठा है । भागवत धर्म वैष्णव धर्म का ही दूसरा नाम है । भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों की चर्चा ही वैष्णव पुराणों का विषय रहा है । भगवान विष्णु के अवतारों में श्रीकृष्णावतार को सर्वोपरि माना गया है । श्रीकृष्णावतार या श्रीकृष्ण के चरित्र को प्रमुखता देनेवाले मुख्य पुराण ये हैं - ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म-वैवर्त पुराण, भागवत पुराण {श्रीमद्भागवत तथा देवी भागवत} वायु पुराण, लिंग पुराण, अग्नि पुराण और हरिवंश पुराण ।}

ब्रह्म की दिव्य और अलौकिक घटनाओं का वर्णन करने के साथ सभी पुराणों में परम्पराएं और वंशावलियों का भी विवेचन किया गया है ।

पुराणों का लक्षण

पुराण के लक्षणों का उल्लेख करते हुए मत्स्य पुराण में लिखा गया है -

---

1· सूर और उनका साहित्य - डॉ·हरवंशलाल शर्मा - पृ·166

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम् ।।

पुराणों के वर्ण्य विषय के रूप में इन लक्षणों का निर्वाह किंचित् परिवर्तनों के साथ सभी पुराणों में किया गया है ।

सर्ग

जगत् की और उसके विविध पदार्थों की उत्पत्ति सर्ग कहलाती है । जब मूल प्रकृति में तीन गुण क्षुब्ध होते हैं तब महत् तत्व की उत्पत्ति होती है । महत् तत्व से तामस, राजस तथा सात्विक - के अहंकार बनते हैं । विविध अहंकार से ही पंचतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा भूतों की उत्पत्ति होती है । इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग है ।

प्रतिसर्ग

प्रतिसर्ग माने सर्ग का विपरीत तत्व अर्थात् प्रलय है । इस ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार के हैं नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक ।

वंश

ब्रह्माजी के द्वारा जितने राजाओं की सृष्टि हुई है, उनकी भूत, भविष्य तथा वर्तमानकालीन परम्परा को "वंश" कहा जाता है । भागवत को छोड़कर अन्य पुराणों में इस शब्द के भीतर ऋषियों के वंश को ग्रहणकिया गया है ।

मन्वन्तर

यह शब्द सृष्टि के विभिन्न काल-मान का परिचायक है। 14 मन्वन्तर होते हैं और प्रत्येक मन्वन्तर का स्वामी एक विशेष मनु होता है और उसके सहयोगी के रूप में पाँच पदार्थों का उल्लेख किया गया है। इसका तात्पर्य तो यह है कि मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान् के अंशावतार से युक्त समय को मन्वन्तर कहकर पुकारा गया है। पुराणों में इन्हीं चौदहों मन्वन्तरों का वर्णन किया गया है।

वंशानुचरित

पुराणों में विभिन्न राजवंशों में उत्पन्न हुए वंशधरों का भी वर्णन किया गया है। यद्यपि वंशानुचरित के रूप में पुराणों में महर्षियों का भी उल्लेख किया गया है तो भी विस्तार और व्यापकता के साथ राजाओं के चरित्र का वर्णन किया गया है।

पुराणों के उपर्युक्त पंचलक्षणों के अतिरिक्त भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में पुराणों के सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय आदि दस लक्षणों का उल्लेख किया गया है। वायु पुराण में पुराणों के वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें बताई गई हैं - 'पुराणों में बहुत से धर्मों का निरूपण किया गया है। रागी, विरागी, यती, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र विशेषतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अन्यान्य संकर जातियों द्वारा विशेष धर्मों का उसमें वर्णन है। गंगा आदि महान् नदियों एवं विविध प्रकार के यज्ञों, तपों एवं व्रतों का उल्लेख इसमें किया गया है। इसके साथ ही अनेक प्रकार के दान, यम, नियम, योग, धर्म, सांख्यधर्म, भागवत धर्म, भक्ति मार्ग, ज्ञानमार्ग, वैराग्य मार्ग, विविध

उपासनायें, चित्त की कर्म संशुद्धि आदि पर इसमें प्रकाश डाला गया है । ब्रह्म, शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, सांख्य, यजुर्वेदादि विषयों का इन पुराणों में पर्यालोचन किया गया है[1] ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों में प्रमुखतया सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित का वर्णन हुआ है और इन्हीं के साथ अन्य गौण विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है । आगे अठारह पुराणों का संक्षिप्त विषय विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा ।

ब्रह्म पुराण

इसमें 35 अध्यायों में श्रीकृष्ण की कथा वर्णित है । साथ ही ब्रह्मा का भी वर्णन विशेष रूप से किया गया है ।

विष्णु पुराण

इसमें छः अंश हैं । इसके चौथे अंश के 15 वें अध्याय से कृष्ण के जन्म का तथा पंचांश में उनकी लीलाओं का वर्णन है । इसके अन्तर्गत अनेक छोटी छोटी पोथियाँ हैं जिनमें निम्नलिखित विषय हैं - कन्या कृष्ण माहात्म्य, कलिस्वरूपाख्यान, कृष्ण-जन्माष्टमी-व्रतकथा, जड़-भरताख्यान, देवी स्तुति, महादेव स्तोत्र, विष्णु-पूजन, सूर्य-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र आदि ।

पद्म पुराण

इसके पाँच खण्ड हैं - सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, पाताल एवं उत्तर खण्ड । पाताल खण्ड में श्रीकृष्ण चरित दिया गया है ।

1. वायु पुराण - 104/11/17

इसी प्रकार उत्तर खण्ड में अवतारों के वर्णन, अनेक माहात्म्य और कृष्ण चरित दिया गया है ।

वायु अथवा शिव पुराण

यह सात संहिताओं में विभाजित है । इसमें शिव के उपास्य का ही आधिक्य है । लेकिन रुद्र संहिता तथा उमा संहिता में श्रीकृष्ण का उल्लेख है ।

अग्नि पुराण

इसमें 383 अध्यायों में प्रायः सभी विषयों पर लिखा गया इससे भारत की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, सभ्यता आदि का ज्ञान बड़ी सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है । धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, वेदान्त तथा अठारह विद्याओं के वर्णन के साथ-रामायण, महाभारत, हरिवंश आदि का सार भी इसमें प्रस्तुत किया गया है । इसके अलाव इसके बारहवें अध्याय में श्रीकृष्णावतार की कथा विस्तार से दी गई है ।

नारदीय महापुराण

इसमें सभी पुराणों की संक्षिप्त विषय सूची श्लोक रूप में दी गई है । कार्तिक-माहात्म्य, दत्तात्रेय-स्तोत्र, ~~पार्थिवार्चन माहात्म्य~~, यादवगिरि माहात्म्य, श्रीकृष्ण महात्म्य, संकट-गणपति स्तोत्र, मृग व्याध कथा इत्यादि अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ नारद पुराण के ही अंग प्रतीत होते हैं ।

ब्रह्म-वैवर्त - महापुराण

इसके प्रथम भाग में ब्रह्म, प्रकृति और गणपति का वर्णन है तो दूसरे भाग में श्रीकृष्ण का वर्णन है । कृष्ण स्तोत्र, गंगा स्तोत्र, ओंकार दानविधि, अद्भुतकृति-माहात्म्य, रत्नेश्वर माहात्म्य, एकादशी माहात्म्य, परशुराम के प्रति शंकरोपदेश, मुक्तिक्षेत्र माहात्म्य, राधा-उद्धव संवाद, श्रीगोष्ठी माहात्म्य, काशी-केदार माहात्म्य आदि छोटे छोटे ग्रन्थ भी इसके अन्तर्गत आते हैं ।

स्कन्द पुराण

स्कन्द पुराण, पुराणों में सबसे बड़ा है । प्राचीन भारत वर्ष का इसमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है जो इसे भौगोलिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण प्रमाणित करता है ।

वराह पुराण

इसमें 218 अध्याय है । वासुदेवस्य माहात्म्य, सप्तम्बक माहात्म्य, काकगीता माहात्म्य, विमान माहात्म्य, वेंकटगिरि माहात्म्य आदि छोटी छोटी अनेक पोथियाँ वराह पुराण की ही अंग है ।

मार्कण्डेय पुराण

इस पुराण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह साम्प्रदायिक प्रभावों से मुक्त है, बौद्ध लोग भी इस पुराण का आदर करते थे ।

इसमें इक्ष्वाकु-चरित, तुलसी चरित, रामकथा, कुश-वंश, सोमवंश, पुरुरवा, नहुष और ययाति का वर्णन, यदुवंश, श्रीकृष्ण की लीलाएं, द्वारिका चरित, सांख्या कथा, पुर्णवंश और मार्कण्डेय चरित भी दिया गया है ।

वामन पुराण

इस पुराण में विशेषतः दुर्गा , पार्वती और शिव के उपाख्य है । नारद और पुलस्त्य के संवाद ही इसमें मिलते हैं । कर्ई-चतुर्थी कथा, कात्यायनता-व्रत कथा, गंगा मानसिक स्नान, गंगामाहात्म्य दधि-वामन स्तोत्र, वराह माहात्म्य आदि कई छोटे छोटे ग्रन्थ वामन पुराण के अन्तर्गत ही आते हैं ।

कूर्म-पुराण

यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित है । इसमें यदुवंश का वर्णन, श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है ।

गरुड़ पुराण

यह भी एक लोकप्रिय पुराण है । किसी व्यक्ति की मृत्यु पर इसका पाठ किया जाता है, तथा इसका सुनना श्राद्ध कर्म का ही एक अंग माना जाता है । 144 वें अध्याय में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का भी उल्लेख है । इस पुराण के आचार कांड में श्रीकृष्ण की रुक्मिणी, सत्य भामा आदि आठ पत्नियों तथा गोपियों का नाम तो है, पर राधा का नाम कहीं भी नहीं है । त्रिवेणी स्तोत्र, पंचकर्म माहात्म्य, विष्णुधर्मोत्तर, वेंकटगिरि माहात्म्य, वृन्दावन माहात्म्य आदि अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ इस पुराण के ही अंग बताये जाते हैं ।

ब्रह्माण्ड पुराण

इस में 109 अध्याय है और बीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण के आविर्भाव एवं उनसे सम्बन्धित कथाओं का समावेश है। इसके अन्तर्गत अगस्त्य अरुणाद्रि, अनन्तशयन, अर्जुनपुर, अष्टनेत्र स्थान, आदिपुर, आम्नायनिलय कठोरगिरि, कामाक्षी, कामाक्षी विलास, कार्तिक, कावेरी, कुम्भकोण, गोदावरी, गोपुरी, क्षीरसागर, गोमुखी आदि छोटे छोटे ग्रन्थ भी आते हैं।

स्कन्द पुराण

इसमें शिवभक्ति की कथायें ही अधिक है। अरुणाचलमाहात्म्य गौरी कल्याण, पंचाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्रनाम, रुद्राक्षमाहात्म्य, सरस्वती स्तोत्र आदि अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ इसके अंग माने जाते हैं।

भविष्य-पुराण

यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित है। इस पुराण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शाक द्वीपी मग ब्राह्मणों का वर्णन है। इसमें उनकी संस्कृति और सभ्यता का विस्तार से वर्णन किया गया इनको लानेवाले कृष्ण पुत्र साम्ब कहे जाते हैं। मग-ब्राह्मणों का रहन-सहन रीति रिवाज आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है।

हरिवंश पुराण

हरिवंश पुराण महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है। कतिपय विद्वान इसे महाभारत के बाद की रचना मानते हैं। यह विभिन्न

पर्वों में विभाजित है । इसमें विस्तार पूर्वक विष्णु भगवान का चरित्र, श्रीकृष्ण की कथा तथा व्रज आदि में की गई उनकी क्रीडाओं का मनमोहक वर्णन है ।

मत्स्य पुराण

विवेच्य विषय के आधार पर परखने पर मत्स्य पुराण का नाम विशेष उल्लेखनीय रह जाता है । खड़ीबोली के प्रमुख महाकाव्य 'कामायनी' की कथावस्तु की मूल घटना-जलप्लावन की घटना अन्य पुराणों जैसे भागवत पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में संक्षिप्त रूप से उल्लिखित होने पर भी, विशेष रूप से इसका उल्लेख इस पुराण में ही पाया जाता है । इसके अलावा इसमें मनु और मत्स्य के उपाख्यान हैं, देवताओं एवं देवमन्दिरों की पूजा, अर्घ्यदान आदि विविध प्रकार की दान विधियाँ एवं श्राद्धक्रियाएँ आदि हैं । भागवत पुराण- पुराणों में उपजीव्य की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है भागवत पुराण । कृष्ण लीलाओं का वर्णन करनेवाला यह पुराण चिरकाल से कवियों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है । यह पुराण तत्त्व ज्ञान का एक अक्षय भण्डार है और इस ग्रन्थ में सब प्रकार के धर्म, ज्ञान तथा उपासना का बड़ी मधुरता के साथ विवेचन किया गया है । भागवतकार ने इसके माध्यम से भक्ति का उत्कर्ष दिखाकर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करने का परिश्रम किया है । रचना विधान की दृष्टि से इसके दो भाग हैं - (1) दशम स्कन्ध और दूसरा अन्य स्कन्ध । दशम स्कन्ध धर्म का व्यावहारिक पक्ष है और शेष स्कन्ध धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष का समर्थन करते हैं । और भी स्पष्ट रूप से कहें तो प्रथम स्कन्ध से नवम स्कन्ध तक भागवत का चरम वक्तव्य भक्ति और ज्ञान का समन्वय है । अन्य स्कन्धों में भक्ति के आधार पर भगवान की लीलाओं का वर्णन है ।

भक्ति और ज्ञान का प्रतिपादक यह अमूल्य आध्यात्मिक ग्रन्थ होने के साथ साथ एक उत्कृष्ट काव्यकृति भी है । इसमें भाव के साथ साथ भाषा का भी सुन्दरतम रूप अभिव्यक्त हुआ है । वर्णन की चित्रात्मकता, भावों की कोमल व्यंजना, अनुभावों के मनोरम विधान, कल्पनाओं की भावुकतापूर्ण कल्पना, प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण तथा अलंकारों के संतुलित प्रयोग से भागवत में उन सब काव्योचित गुणों का समावेश हो गया है जो उसे स्थायी साहित्य का स्थान प्रदान करता है ।

श्रीमद्भागवत में दर्शन तथा भक्ति के जिन व्यापक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है उनसे भारत की सभी भाषाओं के परवर्ती साहित्यकार प्रभावित हुए हैं । इसके प्रभाव से कृष्ण भक्ति साहित्य को एक विशेष दिशा मिली है । भारत की सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता में जितना योगदान श्रीमद्भागवत पुराण का है, उतना अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं ।

इन अठारह महापुराणों के अतिरिक्त अनेक उपपुराणों का भी उल्लेख किसी किसी महापुराणों में मिलता है । मत्स्यपुराण में चार उपपुराणों के नाम हैं । ब्रह्मवैवर्त पुराण में उपपुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है । कूर्मपुराण में 18 उपपुराण हैं । गरुड पुराण तथा देवी भागवत में भी 18 उपपुराण हैं । इन उपपुराणों का अधिकतम भाग माहात्म्य, स्तोत्र, कल्प, आख्यान और उपाख्यानों से भरा पड़ा है । उपपुराणों का प्रधान उद्देश्य स्थानिक पंथ और उन पंथों की धार्मिक विधि आदि का वर्णन करना ही प्रतीत होता है ।

इन महापुराणों और उपपुराणों के अतिरिक्त गणेश, देवी, कल्कि आदि अनेक पुराण हैं । 24 जैन और 9 बौद्ध पुराण भी हैं । सूक्ष्म रूप से देखने पर ऐसा ज्ञात हो जाता है कि इनकी रचना हिन्दू पुराणों के आधार पर ही हुई है, क्योंकि इनमें भी शिव, ब्रह्मा आदि के उल्लेख हैं ।

रामायण और महाभारत

ऊपर बताये गए पुराणों से भी बढ़कर हिन्दू सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को प्रभावित करनेवाले दो पौराणिक ग्रन्थ हैं :- रामायण और महाभारत । पुराणों के पारिभाषिक अर्थ के अन्तर्गत न आने पर भी ये दोनों अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ रहे और पुराणों से भी बढ़कर इन ग्रन्थों ने भारतीय साहित्य को प्रभावित किया है । महाभारत आदि से ही अधिक भारतीय साहित्य का उपजीव्य ग्रन्थ रहा है । जो महाभारत में है वह सब कहीं है, जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है[1] । इसलिए कवियों की हिन्दी काव्यों के पौराणिक पात्रों के अनुशीलन के संदर्भ में रामायण और महाभारत के पात्रों का अनुशीलन भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है ।

रामायण

रामायण भारत का आदि काव्य माना जाता है । इसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की है । उन्होंने भारतीय जनता के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करने केलिए आदर्श संपुष्ट श्रीराम की कथा विस्तार से बताई है । रामायण के सात काण्डों में क्रमशः रामजन्म, उनकी बाललीला, अयोध्या निवास, विश्वामित्र के साथ उनकी यज्ञ रक्षा केलिए प्रस्थान, मिथिला जाना और सीता-स्वयंवर में भाग लेकर उनसे विवाह, राज्याभिषेक की तैयारी, वनवास, चित्रकूट-निवास, पंचवटी-वास, रावण द्वारा सीता-हरण, जटायु की मृत्यु, सीतान्वेषण, राम की सुग्रीव और हनुमान से मैत्री, बालि-वध, सुग्रीव राज्य प्राप्ति, सीतान्वेषण, हनुमान का समुद्र लाँघना, सीता से भेंट, लंका दहन, लंका की ओर वानर सेना सहित प्रस्थान, सेतु बन्धन,

---

1. यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।

राक्षस-दमन, रावण-वध, विभीषण राज्याभिषेक, अग्नि में सीता-शुद्धि, पुष्पक विमान पर अयोध्या प्रत्यागमन, राज्याभिषेक, सीता-परित्याग, लवकुशोत्पत्ति, लवकुश से रामायण-श्रवण आदि कथानकों का विस्तार से वर्णन किया गया है । इस मुख्य कथा के साथ इसमें कुछ उपाख्यान भी मिल जाते हैं ।

रामायण चिरकाल से कवियों का उपजीव्य रहा है । यह एक ऐसा भव्य काव्य है और अपनी दीप्ति से सभी लोगों को देदीप्यमान करता है[1] । वाल्मीकि ने इसके द्वारा आदर्श जीवन को प्रस्तुत करते हुए संस्कृत साहित्य एवं भारतीय संस्कृति को ही आलोकित कर दिया है । प्राचीन काल से ही राम कथा का प्रभाव भारत में अत्यन्त व्यापक रहा है । अवतारवाद की बढ़ती के साथ साथ रामायण की लोकप्रियता बढ़ने लगी । इसी काल में विभिन्न साम्प्रदायिक रामायणों की सृष्टि हुई । लेकिन आदि कवि का रामायण समस्त रचनाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। अपने रचना काल से आज तक समस्त कवियों और नाटककारों के हृदयों में यह नवीन चेतना एवं स्फूर्ति का संचार करता आ रहा है । करीब दो हज़ार वर्षों से राम कथा भारत में जीवित रहती आई है । यह भारत के समस्त काव्यों, इतिहास, पुराण आदि का भी मूल स्रोत मानी गई है । संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास ने रामायण का आधार बनाकर रघुवंश का निर्माण किया । भवभूति का "उत्तररामचरित" एवं "महावीरचरित, कुमारदास का "जानकी हरण", क्षेमेन्द्र की "रामायण मंजरी" और अनेक काव्य एवं नाटक रामायण को आधार बनाकर लिखे गए हैं । हिन्दी साहित्य में राम कथा की परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं । इसका विकास समृद्ध संस्कृत साहित्य को भी आधार बनाकर हुआ है । महाकवि तुलसीदास के "रामचरितमानस" से लेकर आधुनिक तक रामायण पर आधारित कई ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं । आधुनिक काल में

---

1. रामायण माहात्म्य - अ:1, श्लोक-3।

आकर इस परम्परागत सामग्री को ग्रहण करते हुए कवियों ने इसमें नवीन वैयक्तिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल नूतन रूप प्रदान किया है। विविध सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं की पूर्ति को उद्देश्य बनाकर महाकाव्य एवं खण्डकाव्य भी निर्मित हुए हैं। युगानुसार विविध प्रयोजनों एवं प्रवृत्तियों के अन्तर्गत विभिन्न विधाओं में ढलती हुई रामायण की कथा ब्रह्मा जी की निम्नलिखित उक्ति को सत्य सिद्ध करती है कि रामायण की कथा संसार में तब तक प्रचार में रहेगी जब तक इस पृथ्वी पर पर्वत और सरितायें वर्तमान रहेंगी[1]।

महाभारत

भारत के प्राचीन इतिहास का अमूल्य ग्रन्थ है महाभारत। महर्षि वेदव्यास ने अठारह पर्वों में इसकी रचना की है। इन अठारह पर्वों में कौरव पाण्डवों की कथा विस्तार से कही गई है और इस प्रधान कथा के साथ साथ अन्य अनेक कथायें और उपाख्यान भी इसमें समाहृत हैं। यह केवल एक कृति न होकर समूचे साहित्य का प्रतिरूप है। भारतीय ज्ञान परम्परा का यह विशद कोश धार्मिक और लौकिक बातों का विस्तृत चित्र उपस्थित करता है। यह एक प्रतिष्ठित काव्य ग्रन्थ भी है जो सभी दृष्टियों से परम पूजनीय है। विषय की व्यापकता के कारण इसको पंचमवेद भी माना जाता है। अपने में महाकाव्य, नीतिग्रन्थ, धर्मशास्त्र आदि विभिन्न रूपों के साथ महाभारत करीब एक सौ पचास वर्षों से भारतीय जनता के मनोरंजन, शिक्षा, आत्मवृद्धि आदि का कारण बना है एवं कवियों के लिए निरन्तर प्रेरणा देता रहा है। यह आधुनिक कवियों का विश्राम स्थान है[2]। यह एक ऐसा चिरस्थायी भण्डार है जिसमें से कोई भी कवि अपनी इच्छा के अनुसार सामग्री प्राप्त कर सकता है। "व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" वाली

---

1. वा॰रा॰ बाल॰ काण्ड, सर्ग -2 श्लोक॰37,38

2. म॰ आदि प॰ अ॰ 1, श्लोक - 92

प्रसिद्ध ही है । निस्सन्देह व्यासजी कवि बुद्धि को निरन्तर प्रेरणा देते रहे हैं और महाभारत परवर्ती साहित्य के अनेक काव्यों, नाटकों तथा कथाकृतियों का जन्मदाता रहा है ।

<u>प्रबन्ध काव्यों की सामग्री के संदर्भ में पुराण साहित्य का महत्व</u>

भारत के ही नहीं विश्व के प्रबन्धकाव्यों की परम्परा पर विचार करने पर यह देखा जा सकता है कि प्रबन्धकाव्यों के मूल स्रोत के रूप में प्रत्येक देश के प्रबन्धकारों ने पौराणिक साहित्य अथवा इतिहास को ही ग्रहण किया है । इलियड और ओडेसी के प्रणेता होमर से लेकर रामचरितमानस के कवि गोस्वामी तुलसीदास तक - सब ने पौराणिक साहित्य से ही प्रेरणा ग्रहण कर अपने प्रबन्धकाव्यों की कथा तैयार की है । इसके मूल कारण के सम्बन्ध में विचार करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि जिन महान चरित्रों की अवतारणा द्वारा प्रबन्धकार आदर्श मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है, उन महान चरित्रों की कथा विस्तृत रूप में पुराणों में ही मिलती है। वैदिक और औपनिषदिक साहित्य में अधिकांश महान चरित्रों का उल्लेख मिलता है, लेकिन उनके जीवन-वृत्त का सविस्तार वर्णन नहीं मिलता । इसी प्रकार लोककथाओं के नायक इतने उदात्त और आदर्श नहीं रहे हैं कि उनके माध्यम से शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना की जा सके, इसलिए उनसे भी प्रेरणा ग्रहण करना उतना उचित नहीं लगता । ऐसी स्थिति में प्रबन्ध काव्य की प्रेरणा के रूप में पौराणिक साहित्य का स्वीकार किया जाना बिलकुल स्वाभाविक है क्योंकि पुराणों में कथागत विस्तार के साथ साथ चरित्र विश्लेषण भी रहता है और ये कथाएं सर्वविदित एवं सर्वसम्मत रहती हैं । भारतीय पौराणिक साहित्य का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि हिन्दू संस्कृति के आधारस्तंभी महत् चरित्रों का जीवन वृत्त विस्तृत रूप में पुराणों में ही मिलता है । भारतीय पुराणों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए अनेक विद्वानों ने एक मत से यह स्वीकार किया है कि पौराणिक साहित्य ने संपूर्ण

भारतीय काव्य को अपनी उदात्त और जीवन प्रेरणा से न केवल उपजीव्य अथवा काव्य वस्तु प्रदान की है, अपितु जीवन्मात महद् सन्देशों और अपनी मनोरम कल्पनापूर्ण विविध शैलियों से अनुप्राणित भी किया है । डॉ॰ सम्पूर्णानन्द ने पुराणों की इस देन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वेद में जो चरित्र कागज़ पर खिंची हुई[1] रेखाएं मात्र हैं वे पुराणों के पृष्ठों में जीते जागते मनुष्य बन जाते हैं। विश्वामित्र, पुरुवा, सुदामा जैसे चरित्रों के नाम वेदों में तो मिल जाते हैं, मगर उनके इतिवृत्त नहीं मिलते । पुराणों में ही राम-कृष्ण से लेकर पुरुरवा तक का चरित्र मिलता है । अत: प्रबन्ध काव्यों की सामग्री के संदर्भ में पुराण-साहित्य का महत्व स्वयंसिद्ध है[2] ।

पुराणों की ओर से प्रेरणा ग्रहण करने की परम्परा परवर्ती काल में बदली देखी गई है । इसके पीछे काल और परिस्थितियों का बड़ा हाथ रहा है । नाशोन्मुख भारतीय धमनियों में शक्ति और स्फूर्ति भरने के लिए कवियों के सम्मुख केवल यही एक सहारा था । इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि आलोचक अज्ञेय ने लिखा है कि "इतिवृत्त काव्य अधिकतर जातीय उत्कर्ष के ऐतिहासिक अथवा पौराणिक युगों से प्रेरणा लेता था; आत्म प्रतिष्ठान के लिए अतीत गौरव का स्मरण और उसके प्रमाण से भावी उत्कर्ष की संभावना करना स्वाभाविक था[3] । भारतीय साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यही हुआ था और खड़ीबोली हिन्दी का प्रबन्धकाव्य इसका अपवाद नहीं था ।

रामायण एवं महाभारत और पुराणों में विशेषकर श्रीमद्भागवत और मत्स्यपुराण को आधार बनाकर युगीन मांग की पूर्ति करते हुए खड़ीबोली के अनेक कवियों ने अत्यन्त भव्य काव्यों की सृजना की है ।

1· हिन्दू देव परिवार का विकास - डॉ॰ सम्पूर्णानन्द - पृ॰120
2· आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ॰कैलाश वाजपेयी - पृ॰97
3· हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य - श्री॰अज्ञेय - पृ॰53

सन् 1900-1960 तक के विवेच्यकाल में प्रकाशित पुराणों पर आधारित खड़ीबोली के इन काव्यों का एक परिचयात्मक विवरण आगे दिया जाएगा ।

आधुनिक काल में हिन्दी में अनेकानेक काव्य पौराणिक कथाओं पर आधारित लिखे गए हैं । इनमें महाकाव्य एवं खण्डकाव्य आते हैं । सन् 1900 से 1920 तक का काल मुख्य रूप से द्विवेदी युग के अन्तर्गत आता है जिसमें इतिवृत्तात्मक काव्यों की भरमार रही थी । इन काव्यों के इतिवृत्त महाभारत, रामायण या पुराणों से ही लिये जाते थे । इस समय के प्रायः सभी काव्य पुराणों पर आधारित इतिवृत्त को लेकर ही चले हैं । आगे छायावाद एवं हिन्दी के परवर्ती काव्यों पर भी पुराणों का कुछ न कुछ प्रभाव देखा जा सकता है । सन् 1960 तक हिन्दी में लिखे गए मुख्य पौराणिक काव्यों का विवेचनकर उनमें आए हुए चरित्रों का विश्लेषण आगे किया जाएगा । हिन्दी में पौराणिक इतिवृत्त को लेकर काव्य लिखनेवाले कवियों में सबसे प्रमुख हैं - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, रामधारीसिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, बलदेवप्रसाद मिश्र, केदारनाथमिश्र प्रभात, आनन्दकुमार, लक्ष्मीनारायणमिश्र, नरेन्द्र शर्मा तथा धर्मवीर भारती। इन कवियों के काव्यों का विवेचन आगे किया जा रहा है ।

विवेच्य युग के अन्तर्गत आनेवाले इन काव्यों को उनके स्रोतों के आधार पर तीन प्रकार से विभाजित किया गया है - {1} रामायण पर आधारित काव्य, {2} महाभारत पर आधारित काव्य {3} अन्य पुराणों पर आधारित काव्य ।

रामायण पर आधारित काव्य

रामचरित चिन्तामणि

सन 1920 में प्रकाशित 'रामचरित चिन्तामणि' रामचरित उपाध्याय की एक अमर कृति है। इसमें कवि ने रामायण को आधार बनाकर रामकथा का उद्घाटन किया है। राम जन्म से लेकर रामाश्वमेध तक की समस्त घटनाएं इसमें वर्णित है।

इस काव्य की विशेषता यह है कि कवि ने युगीन प्रभाव में आकर रामकथा की महत्वपूर्ण घटनाओं को इस काव्य में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है और कतिपय गौण घटनाओं को विस्तार से वर्णित किया है। उदाहरणकेलिए राम के राज्याभिषेक का वर्णन तथा राम-वन-गमन एक दो छन्दों में प्रस्तुत किया गया है। दशरथ-मृत्यु, भरत-आगमन तथा चित्रकूट में राम-भरत-मिलन का विशद वर्णन किया गया है। इसी प्रकार सुग्रीव मिलन तथा बालि-वध का उल्लेख एक ही छन्द में कर दिया गया है तो लंका-विजय, सीता-निर्वासन आदि प्रसंगों केलिए अधिक समय और स्थान खोज निकाला गया है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी कवि ने युगीन प्रभाव में आकर राम के चरित्र को मानवीय रूप प्रदान किया है। इसकेलिए राम के चरित्र में मानवीय दुर्बलताएं अधिक मात्रा में अंकित की है। पिता को उपदेश देना और राज्य के खो जाने पर दुःख से विकल होना आदि ऐसी बातें है जो मर्यादावादी राम के चरित्र को पूर्ण रूप से मानवीय धरातल पर ले आती है।

प्रस्तुत काव्य में राम में दिखाई पड़नेवाले परम्परागत आदर्शों को भी दिया गया है।

पंचवटी

सन् 1925 में प्रकाशित "पंचवटी" श्री मैथिलीशरण गुप्त का प्रथम सफल खण्डकाव्य है, जिसमें उन्होंने रामायण में चित्रित शूर्पणखा पर आधारित प्रसंग को कथा के रूप में स्वीकार किया है।

यह काव्य अनेक संवादों में संपन्न किया गया है जिसमें रामायण-शूर्पणखा-संवाद, लक्ष्मण-शूर्पणखा-संवाद, सीता-शूर्पणखा-संवाद आदि प्रमुख रहे हैं। राम-शूर्पणखा-मिलन "पंचवटी" में विशिष्टता लिए हुए हैं। यहाँ गुप्तजी ने इसे सीता के माध्यम से सम्पन्न कराया है जो प्राचीन कथा के लिए एक नवीनता है। सीता के चरित्र को प्रधानता देकर गुप्तजी ने शूर्पणखा प्रसंग को अधिक आकर्षक बनाया है। "पंचवटी" की शूर्पणखा अपने में स्वेच्छाचारिणी, वासना की पुतली आधुनिक नारी का रूप प्रस्तुत करती है। यही "पंचवटी" की मुख्य विशेषता है। गुप्तजी ने "पंचवटी" में राम-कथा के शूर्पणखा-प्रसंग को लेकर अपनी कल्पना के द्वारा ऐसी नवोन्मेषपूर्ण प्रस्तुत की है जो युग के अनुकूल बन गई है। पौराणिक चरित्रों को यहाँ नया आवरण दिया गया है। राम, लक्ष्मण, सीता एवं शूर्पणखा के चरित्र इसके प्रमाण हैं। प्रत्येक चरित्र को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न कवि ने किया है। मनोवैज्ञानिकता पर आधारित प्रस्तुत ग्रन्थ में पात्र चित्रण को अधिक प्रभावशाली बना दिया गया है।

साकेत

खड़ीबोली के प्रवर्तक और उन्नायक श्री मैथिलीशरण गुप्त की अमूल्य कृति है "साकेत"। बारह सर्गों में कवि ने उपेक्षिता उर्मिला की महानता अंकित करने के उद्देश्य से सन् 1931 में इसकी रचना की है। उर्मिला की महानता अंकित करने के साथ इसमें मूल रामायण की कथा भी सजाई गई है। गुप्तजी ने लक्ष्मण-उर्मिला और राम-सीता दोनों की

कथायें इसमें संयुक्त कर दी हैं । "साकेत" की महत्ता इस कारण भी है कि इसकी कथावस्तु रामायण पर आधारित होते हुए भी कवि ने युगीन आवश्यकताओं के अनुसार इसमें परिवर्तन किया है । कवि ने एक ओर उपेक्षिता उर्मिला का परिष्कार किया तो दूसरी ओर विष्णु के अवतार के रूप में पौराणिक साहित्य में प्रतिष्ठित श्रीराम को मानवीय आकार प्रदान किया है । उर्मिला को वैराग्य और वेदना की साकार मूर्ति के रूप में ही नहीं बल्कि उसमें बुद्धि और वीरता का भी अद्भुत समन्वय दिखाया है । "साकेत" के पात्र मानवोचित दुर्बलताओं से युक्त देखे जाते हैं । मनोविश्लेषणात्मक ढंग से कैकेयी के पश्चाताप - दग्ध हृदय का वर्णन करने में और इस प्रकार कैकेयी के चरित्र को समुज्ज्वल बनाने में भी कवि सफल हुए हैं ।

वैदेही वनवास

"वैदेही वनवास" खड़ीबोली हिन्दी काव्य साहित्य के प्रमुख कवि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" द्वारा रचित महाकाव्य है । सन् 1940 में प्रकाशित इस महाकाव्य में कवि ने वाल्मीकि रामायण, रघुवंश तथा उत्तररामचरित के सीता परित्याग के इतिवृत्त को नवीन आलोक प्रदान किया है । संपूर्ण काव्य अष्टादश सर्गों में विभक्त है । इस काव्य की विशेषता तो यह है कि इसमें कवि ने लोक माता सीता की महान सदाशयता तथा पतिपरायणता को दिखाने के साथ साथ गर्भवती पत्नी के निर्वासन करने के कारण परम्परागत राम के चरित्र पर लगाए गए लांछन को धोने का स्तुत्य प्रयास किया है । हरिऔध जी ने वैदेही के वनवास का कारण लोकाराधन माना है और वैदेही का वनवास में भेजा जाना आर्य जाति की चिर कालिक प्रथा कहा है । यहाँ के राम अपने भाइयों तथा कुलगुरु वसिष्ठ से भी विचार विमर्श करने के बाद ही लोकाराधन के लिए सीता का परित्याग करते है । युगीन प्रभाव में आकर सीता के धरती-प्रवेश-प्रसंग को अवैज्ञानिक मानकर इसको नवीन रूप प्रदान किया गया है ।

अन्तिम सर्ग में सीता पृथ्वी में नहीं समा जाती, उसके स्थान पर हर्षातिरेक के कारण दिव्य ज्योति में परिणत हो जाती है और अपना पार्थिव शरीर त्याग देती है । प्रस्तुत काव्य में परम्परागत राम के तथा सीता के चरित्र को युगीन माँग के अनुसार परिवर्तित करने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुए हैं ।

साकेत-सन्त

सन् 1946 में प्रकाशित 'साकेत-सन्त' में पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने रामकथा के परम्परागत स्वरूप को आधुनिक युग की चेतना से सम्पन्न करके उपस्थित किया है । इसमें कवि ने भरत के चरित्र की महानता दिखाने के लिए उनके चरित्र को विविधता एवं व्यापकता के साथ अंकित किया है ।

भरत का चरित्र भारतीय संस्कृति के पुनीत आदर्शों का सात्विक प्रतीक है और कवि ने तत्कालीन अशान्त और अन्धकारमय वातावरण में उनका उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया है । यहाँ भरत के साथ साथ उपेक्षिता माण्डवी के चरित्र को भी अत्यन्त आदर्शात्मक रूप दिया गया है । कथा का प्रारंभ भरत-माण्डवी के प्रेमपूर्ण वार्तालाप से होता है और उसका समापन भी चित्रकूट से लौटने के बाद के भरत की दिनचर्या का वर्णन तथा माण्डवी की स्नेह-शुश्रूषा से होता है । बीच में मामा सहित भरत की ननिहाल यात्रा, पितृ-गृह से सन्देश मिलने पर भरतागमन, उनकी चिन्ता, सभा आयोजन, दशरथ का दाह संस्कार, चित्रकूट यात्रा आदि पौराणिक घटनाएँ उद्घाटित की गई हैं । भरत-मामा वार्तालाप के माध्यम से कवि ने आर्य संस्कृति की विशेषताएँ जैसे करुणा, तप, दया, अहिंसा, शोषण का विरोध आदि की महत्ता उद्घाटित की है । कवि ने मनोविश्लेषण के सहारे भरत के अन्तर्द्वन्द्व का जो चित्र खींचा है वह अत्यन्त अनुपम है । इसीप्रकार कैकेयी के चरित्र का भी उद्धार करने का स्तुत्य प्रयास इसमें

किया गया है । भरत, माण्डवी, कैकेयी जैसे अनेक पात्रों को युगीन प्रभाव में लाकर परिवर्तित करने का जो सफल प्रयास मिश्र जी ने किया है, वह पूर्ण रूप से सराहनीय ही है ।

उर्मिला

श्री बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने गुप्तजी से प्रेरणा ग्रहण करके उपेक्षिता उर्मिला को वाणी देने के लिए ही सन् 1957 में "उर्मिला" काव्य की रचना की है । 16 सर्गों में कवि ने इसमें उर्मिला के चरित्र का सर्वांगीण विकास किया है ।

वाल्मीकि रामायण पर आधारित होते हुए भी कवि ने इसमें उर्मिला को ही प्रमुख आधार बनाया है जो इस काव्य की खूबी है । उर्मिला के बाल जीवन की झलक देने के पश्चात् कवि ने उर्मिला के विवाह और अयोध्या में उर्मिला-लक्ष्मण की संयोग क्रीडाओं का वर्णन किया है । चतुर्थ और पंचम सर्ग में कवि ने उर्मिला के विरह का विस्तार से वर्णन किया जो अत्यन्त अनुपम बन पडा है । अन्तिम सर्ग में लंका के राजतिलक समारोह और अयोध्या में उर्मिला-लक्ष्मण पुनर्मिलन का वर्णन है ।

उर्मिला लक्ष्मण के चरित्र के माध्यम से सत्य, तप, त्याग, विश्वबन्धुत्व आदि आर्यसंस्कृति के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा करने में तथा गान्धीवाद, मानवतावाद आदि जीवनादर्शों को उद्घाटित करने में कवि सफल हुए हैं ।

कैकेयी

"कैकेयी" श्री केदारनाथ मिश्र "प्रभात" की अनुपम कृति है जिसमें उन्होंने पौराणिक राम कथा के चिर कलंकित कैकेयी के चरित्र को पूर्ण रूप से समुज्ज्वल बना दिया है ।

इस काव्य की विशेषता तो यह है कि कैकेयी को महत्ता प्रदान करने के लिए कवि ने अनेक पौराणिक घटनाओं और प्रसंगों को तोड़ा मरोड़ा है । कैकेयी-वरदान प्रसंग को नवीन रूप में ही उपस्थित किया गया है । राक्षसों के आक्रमण से विवश भारत माता की रक्षा के लिए वृद्ध पति दशरथ की असमर्थता पहचानकर ही यहाँ कैकेयी राम को वन भेजने के लिए मजबूर होती है । अत्यन्त व्यथित और दुःखित होने पर भी दशरथ आदि राम परिवार के लोग इसके लिए सहमत होते हैं और सब कैकेयी की दूरदृष्टि की प्रशंसा करते हैं । दशरथ की मृत्यु पर भी वे तनिक भी विचलित नहीं होती और राज्य रक्षा के लिए वैधव्य भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है ।

कैकेयी के चरित्र को यहाँ समुज्ज्वल बनाने में प्रभात जी पूर्ण रूप से सफल हुए हैं । चिरकाल से कलंक कालिमा से आच्छादित कैकेयी के चरित्र को इतने सुन्दर और भव्य रूप में उपस्थित करना, प्रभात जी की लेखनी की कुशलता ही घोषित करता है ।

राम-राज्य

श्री० बलदेवप्रसाद मिश्र ने वाल्मीकि रामायण के आधार प खड़ीबोली हिन्दी में तीन अनुपम महाकाव्यों की रचना की है जिनमें एक प्रमुख महाकाव्य है "राम-राज्य" । सन् 1960 में प्रकाशित "राम-राज्य" में कवि ने बारह सर्गों में राम के वनवास से लेकर राम की राज्य व्यवस्था कर तक की रामायण की कथा को अंकित किया है ।

इस काव्य की विशेषता तो यह है कि इसमें कवि ने विदेशी शासन से आक्रान्त भारतीय जनता को राष्ट्रीय एकीकरण और स्वराज्य-स्थापना की आवश्यकता समझाने केलिए राम के तद्रूप्य प्रयत्नों पर विस्तार से प्रकाश डाला है । राम की वनवास यात्रा से कथा का प्रारंभ होता है और इसके पूर्व की समस्त घटनाएं इसमें संकेतों में बताई गई हैं । दूसरे से दसवें सर्ग तक में परम्परागत राम कथा संक्षिप्त रूप में चित्रित की गई है । ग्यारहवाँ और बारहवाँ सर्ग ही इस काव्य का प्राण है जिसमें कवि ने क्रमशः भारतीयों के मानव-धर्म की घोषणा और सम-राज्य की व्यवस्था का उल्लेख किया है । इसमें राम के व्यक्तित्व का निरूपण यथार्थदर्शी लोकनायक के रूप में किया गया है । यहाँ के राम राजा के आदर्श रूप के साथ साथ मानवतावादी जीवन दृष्टि का भी परिचय देते हैं ।

युगीन परिवेश में - विज्ञान युग के ह्रास और विकास, प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य में - रामराज्य की प्रतिष्ठा का आग्रह तथा राष्ट्रीय एकता, शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा, ग्राम्य जीवन की महत्ता, पंचशील, सहकारिता आदि युगीन प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का जो स्तुत्य प्रयास कवि ने इसमें किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है ।

महाभारत पर आधारित काव्य

जयद्रथ वध

महाभारत को आधार बनाकर लिखे खण्डकाव्यों में सन् 1910 में प्रकाशित "जयद्रथवध" का प्रमुख स्थान है । इतिवृत्तात्मक काव्यों का प्रारंभ असल में इसी ग्रन्थ से माना जाता है[1] । श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा विरचित इस काव्य का कथानक महाभारत का सबसे प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण प्रसंग जयद्रथवध चुन लिया गया है । "जयद्रथवध" के प्रमुख प्रसंग हैं - अभिमन्यु वध एवं जयद्रथ वध ।

---

1. आधुनिक साहित्य का विकास - 1900-1925 - डॉ॰श्रीकृष्णलाल पृ॰95

प्रस्तुत काव्य युद्ध के चित्रमय चित्रण एवं काव्य रस के अबाध प्रवाह के लिए प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त कर्मयोग, भक्तिभावना, नीति-निर्देशन, प्रेमव्यंजना, एवं धर्मप्रियता ने भी प्रस्तुत काव्य पर अपना प्रभाव जमाया है । साथ ही इसमें अतीत प्रेम के साथ युग भावना भी निरन्तर काम करती देखी जा सकती है ।

कुरुक्षेत्र

"कुरुक्षेत्र" हिन्दी काव्य साहित्य के राष्ट्रीय और प्रगतिवादी काव्यधारा के अमरवर शिल्पी श्रीरामधारीसिंह दिनकर की कला का सुन्दरतम निदर्शन है । इस विचार प्रधान प्रबन्ध काव्य की रचना सन् 1943 में की गई है । इसमें कवि ने महाभारत के शान्ति और अनुशासन पर्व के आधार पर सात सर्गों में कुछ बुनियादी प्रश्नों पर विचार किया है

इस काव्य की महानता तो यह है कि इसमें कवि ने आधुनिक युग की नवीन विशेषताओं जैसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और मानवतावाद के आलोक में युगीन समस्याओं और मूल्यों को, विशेषकर युद्ध और शान्ति की समस्या को महाभारत के प्रमुख पात्र भीष्म और युधिष्ठिर के माध्यम से उद्घाटित किया है । अंग्रेज़ी शासन से आक्रान्त भारत को स्वतंत्र बनाने के लिए गान्धीजी ने जो सत्य, क्षमा, करुणा, अहिंसा आदि के सिद्धान्तों पर बल दिया था, वह दिनकर जी के लिए स्वीकार्य नहीं था । गान्धीजी के विचारों के विरुद्ध उनका जो अपना विचार है, वही इस काव्य के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ है । कवि तो युद्ध को निन्द्य और शान्ति को काम्य मानते है । लेकिन उनके अनुसार असाधारण परिस्थितियों में, जब मनुष्य हार जाता है तब प्रतिशोध आवश्यक होता है और विनय, शान्ति, क्षमा आदि सांस्कृतिक मूल्य न रहकर पाप बन जाते हैं । भीष्म के माध्यम से कवि ने आज के समाज में शोषण, विकृति और भयानक विद्रूपता की ओर भी इशारा

किया है । युद्ध और अमर्यादा के पक्षपाती न होने पर भी भीष्म के माध्यम से कवि ने यही घोषणा की है कि जब तक समाज में विषमताएं हैं, जब तक दो वर्गों की सुख-सुविधाओं में आकाश पाताल का अन्तर रहेगा, ऐसी अवस्था में युद्ध या क्रान्ति आवश्यक ही है । यहाँ पर कवि मानवतावाद से एक कदम आगे बढ़कर साम्यवाद की स्थापना करने का प्रबल आग्रह दिखाते हैं । आज के मानव के मस्तिष्क के विकास के सामने हृदय के पिछड़ेपन को देखकर कवि यही विचार करते हैं कि नासमझ मानव तलवार से लेकर अपना गला काट लेगा । इसलिए उन्होंने इस काव्य में विज्ञान की उपलब्धियाँ जैसे रोगाणु बम, न्यूट्रोन बम जैसे विपत्तिदायक आविष्कारों की भयानकता की ओर भी संकेत किया है ।

पात्र विवेचन की दृष्टि से देखा जाय तो 'कुरुक्षेत्र' में केवल दो पात्र हैं - भीष्म और युधिष्ठिर । भीष्म और युधिष्ठिर के माध्यम से इसमें जिन चिरन्तन समस्याओं का उद्घाटन किया गया है वह अत्यन्त अनुपम है ।

नकुल

सन् 1943 में प्रकाशित 'नकुल' काव्य प्रमुख गान्धीवादी कवि श्री सियारामशरण गुप्त की एक अनूठी रचना है । महाभारत के प्रमुख पात्र युधिष्ठिर तथा नकुल के माध्यम से कवि ने कतिपय युगीन समस्याओं की ओर इशारा करने का प्रयास किया है । इस काव्य का मुख्य आधार महाभारत के वनपर्व के अरण्यपर्व में वर्णित अरणि-मंथनिका प्रसंग ही है ।

इसमें कवि ने त्याग और धर्म को प्रमुखता प्रदान करनेवाले, अर्थात् मानव कल्याण केलिए काम करनेवाले युधिष्ठिर की महत्ता ही उद्घोषित की है । भीष्म अर्जुन जैसे शक्तिशाली अनुजों के स्थान पर छोटे

और सौतेली माद्री पुत्र नकुल को जीवित रखने की कामना करनेवाले युधिष्ठिर के समानता का भाव सराहनीय ही है । यद्यपि यह प्रसंग महाभारत में भी मिलता है, लेकिन इतने विशद रूप में नहीं । छोटे-बड़े के बीच के संघर्ष से युक्त वर्तमान समाज को सुधारने केलिए कवि का यह प्रयोग तो प्रतिशत सफल ही निकला है ।

कवि इस काव्य के माध्यम से यही संदेश देते हैं कि बड़ों को अपने में छोटों को हेय नहीं मानना चाहिए, उनके प्रति स्नेह और आदर दिखाना चाहिए, भाई-भाई के बीच समानता का भाव होना चाहिए । इस प्रकार का सन्देश देने में सफल यह काव्य युग की पुकार को वहन करने में पूर्ण रूप से सफल ही है ।

कर्ण

सन् 1950 में प्रकाशित "कर्ण" श्री केदारनाथ मिश्र "प्रभात" का एक सफुराय प्रबन्धकाव्य है । इसमें कवि ने छ: सर्गों में महाभारत की कथा के आधार पर कर्ण के चरित्र को उद्घाटित किया है । कर्ण चरित्र से सम्बन्धित अधिकांश महाभारतीय प्रसंग इसमें अभिव्यक्त हुए हैं ।

कवि ने कर्ण के चरित्र के माध्यम से जातिवाद, छुआछूत आदि अनेक सामयिक समस्याओं का उद्घाटन करने का प्रयास किया है । मानवता के आलोक में हजारों वर्षों से उपेक्षित कर्ण के चरित्र की महानता उद्घोषित करने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुए है ।

इस काव्य की विशेषता तो यह है कि इसमें गुणावगुण युक्त कर्ण का चरित्र ही उद्घाटित किया गया है । कवि ने कर्ण को दानी तथा महादानी उद्घोषित करने के साथ ही उन्हें महा अहंकारी चित्रित किया है । प्रस्तुत काव्य में कवि ने कर्ण के प्रति एक तटस्थ दृष्टिकोण ही अपनाया है ।

रश्मिरथी

सन् 1952 में प्रकाशित "रश्मिरथी" हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि डॉ॰रामधारीसिंह दिनकर की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इसकी कथा महाभारत के कर्ण प्रसंग पर आधारित है इसमें महाभारत के कर्ण के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को सात सर्गों में कर्ण के नायकत्व पर अंकित किया गया है । इस दृष्टि से इसमें महाभारत के आदि पर्व, सभा पर्व, वन पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व , द्रोण पर्व, कर्ण पर्व और शान्ति पर्व की कथा अभिव्यक्त हुई है ।

इस काव्य की उपलब्धि कथानकों के परिवर्तन में न होकर कथा-विकास के मध्य विवेचित सिद्धान्तों के मूल्यांकन में है । कवि ने कर्ण के चरित्र को आधुनिक मानवतावाद के प्रकाश में उद्घाटित करने का परिश्रम किया है । कर्ण के चरित्र के माध्यम से कवि ने आज के जीवन की अनेक समस्याओं और संवेदनाओं की, दृष्टियों और चिन्तन पद्धतियों और मूल्यों तथा आकांक्षाओं की अभिव्यंजना की है । कर्ण ने ओजपूर्ण वाणी में जातिवाद का विरोध किया है । उन्होंने दान को जीवन की अजस्र धारा और त्याग को जीवन की महनीय निधि माना है । कवि कर्ण के माध्यम से नवीन जीवन सत्य की उद्घोषणा करते हैं कि व्यक्ति को अपने गुण कर्म से सामाजिक उच्चता प्राप्त करके जाति बन्धन के अवरोध को समाप्त करके, पुरुषार्थ के बल पर उन्नति करनी चाहिए । संपूर्ण काव्य में कवि

व्यक्ति के गुणों पर आधारित समाज व्यवस्था के निर्माण में रत रहते हैं । मानव मात्र की यह मंगल कामना इस काव्य का महान उद्देश्य है । कवि ने कुछ अन्य पात्रों जैसे परशुराम और कुन्ती को भी नवीन मन: संदर्भों के बीच उपस्थित करके युगानुकूल नयी छवि प्रदान की है ।

कर्ण चरित्र की प्रधानता अन्य अनेक काव्यों में मिलती है । लेकिन "रश्मिरथी" की विशेषता तो यह है कि पात्रों को युगानुकूल बनाने के प्रयास में इस काव्य में कोई भी महाभारतीय पात्र कलंकित नहीं हुआ है । कर्ण के चरित्र/की महानता प्रकाशित करने के प्रयास में कर्ण के प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन का चरित्र भी हेय नहीं हुआ है । इसके अलावा इसमें चित्रित कर्ण का चरित्र जितना ओजऔर पौरुष प्रदर्शित करता है उतना और किसी के कर्ण के चरित्र में भी नहीं देखा जा सकता है । यही रश्मिरथी की खूबी है ।

"अंगराज"

सन् 1950 में प्रकाशित "अंगराज" आनन्दकुमार के द्वारा लिखा हुआ है । यह पचीस सर्गों का एक महाकाव्य है जिसमें कवि ने संपूर्ण महाभारत से कथावस्तु का संकलन किया है । अन्य अनेक कवियों की भांति आनन्दकुमार का लक्ष्य भी कर्ण की महानता उद्घोषित करना है ।

इसमें कवि ने कर्ण के महत् गुणों का वर्णन किया है । वे कर्ण मानवता का प्रतीक बनाना चाहते हैं और कर्ण के सभी गुणों से बढ़कर वे उनकी वीरता पर अधिक मुग्ध रहे हैं । इसी प्रकार कर्ण के जीवन के माध्यम से वे निरन्तर कर्म में लगे रहने की आवश्यकता पर बल देते हैं । प्रजातन्त्र के माध्यम से शासन चलानेवाले कर्ण के उद्घाटन द्वारा कवि ने प्रजातन्त्र की महत्ता भी उद्घोषित की है ।

इस काव्य की विशेषता तो यह है कि इसमें कवि का कौरव पक्ष अत्यन्त प्रबल है। कर्ण और दुर्योधन की महात्ता उद्घोषित करने के प्रयास में उन्होंने पाण्डवों की अवहेलना की है। उन्होंने पाण्डवों को छली, कपटी, अधर्मी, असंयमी तथा असभ्य घोषित करने का प्रयास किया है। द्रौपदी को वेश्या कहने में भी उनकी धर्मभावना हिचकती नहीं। इस परिवर्तन से कर्ण के चरित्र एवं कौरव पक्ष को अधिक ज़ोर मिल गया है।

जयभारत

सन् 1952 में प्रकाशित "जयभारत" गुप्त जी की एक महत्वपूर्ण कृति है। संपूर्ण ग्रन्थ 47 खण्डों में रचित है जिसमें क्रमशः महाभारत के आदि पर्व, सभा पर्व, वन पर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्री पर्व आदि से कौरव-पाण्डवों के आख्यान से सम्बन्धित घटनाएँ वर्णित है। "नहुष" से प्रारंभ होकर "स्वर्गारोहण" तक के शीर्षकों में विभक्त इस महाभारतीय कथा को गुप्त जी ने विस्तार न देकर संकेतों में सजाने का प्रयत्न किया है। अन्तिम अंश को दिखानेवाले "अंत" और "स्वर्गारोहण" शीर्षक महाभारत के अन्तिम सात पर्वों की कथा की ओर संकेत करते चलते है।

"जयभारत" में महाभारत के पुनराख्यान से कवि अपने जीवन दर्शन की स्थापना करने में पूर्ण रूप से सफल हुए है। इसमें कवि ने त्याग की प्रतिमूर्ति मानव कल्याण में निरन्तर रत युधिष्ठिर के चरित्र को जनता के सम्मुख रखा है। इसकेलिए कवि ने चुन चुनकर उन्हीं प्रसंगों को लिया है जिनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धर्म की व्याख्या की गई है। इसी प्रकार कवि ने युगीन प्रभाव में आकर महाभारत की घटनाओं की अलौकिकता का प्रक्षालन

कर युगीन भावना और प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें प्रस्तुत किया है । इसलिए द्रौपदी चीरहरण, कीचक-वध-कथा, युद्धक्षेत्र की घटनाएं आदि प्राचीन आख्यान उदाहरण के रूप में दिखाये जा सकते हैं ।

कथा में विस्तार न होने के कारण चरित्रों का विश्लेषण मूल पर आधारित रहते हुए भी पूर्ण रूप से संभव नहीं हो सका है, फिर भी महाभारत के प्रमुख कथा पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण कुछ हद तक इसमें मिल सकता है । साथ ही प्रस्तुत काव्य में गुप्तजी ने परिस्थितियों के प्रभाव में आकर महाभारत के कतिपय अप्रधान चरित्रों को भी अपने काव्य में उजागर करने का प्रयत्न किया है ।

एकलव्य

सन् 1957 में प्रकाशित "एकलव्य" छायावादी और प्रगतिवादी काव्यधारा के सशक्त हस्ताक्षर डॉ० रामकुमार वर्मा का चौदह सर्गों का सुन्दर महाकाव्य है । महाभारत में केवल 30 श्लोकों में वर्णित एकलव्य के कथा-प्रसंग को कवि ने अपनी कुशल लेखनी से अत्यन्त सुन्दर भव्य और विस्तृत बना दिया है ।

इस काव्य की उपलब्धि तो यह है कि इसमें कवि ने अनार्य होने पर भी आर्यों से बढ़कर उच्च आदर्श का आचरण करनेवाले एकलव्य की महानता का सविस्तार वर्णन करके वर्तमान भारत की अनेक जीवन्त समस्याएं जैसे दूषित राजनीति, छुआछूत, शिक्षा की अव्यवस्था आदि की ओर प्रकाश डालने का सुनियोजित प्रयास किया है । जन्मजात उच्चता के स्थान पर व्यक्ति को अपने गुण कर्म से सामाजिक उच्चता प्राप्त करने का आदर्श वे एकलव्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं । एकलव्य की महानता उद्घोषित करने के

साथ कवि ने द्रोण के चरित्र की हीनता को भी धोने का सफल प्रयास किया है ।

महाभारत में मात्र संकेतों में अभिव्यक्त एकलव्य के भव्य चरित्र का जो विस्तृत वर्णन "एकलव्य" में मिल जाता है, वह सबके लिए प्रेरणादायक

सेनापति कर्ण

सन् 1958 में प्रकाशित "सेनापति कर्ण" प्रख्यात नाटककार श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र की सुन्दर काव्य प्रतिभा का प्रथम निदर्शन है । पाँच सर्गों में विभक्त यह काव्य सुन्दर तथा सार्थक होने पर भी अधूरा है । इसमें मिश्रजी ने महाभारत के आदि पर्व, सभापर्व , उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व और कर्ण पर्व में बिखरे कथासूत्रों को अपनी मौलिक उद्भावनाओं के जरिये नवीन रूप और भाव प्रदान किया है ।

इस काव्य में मिश्रजी ने उपेक्षित मानवता के मूक प्रतीक कर्ण के चरित्र को उजागर करने का सफल प्रयास किया है । कर्ण के जीवन के माध्यम से कवि ने काल और नियति के आवरण की सार्थकता को स्वीकार करते हुए भी, पौरुष को जीवन की महानता का आधार माना है और कर्म निष्ठा की आवश्यकता पर बल दिया है । भीष्म और कुन्ती के वार्तालाप के माध्यम से कवि ने नारी की ममता और महानता उद्घाटित की है । इस प्रसंग में कवि ने लोक मानवता के विराट आदर्श की स्थापना की है । अपने पुत्र की चिन्ता करनेवाली कुरुकुल लक्ष्मी को भीष्म युद्ध में मारे गए वीर पुत्रों की चिन्ता करने की प्रेरणा देते हैं । यहाँ पर कवि राजधर्म को वैयक्तिक सीमा से उठाकर विशाल भूमि पर उपस्थित करने की आवश्यकता ही प्रकट करते हैं ।

इस काव्य की महानता तो यह है कि इसमें कथा का विकास पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व से होता है । इसी प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिश्र जी ने अनेक महाभारतीय घटनाओं और पात्रों के चरित्र चित्रण में घोर परिवर्तन किया है । कर्ण के चरित्र को महत्व देने की प्रक्रिया में महाभारत के युधिष्ठिर जैसे कई आदर्श पात्र यहाँ पर उपेक्षित हो गए हैं ।

द्रौपदी

सन् 1960 में प्रकाशित द्रौपदी" नई कविता के सिद्ध हस्त लेखक श्री नरेन्द्र शर्मा की कुशल लेखनी का निदर्शन है । महाभारत के द्रौपदी-स्वयंवर से युद्ध में पाण्डवों की विजय तक की घटनाओं का कवि ने पाँच सर्गों में अत्यन्त संक्षिप्त रूप में वर्णन किया है । इस काव्य की नायिका द्रौपदी है ।

प्रस्तुत काव्य की महानता इस कारण से है कि महाभारत पर आधारित होते हुए भी इसमें कवि की मौलिक उद्भावनाएं, महाभारतीय पात्रों की प्रतीकात्मक या दार्शनिक व्याख्या ही अधिक देखी जाती है । द्रौपदी को उन्होंने जीवनीशक्ति और पाण्डवों को पाँच महातत्वों के रूप में देखा है । क्षत्रिय होकर भी अपने तेज और शक्ति को भूले हुए ब्राह्मण वेष में भटकनेवाले पाण्डवों को सचेत करके विजयपथ की ओर अग्रसर करानेवाली द्रौपदी का जो तेजोद्दीप्त रूप यहाँ खींचा गया है वह अत्यन्त अनुपम ही है । उसके पंचपतित्व को कवि ने प्राचीन काल के बहुपति प्रथा के आलोक में नहीं, बल्कि उसकी इस प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से ही न्यायसंगत माना है

द्रौपदी के माध्यम से कवि ने वर्तमान समाज में नारी की महानता को उद्घोषित करने का परिश्रम ही किया है । नारी की महत्ता तथा नारी की शक्ति-उनकी दहन शक्ति, सहन शक्ति और दहन सहन शक्ति प्रस्फुटित करने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुए हैं ।

अंधायुग

सन् 1960 में प्रकाशित "अंधायुग" नई कविता के सशक्त कलाकार डॉ॰धर्मवीर भारती का एक महत्वपूर्ण काव्य नाट्य है । इसमें कवि ने शल्य पर्व, सौप्तिक पर्व , स्त्री पर्व, आश्रमवासिक पर्व, महाप्रस्थानिक पर्व आदि महाभारत के अन्तिम पर्वों में बिखरे इतिवृत्त को लेकर कल्पना के साथ छ: अंकों में मनोरम काव्य नाट्य प्रस्तुत किया है ।

इस काव्य में कवि ने महाभारत के प्रत्येक पात्र और घटना को प्रतीकात्मक रूप में उपस्थित किया है । "अंधायुग" के सभी पात्र मूल्यांकन के किसी न किसी रूप, स्तर या पक्ष के प्रतीक हैं । अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, गान्धारी, कृपाचार्य, युयुत्सु, संजय, युधिष्ठिर तथा स्वयं श्रीकृष्ण भी दुर्बलताओं से युक्त हाड-मांस के बने साधारण जीव हैं । लेकिन उनकी विशेषता यह है कि वे असंतुष्ट, विकल तथा टूटे हुए होकर भी जीवन सत्य के अन्वेषक हैं । उनके अवसाद व नैराश्य में निष्क्रियता न होकर भोगलिप्सा का भाव है । धृतराष्ट्र में अन्धी युग दृष्टि, गान्धारी में उग्र अनास्था तथा तीखी निराशा, अश्वत्थामा के मन में पराजय की सहज कुण्ठा दृष्टव्य है यहाँ के युधिष्ठिर अर्धसत्य के, अश्वत्थामा जाग्रत पशुत्व के, धृतराष्ट्र अन्धी राजनीति के, संजय निष्क्रियता के तथा गान्धारी अनास्था की बोधक है । अपने पात्रों के माध्यम से समाज की मूल्यहीनता का जीता जागता चित्र उतारने के साथ कवि ने श्रीकृष्ण के आप्त वचनों में वरेण्य जीवन सन्देश भी प्रस्तुत किया है । श्रीकृष्ण की मृत्यु में नैराश्य नहीं, अपितु आस्था निहित

कृष्ण अपनी मृत्यु को मरण नहीं मात्र रूपान्तरण मानते हैं और इस प्रकार उन्होंने आगामी मानव भविष्य के प्रति आस्था व्यक्त की है जिससे पूरे युग को आस्थावान होकर अपने जर्जर, विकृत, खोखी संस्कृति को त्यागने की प्रेरणा मिलती है । यही इस काव्य की खूबी है और धर्मवीर भारती जैसे कुशल चितेरे ही यह कार्य करने में समर्थ हो सकते हैं ।

अन्य पुराणों पर आधारित काव्य

द्वापर

सन् 1937 में प्रकाशित "द्वापर" हिन्दी साहित्य के अमर राष्ट्र कवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । इस काव्य में कवि ने श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर सोलह सर्गों में अपने मन में उठे हुए दुःखपूर्ण भावों एवं निराशापूर्ण उद्गारों से प्रेरित क्रान्तिकारी युगीन प्रवृत्तियों को नवीन आलोक प्रदान किया है । प्रतिष्ठित समाज व्यवस्था के प्रति कवि के मन में जो शंका है, उसको उन्होंने "द्वापर" में व्यक्त किया है

इस काव्य की विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र क्रान्ति ही क्रान्ति है । सामाजिक क्रान्ति के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति करने के लिए उन्होंने अपने पात्रों को ही माध्यम बनाया है । श्रीकृष्ण की राजनैतिक अनाचार के विरुद्ध क्रान्ति, कृषि सभ्यता के अन्तर्गत पशुबलि के स्थान पर अन्नकूट के प्रवर्तन के द्वारा जीवन विधि की क्रान्ति, बलराम की युग-परिवर्तन-विषयक क्रान्ति आदि "द्वापर" के मुख्य प्रतिपाद्य हैं । श्रीमद्भागवत में एक श्लोक में ही अभिव्यंजित विधृता के चरित्र को कवि ने सविस्तार आलेखित किया है और इसके माध्यम से समाज में शान्ति स्थापित करने पर बल देनेवाला, नारी के अधिकारों की सुरक्षा करने तथा

नारी के महत्व को मानने केलिए प्रेरणा देनेवाला तथा उच्च-नीच के भावों को छोड़कर सभी भारतीयों को एकत्रित होने का सन्देश देनेवाला यह काव्य अनूठा ही है ।

प्रियप्रवास

खड़ीबोली हिन्दी काव्य साहित्य के उल्लेखनीय महाकाव्य "प्रियप्रवास" की रचना महाकवि श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने की है । सन् 1940 में प्रकाशित इस काव्य में कवि ने सत्रह सर्गों में प्रिय के प्रवास की कथा याने श्रीकृष्ण के मथुरागमन की कथा नव्यतम वाणी में प्रस्तुत की है । इस कथा का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत पुराण होने पर भी युग की माँग की पूर्ति करने में यह पूर्ण रूप से सक्षम हुआ है ।

"प्रियप्रवास" के नायक कृष्ण का चरित्र पौराणिक अलौकिक श्रीकृष्ण से भिन्न एक जननायक का रूप ही उपस्थित करता है । एक जननायक की भाँति यहाँ पर कृष्ण दुष्टों और शत्रुओं का दमन करके अपने देश तथा देशवासियों की सेवा में व्यस्त रहते हैं । इसीप्रकार लोकसेवा करने केलिए मथुरा चले जाने पर वे अपने देशवासियों को कर्तव्यनिरत होकर देश सेवा में जुट जाने का संदेश देते हैं । इसके पीछे युगीन आवश्यकता ही कार्यरत है । कृष्ण के आदर्श चरित्र के माध्यम से कवि अंग्रेजों की दासता से आक्रान्त भारतवासियों की रक्षा करने में व्यस्त किसी समाज सुधारक के व्यक्तित्व की ओर ही इशारा करते हैं । "प्रियप्रवास" की राधा परम्परागत राधा के समान काम क्रीडा में व्यस्त न रहकर समाज के सुधार कार्य में लगी रहती है । श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर वे कृष्ण के वियोग में आठ आठ आँसू बहाने के बदले सच्ची लोकसेविका की भाँति श्रीकृष्ण के सन्देश को पूर्ण रूप से अपनाती है

और पूर्ण रूप से उपेक्षा करती है । तृतीय प्रभाव में आकर अलौकिक घटनाओं और पात्रों को लौकिक बनाने का उनका प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है

कामायनी

सन् 1935 में प्रकाशित "कामायनी" 15 सर्गों का एक बृहद् महाकाव्य है । हिन्दी साहित्य में ही नहीं आधुनिक विश्व साहित्य में भी इसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । छायावादी काव्यधारा के अमर शिल्पी श्री जयशंकर प्रसाद की असामान्य प्रतिभा ने वैदिक, लौकिक, तान्त्रिक आदि ग्रन्थों में बिखरी हुई मनु और श्रद्धा की कथा सामग्री को अपनी कल्पना द्वारा कामायनी की कथावस्तु रूपी भवन में सजाने का प्रयत्न किया है । कथा गठन में कवि ने कल्पना के साथ साथ मनोविज्ञान का भी सहारा लिया है । इसमें कवि ने भारतीय संस्कृति का समुज्ज्वल रूप भी प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत काव्य की विशेषता तो यह है कि इसमें कथा गायन के साथ साथ रहस्यात्मक रूपक का भी समुचित निर्वहण हुआ है । "कामायनी के सब पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी किसी न किसी मनोभाव के प्रतीक हैं जैसे मनु एक साथ इतिहास सम्मत सातवें मन्वन्तर के प्रवर्तक वैवस्वत मनु और मन के प्रतीक हैं वैसे श्रद्धा एक ओर मनुपत्नी है तो दूसरी ओर श्रद्धा नामक मनोभाव का भी प्रतीक है । इसी प्रकार इड़ा एक साथ ऐतिहासिक सारस्वत प्रदेश की साम्राज्ञी तथा बुद्धि की भूमिका अदा करनेवाली है । मानव मनु पुत्र के साथ साथ मन और हृदय के समन्वित रूप को दिखानेवाले के रूप में भी विख्यात है । काम और रति की भी इससे मिलती जुलती स्थिति है । वे एक ओर तो इतिहास-सम्मत देवजाति के व्यक्तित्व हैं तो दूसरी ओर मूल वासना के भी प्रतीक हैं । आकुलि किलात भी ऐतिहासिक पुरुष होने के साथ

साथ असुर प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । वर्तमान जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आज का मानव बुद्धिवाद के अत्यधिक प्रभाव के कारण श्रद्धा को खोकर व्यवसायात्मिका बुद्धि के बल पर भौतिक सुखों की प्राप्ति में लगा है जिसके फलस्वरूप अशान्ति, संघर्ष और विप्लव सर्वत्र फैले हुए हैं । प्रस्तुत काव्य में कवि ने हृदय और बुद्धि या जीवन की त्रिविध शक्तियों जैसे इच्छा, कर्म और ज्ञान की समरसता द्वारा जीवन को आनन्दमय बनाने का जो मार्ग अत्यन्त मनमोहक वाणी में सुझाया है वह सब केलिए अनुकरणीय है ।

कनुप्रिया

नई कविता के प्रमुख कवि डॉ॰ धर्मवीर भारती की अमूल्य कृति है सन् 1960 में प्रकाशित "कनुप्रिया" । इसमें लेखक ने श्रीमद्भागवत पुराण में उल्लिखित राधा-कृष्ण के माध्यम से युग सापेक्ष दृष्टि का ही सम्यक् निर्वाह किया है । पूर्व राग, मंजरी-परिणय, सृष्टि-संकल्प, इतिहास और समापन आदि विविध सोपानों के माध्यम से राधा-कृष्ण के प्रेम की विभिन्न स्थितियों का इसमें हू-ब-हू चित्रणमिलता है ।

इस काव्य की महानता तो यह है कि इसमें भारती कृष्ण और राधा को आधुनिक रोमान्टिक नर नारी के रूप में प्रस्तुत करते हुए भी उनके अलौकिक अथवा दिव्य अवतारी रूप को नहीं भूले हैं । यहाँ कनु अनुत्यध रहने पर भी युग के सचेत व्यक्ति हैं जो एक ओर तो अपने जीवन के राग विरागों के प्रति उन्मुख और ईमानदार हैं, दूसरी ओर युगधारा के गति वेग से भी असंपृक्त नहीं हैं । यहाँ लेखक ने अपनी विचारधारा को अपनी प्रमुख पात्र राधा के द्वारा ही प्रस्तुत किया है । राधा की विशेषता तो यह है कि वे वर्तमान जीवनगत समस्याओं को बौद्धिक दृष्टि से न

भावात्मक तन्मयता की दृष्टि से देखती है । इस रचना के महत्व का निदान भी यही है क्योंकि यह कार्य बहुत विरले कवि ही कर सकते हैं ।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि खड़ीबोली हिन्दी कवियों ने विभिन्न पुराणों से कथा सामग्री ग्रहण करते हुए उसे नया आलोक प्रदान करने का परिश्रम किया है । फलानुसार इस सामग्री को नवीन रूप देने की प्रक्रिया में कई पौराणिक चरित्रों में परिवर्तन भी लाया गया है । कर्ण का चरित्र इसका सर्वाधिक सशक्त उदाहरण है । करीब 25 काव्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 60 से अधिक चरित्र अपने पौराणिक कलेवर में परिवर्तित पा चुके हैं । या तो वे कुछ कुछ परिवर्तित हो गये हैं, नहीं तो पूर्ण रूप से नवीन बन गए हैं । इन्हीं चरित्रों का विश्लेषणआगे के अध्यायों का विषय रहा है ।

तृतीय अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के पात्र - ।

तृतीय अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के पात्र - ।

रामकथा चिर काल से भारतीय साहित्य का आधार रही है । महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण ही रामकथा की मूल पुस्तक मानी जाती है । राम कथा के नायक राम का चरित्र भारतीय जन जीवन में घुलमिल जाने के कारण जन मन को सरंजित करने में सक्षम है । देवता के रूप में पूज्य होने पर भी वे मानव है और इसलिए प्राचीन काल से लेकर आजतक कवि लोग उनकी कथा की ओर आकृष्ट होते रहे हैं । इसके अलावा राम कथा के अन्य सभी पात्र भी आदर्शात्मक व्यक्तित्व प्रस्तुत करने के साथ साथ स्वाभाविक लगते हैं जो उनकी लोकप्रियता बढ़ाने में सहायक होते हैं । आदि काव्य रामायण को आधार बनाकर भारतीय साहित्य में अनेक राम काव्य लिखे गए हैं । खड़ीबोली हिन्दी साहित्य के भी अनेक कवि इस ओर आकृष्ट हुए हैं । इन कवियों ने किन किन रूपों में राम कथा को चित्रित किया है, कथा को आकार प्रदान करने केलिए पात्रों का कैसा चित्रण किया है, इस पर इस अध्याय में विचार किया जाएगा । रामकथा के पात्र मूल रूप से धार्मिक दृष्टि की अभिव्यक्ति करनेवाले समझे जाते हैं । इन पात्रों ने अपने चरित्रों के माध्यम से सामान्य भारतीय जनता को शताब्दियों से प्रभावित किया है और आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मिक बल प्रदान किया है फिर भी, इनका मानवीय रूप अलग रूप से देखा जा सकता है । खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामकथा के पात्रों के चित्रण में खड़ीबोली के

हिन्दी कवियों ने इसी मानवीय दृष्टि से उनका विवेचन करने का प्रयत्न किया है । अधिकांशतः राम कथा के चरित्रों में पारिवारिक आदर्शों के विभिन्न रूप ही चित्रित मिलते हैं । आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श माता और परिवार के विभिन्न संबंधों का आदर्शात्मक चित्रण इन चरित्रों के ज़रिए प्रस्तुत किया गया है । पारिवारिक मूल्यों की दृष्टि से भी ये पात्र बड़े महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं राम के वन जाते समय सीता का अनुगमन करना, लक्ष्मण का राम का साथ देना, आदि रामायण में चित्रित विभिन्न प्रसंग पारिवारिक मूल्यों की महत्ता ही प्रकट करते हैं । इस दृष्टि से राम कथा के पात्रों का अपना विशेष महत्व रहा है । वाल्मीकि द्वारा चित्रित इन पात्रों ने खड़ीबोली के हिन्दी कवियों को प्रभावित अवश्य किया है, फिर भी उनके पात्र प्राचीनता के साथ साथ नये दृष्टिकोण को लेकर सामने आते हैं । यहाँ पर एक ओर राम कथा के उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति दिखाने का प्रयास हुआ है तो दूसरी ओर कवि लोग नारायण को नर बनाने के परिश्रम में लगे हुए हैं । कहीं ये पात्र मनोवैज्ञानिकता का आवरण लिए हुए हैं तो और कहीं प्रतीकात्मकता लिए हुए आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों के साक्षी बन गए हैं । ये पात्र खड़ीबोली हिन्दी काव्य में मानव जीवन की सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । इनके ज़रिये मानव जीवन के अनेक प्रश्नों का व्यावहारिक हल प्रस्तुत किया गया है । इस दृष्टि से इनका विशेष महत्व है । राम कथा के प्रत्येक प्रमुख पात्र का विवेचन आगे किया जाएगा ।

राम

प्राचीन रूप

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में राम का स्थान सर्वोत्कृष्ट सर्वोन्नत है । उनका चरित्र सत्य, शील, आस्था, पुरुषार्थ आदि भारतीय संस्कृति की अनिवार्य विशेषताओं से ओतप्रोत है । इसलिए उनका चरित्र

भारतीय जन जीवन की चेतना में आत्मसात हो गया है । युग जीवन की आकांक्षाओं को परितृप्त करने और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करने में सक्षम रहने के कारण उनका चरित्र युग युग से आज तक भारतीय साहित्य में परिलक्षित होता आ रहा है ।

पुराणों में राम के चरित्र के सम्बन्ध में अनेक अलौकिक बातें कही गई हैं कि आज का बुद्धिवादी मनुष्य उसे कोरी कल्पना कह कर अस्वीकार कर देता है । इस पर ध्यान रखते हुए आधुनिक कवियों ने राम के चरित्र को मानवीय धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है ।

यद्यपि खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अनेक कवियों ने राम काव्य लिखा है, तो भी राम के चरित्र को प्रमुखता देनेवाले प्रमुख कवि हैं - श्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, बलदेवप्रसाद मिश्र तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन इन कवियों ने किन किन रूपों में राम के चरित्र को अंकित किया है, इस पर आगे प्रकाश डाला जाएगा ।

<u>अलौकिकता</u>

आदि कवि वाल्मीकि ने राम को महापुरुष के रूप में चित्रित किया है । उन्होंने उनके अलौकिक गुणों का वर्णन किया है । इससे प्रेरणा प्राप्त करके रामायण के परवर्ती कवियों ने राम के चरित्र को भगवान के रूप में चित्रित किया है । हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास ने उन्हें अवतार मानकर उनके प्रति श्रद्धा अर्पित की है[1] । आधुनिक काव्यों में भी उन्हें ईश्वर मानकर

---

1. श्रीरामचरित मानस - बाल. पृ.202

उनका गुणगान किया गया है । पं॰ रामचरित उपाध्याय,[1] गुप्तजी,[2] नवीनजी,[3] बलदेवप्रसाद मिश्रजी[4] आदि कवियों ने राम के चरित्र का अलौकिक चित्र खींचा है । लेकिन इन कवियों ने राम के चरित्र को आधुनिक युग को पचाने लायक बनाकर ही अंकित किया है । अपने उच्च आदर्श के कारण ही यहाँ राम ईश्वर हो जाते हैं ।

गुप्तजी ने अनेक जगहों पर राम के चरित्र के दिव्यत्व का चित्रण किया है । उन्होंने लिखा है कि उनके राम पूर्णतः भगवान हैं जो लीला के अर्थ मनुष्य का अवतार लिए हुए हैं।[5] "साकेत" में लक्ष्मण,[6] वसिष्ठ मुनि,[7] आदि ने भी राम के ईश्वरत्व की उद्घोषणा की है । नवीनजी के राम आध्यात्मवाद के समर्थक हैं और राम-रावण-युद्ध आध्यात्मवाद और भौतिकवाद का संघर्ष है । लक्ष्मण ने कहा है कि धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों को समझाने केलिए तथा जग को सुधारने केलिए राम अवतीर्ण हुए हैं।[8] इस काव्य में उर्मिला राम को नर नहीं, एक चिरन्तन ब्रह्म पुंज मानती है जो राम के अलौकिकत्व को उद्घोषित करने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।[9] "राम-राज्य" के राम के संबन्ध में स्वयं कवि ने ही कहा है कि उन्होंने राम केलिए प्रभु शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन उनके राम का चरित्र पूर्णतः मानवी स्वभाव के अनुकूल है।[10] "साकेत सन्त" में कवि ने कभी कभी राम को परमात्मा के प्रतीक रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया है । यहाँ पर कवि भरत को जीवात्मा और राम को परमात्मा के प्रतीक मानते हैं और भरत द्वारा राज्य संभालने और पुनः

1· रामचरित चिन्तामणि - पृ·10
2· साकेत - पृ·17-18
3· उर्मिला - पृ·296
4· कोशल किशोर - पृ·19
5· प्रदक्षिणा - पृ·7
6· साकेत - पृ·26
7· वही - पृ·42
8· उर्मिला - पृ·570 -571
9· वही - पृ·295
10· रामराज्य - भूमिका - पृ·10

लौटाने को परमात्मा के सम्मुख जीवात्मा का आत्मसमर्पण मानते हैं[1]।

लौकिकता

वाल्मीकि के राम का व्यक्तित्व बलवान होने पर भी उनमें अन्तर्द्वन्द्व वाल्मीकि ने दिखलाया है। कवि ने राम के चरित्र को सभी गुणों से विभूषित किया है, साथ ही अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण राम के वैयक्तिक जीवन को खोलने का अवसर भी दिया है। यहाँ के राम धर्मात्मा हैं और वचनबद्ध रूप में वन जाने केलिए तैयार हैं, किन्तु यहाँ पर उन्हें अत्यधिक व्याकुल दिखलाया गया है। उनके मन में सीता की चिन्ता है, कौसल्या की चिन्ता है और इन चिन्ताओं पर विजय प्राप्त करने केलिए उन्हें आत्मसंघर्ष से गुजरना पड़ता है[2]। एक ओर भरत के प्रति अत्यधिक विश्वास करने[3] के साथ साथ दूसरी ओर उन पर सशंकित होना[4] तथा सीता को प्राण प्रिय मानने के साथ साथ दूसरी ओर उनका भीषण तिरस्कार करना[5] उनकी अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण मनःस्थिति को ही अभिव्यक्त करता जो उनके चरित्र के मानवत्व का सुन्दर निदर्शन है। श्रीराजगोपालचारी ने लिखा है कि "वाल्मीकि रामायण में राम का जो शब्द चित्र खींचा गया है, वह एक महान् और असामान्य पुरुष का शब्दचित्र है, ईश्वर के अवतार का नहीं।" इसी प्रकार खड़ीबोली के राम काव्यों में भी राम के चरित्र को मानवीय गुणों से विभूषित किया गया है। उनके चरित्र में मानवीय दुर्बलताएं भी चित्रित की गई हैं। गुप्तजी के राम गुप्तजी की पंक्तियों में इस प्रकार हैं -

राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या[6]

"साकेत" में अनेक पात्रों के मुख से भी गुप्तजी ने राम के आदर्श मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति करायी है। इसके अलावा स्वयं राम ने अपने मानत्व और उसकी महत्ता की उद्घोषणा करते हुए कहा है कि "मैं विश्व के संत्रस्त, निरुपाय निर्जन असहाय लोगों के जीवन में सुख शांति की स्थापना के हेतु आया हूँ, मैं स्वर्ग का संदेश लेकर नहीं आया, अपितु इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने

1. साकेत-सन्त-अध्ययन - पृ.16 2. वा.रा.अयो.स.23-26,34,37
3. वही - 6/18/15 4. वही 7/125/14 5. वही 6/115/21-23
6. साकेत - पृ.13

की प्रेरणा से आया हूँ[1]। इसके द्वारा गुप्तजी ने मानव की ईश्वरता का चित्रण किया है। "वैदेही वनवास" में आकर राम अपनी समस्त अलौकिकता को खो बैठे हैं और पूर्णतः लौकिक बन गए हैं। बाद आत्मविश्वास जागृत कराने के पश्चात् भी अनेक जगहों पर वे अपने भावों को संयत रखने में असमर्थ हो जाते हैं। सीता के अभाव की कल्पना मात्र से उनका मन विक्षुब्ध हो उठता है। यहाँ के राम में सामान्य मानव की धर्मनिष्ठता भी देखी जा सकती है। वे दांपत्य धर्मानुसार गर्भवती सीता को प्रसन्न रखने के प्रयास में लगे रहते हैं। "रामचरित चिन्तामणि" में राम के मानवत्व के प्रमाण स्थापित करने केलिए उनकी अनेक दुर्बलताएँ भी प्रदर्शित की गई है। पितृवचन के रक्षार्थ राज्य छोड़ने केलिए तैयार होने पर भी यहाँ के राम राज्य से पूर्णतः विरक्त नहीं है। माँ-बाप की अनीति पर आक्रोशयुक्त भाषण करनेवाले लक्ष्मण से वे अपने भाग्य की विडम्बना करते हुए कहते हैं -

दुर्दैव ने ही राज्य देकर हाथ से फिर ले लिया,
मुझको अकिंचन कर दिया, घर भी नहीं रहने दिया[2]।

भरत की ओर से भी उनका मन स्वच्छ नहीं है। सीता को भी वे भरत के अनुकूल रहने का संदेश देते हैं[3]। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वन जाने केलिए राम के मन में तनिक भी प्रसन्नता नहीं है। "राम की शक्तिपूजा" में निराला ने राम के मानव सहज गुणों से युक्त लौकिक रूप को पूर्णतः उतारा है। पूजा में विघ्न होने पर वे साधारण मानव जैसे निराश हो जाते हैं[4]।

---

1. साकेत - पृ.167
2. रामचरित चिन्तामणि - पृ.84
3. रामचरित चिन्तामणि - पृ.75
4. राम की शक्तिपूजा (राग विराग - रामविलास शर्मा - संपादक) पृ.103

बालि-वध, सीता-निष्कासन आदि कतिपय प्रसंगों पर राम का चरित्र रामायण में कलंकित हुआ है । कुछ आधुनिक कवियों ने राम के चरित्र के इन कलंकों को धोने का स्तुत्य प्रयास किया है और राम को एक श्रेष्ठ मानव का रूप दे दिया है । डॉ॰बलदेवप्रसाद मिश्र ने बाली को साम्राज्यवादी रावण का मित्र और प्रजातन्त्र की व्यवस्था का विध्न निरूपित किया है।[1] हरिऔध जी ने सीता निष्कासन को निष्कासन नहीं माना । उनके राम सीता को उनकी सहमति से ही वाल्मीकि आश्रम भेजते हैं और लोक कल्याण के निमित्त व्यक्तिगत सुखों का बलिदान करते हैं । "राम-राज्य" में कवि ने राम के चरित्र को आदर्श मानव के चरित्र के अनुकूल चित्रित किया है । उन्होंने "राम-राज्य" की भूमिका में लिखा है - "राम को मैं ने प्रभु अवतार माना है, परन्तु उनके चरित्र और क्रियाकलाप में मानवी मर्यादा का पूरा ध्यान रखा है[2] ।

शौर्य

राम-चरित्र का और एक परंपरागत गुण है शौर्य । वाल्मीकि रामायण के राम का चरित्र शौर्य से तेजदीप्त है । बाल्यावस्था में ही उनके द्वारा ताड़का, सुबाहु आदि राक्षस मारे जाते हैं[3] । इसी प्रकार धनुष-यज्ञ-प्रसंग में जो धनुष को कोई उठा भी न सका, उसे वे आसानी से तोड़ देते हैं[4] । वन में खर, दूषण, त्रिजटा आदि राक्षसों का वे अकेले संहार करते हैं । अन्तिम राम-रावण-युद्ध में भी उनकी वीरता ही सर्वाधिक झलकती है । कुंभकर्ण, रावण जैसे महा राक्षसों को मार कर वे विजय प्राप्त करते हैं[5] । "साकेत" में आकर यह देखा जाता है कि वहाँ उर्मिला के चरित्र को प्रमुखता दी जाने के कारण राम के चरित्र के इस पक्ष का विशद वर्णन नहीं किया गया है, लेकिन अवश्य इसका संकेत दिया गया है । अन्तिम युद्ध में लक्ष्मण की

1• राम-राज्य - पृ•8।
2• राम-राज्य-भूमिका - पृ•10
3• वा•र •बाल•सर्ग • 26
4• वही - पृ•67
5• वा•रा•युद्ध सर्ग 99,100

मृत्यु पर उनके व्यक्तित्व की जो झलक दिखाई गई है वह अप्रतिम है[1]। 'राम-राज्य' में राम के चरित्र के शौर्य को विशेष रूप से चित्रित करने का प्रयास किया गया है । उनकी अप्रतिम वीरता के सामने खर, दूषण, रावण जैसे वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित सब निशाचर पराजित हो जाते हैं[2]। 'साकेत-सन्त', 'उर्मिला' आदि काव्यों में अप्रतिम वीरता को चित्रित करनेवाला राम का चारित्रिक पक्ष कवियों में ही सजाया गया है ।

आदर्श भ्राता

आदर्श भ्राता का रूप राम के चरित्र की एक परंपरागत विशेषता है जो रामायण से लेकर अधिकांश परवर्ती काव्यों में प्रस्फुटित हुई है राम अपने भाइयों को प्राणतुल्य समझते हैं । उनके भ्रातृप्रेम के दर्शन युद्धभूमि में तथा उनकी वनवास यात्रा में होते हैं । वाल्मीकि रामायण का 49 वाँ सर्ग राम के इस उत्कट भ्रातृप्रेम का निर्झर है[3]। किन्तु वाल्मीकि के द्वारा अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण राम के व्यक्तित्व को उपस्थित करने के प्रयास में राम का भ्राता रूप कलंकित हो जाता है । वे एक ओर भरत के प्रति उनका अगाध विश्वास व्यक्त करते हैं[4] तो दूसरी ओर उनकी ओर शंकालु हो जाते हैं[5]। गुप्तजी ने राम के चरित्र को पूर्ण आदर्श रूप प्रदानकिया है । 'साकेत' में सारा राज्य भरत को देकर राम पूछते हैं - 'मुझ में और भरत में क्या भेद है[6]।' लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर 'साकेत' के राम का विलाप देखिए -

---

1. साकेत - पृ.35।
2. राम-राज्य - पृ.101
3. वा.रा. युद्ध सर्ग - 49
4. वही 6/53/10
5. वही 7/125/14
6. साकेत - पृ.6

सर्व कामना मुझे भेंटकर / वत्स कीर्तिकामी न बनो,
रहे सदा तुम तो अनुगामी / आज अग्रगामी न बनो[1]।

"राम-राज्य" में राम का आदर्श भ्रातृत्व झलक जाता है। यहाँ पर राम शत्रुघ्न को भरत के राज्य की देखभाल करने का उपदेश देते हैं[2]। लक्ष्मण की मृत्यु पर उनका हृदय हाहाकार कर उठता है और लक्ष्मण के अभाव में राम केलिए जीना भी अस्वाभाविक बन जाता है[3]। "साकेत-सन्त" तथा "उर्मिला" में राम के भ्रातृत्व का संकेत दिया गया है तो "वैदेही वनवास" में कवि ने उनके इस रूप को चित्रित करने का अधिक प्रयास नहीं किया है।

आदर्श मित्र

यह भी राम के चरित्र की एक परंपरागत विशेषता है। खड़ीबोली के अधिकांश राम काव्यों में यह प्रस्फुटित भी हुई है। राम तो सबके बन्धु एवं मित्र हैं। वे अपनी शरण में आनेवाले सबकी सहायता करते हैं। राम के मित्रत्व के आदर्श ने न जाति, कुल एवं श्रीसम्पन्नता की परवाह की है, न उनके गुण-दोषों की। उनके मित्र गण में सबसे प्रमुख तीन व्यक्ति हैं - निषाद राजा गुह, वानर राजा सुग्रीव तथा राक्षस राजा विभीषण। राम के ये तीनों मित्र विजातीय, वन्य, तुलना में असंस्कृत तथा दीन हीन हैं, लेकिन राम ने उन्हें भी अपनी बराबरी का स्थान देकर अपना मित्र माना है। राम की मित्रता का सबसे उज्ज्वल चित्र वाल्मीकि रामायण में देखा जाता है। "साकेत" और "राम-राज्य" में भी राम निषाद राजा गुह का आतिथ्य स्वीकार करते हैं और उन्हें बन्धु का पद दे देते हैं[4]। "उर्मिला" में विभीषण और सुग्रीव के प्रति राम की जो अनन्य ममता है वह

---

1. साकेत - पृ.355
2. रामराज्य - पृ.27
3. वही - पृ.102
4. वही - पृ.32

खुल्लमखुल्ला दिखाई गई है । विभीषण को राज्याभिषिक्त करने केलिए आयोजित सभा में वे उनकी प्रशंसा करते हुए जो भाषण करते हैं वह उनके मित्रत्व के आदर्श को संपुष्ट करता है । "साकेत"सन्त" में इसका मात्र संकेत दिया गया है

आदर्श पति

राम के आदर्श पति का रूप वाल्मीकि से लेकर अधिकांश राम कवियों के काव्यों में प्राप्त होता है । विषम की परिस्थितियों में भी वे अपने एकपत्नीव्रत में सुदृढ रहे हैं । संयोग तथा वियोग की स्थिति में भी राम आदर्श पतित्व का पालन करते हैं । संयोगी राम के सीता के प्रति प्रेम प्रदर्शन के चित्रणों में गुप्तजी की प्रतिभा अधिक रम जाती है[1]। लेकिन वियोगावस्था में ही राम के पत्नीप्रेम की यथार्थ झाँकी मिल जाती है । इसका सबसे आकर्षक रूप "वैदेही वनवास" में देखा जाता है । वाल्मीकि रामायण में राम का आदर्श पतित्व देखा जा सकता है । लक्ष्मण का सीता को अकेली छोड आया देखकर वाल्मीकि के राम प्राण त्याग तक केलिए उद्यत होते हैं[2]। आश्रम को सीता से शून्य देखकर राम विलाप और प्रलाप करने लगते हैं और विक्षिप्त सा हो जाते हैं[3]। सीता के वियोग से अत्यन्त व्याकुल दिखाये जाने पर भी गर्भवती सीता का परित्याग रामायण के राम के पतित्व को अवश्य कलंकित की देता है । इसके विरुद्ध "वैदेही वनवास" के राम में आदर्श पति के सभी गुण देखे जा सकते हैं । राम के आदर्श पतित्व पर युग युग से आरोपित कलंक को धोने केलिए ही हरिऔध जी ने "वैदेही वनवास" की रचना की है । उनके राम ने अपनी पत्नी को सहधर्मिणी और समान कर्मा समझा[4]। उन्होंने अपनी पत्नी को एक परवशी नारी के समान वन में

1• पंचवटी - पृ•4,69

2• वा•रा• अरण्य• सर्ग• 58 श्लो• 9-10

3• वही - श्लो•11 सर्ग•60

4• वैदेही वनवास - पृ•234

स्थानान्तरित नहीं किया । वे अपनी पत्नी को परिस्थितियों से अवगत कराने के बाद, उनकी इच्छा तथा वसिष्ठ मुनि के आदेशानुसार ही उन्हें वाल्मीकि आश्रम भेज देते है । उन्होंने अपनी पत्नी से स्पष्ट शब्दों में बताया है कि जनहित केलिए हम लोगों को अपने वैयक्तिक सुखों का भी त्याग करना चाहिए[1]। अपनी पत्नी की इस वनवास यात्रा से उनका मन विरह वेदना से तड़प उठता है[2]। "राम-राज्य" के राम सच्चे राजनीतिज्ञ होने के साथ साथ आदर्श पति भी हैं । धर्मपत्नी के खो जाने पर वे विह्वल हो उठते हैं । उनकी विरहातुरता उज्ज्वल रूप में यहाँ उपस्थित की गई है[3]। "साकेत" में राम की विरहातुरता का व्यापक प्रभाव मात्र अंकित किया गया है[4] तो "साकेत-सन्त" तथा "उर्मिला" में राम के आदर्श पतित्व को संकेतों में सजाया गया है ।

आदर्श पुत्र

राम आदर्श पुत्र हैं । वे हमेशा अपने माँ-बाप के आदेशों को शिरोधार्य करते हैं । माँ-बाप के आदेशों के पालन को वे अपना धर्म मानते हैं । बहुत दुःखदायी होने पर भी वे अपने पिता के काननवास के आदेश को सहर्ष स्वीकार करते हैं । कोई भी उन्हें इस कार्य से विचलित नहीं कर सकता । वाल्मीकि ने अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण राम का चित्र ही यहाँ उपस्थित किया है । एक ओर राम परम पितृभक्त दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर वे पिता के व्यवहार के प्रति असन्तोष भी प्रकट करते हैं[5]। यद्यपि राम दूसरों से अपने ऊपर अत्याचार करनेवाली कैकेयी की भर्त्सना सुनना पसन्द नहीं करते हैं तो भी वे स्वयं उन पर आक्रोश प्रकट करते हैं और उन्हें क्रूरकर्मा

---

1. वैदेही वनवास - पृ.58
2. वही - पृ.112
3. रामराज्य - पृ.74
4. साकेत - पृ.337
5. वा.रा. 2/53/10

तक कहने में तनिक भी हिचकते नहीं[1]। लेकिन गुप्तजी ने यहाँ पर भी राम के चरित्र को पूर्ण आदर्श रूप प्रदान करने का परिश्रम किया है। उनके राम बड़ों के प्रति हमेशा श्रद्धावान है। कैकेयी से वनवास की आज्ञा पाकर वे तुरन्त इसकेलिए तैयार हो जाते हैं। "पड़ूँ मैं आग में भी जो कहो तुम"[2]- कहनेवाले गुप्तजी के राम की पितृभक्ति पूर्ण रूप से श्लाघनीय ही है। राम अपने वनवास को रोकने के प्रयास में लगी सुमित्रा से "धर्म बड़ा धन धाम नहीं"[3] कहते हैं और "स्पृहा बड़ी या धर्म बड़ा" कहकर सुमन्त्र को निरुत्तर कर देते हैं। "रामचरित चिन्तामणि" में वाल्मीकि रामायण के समान अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण राम के चरित्र की पितृभक्ति ही अंकित की गई है। राज्य से विरत होने से वे अतीव दुःखी होते हैं और स्थान स्थान पर कैकेयी के प्रति आक्रोश भी प्रकट करते हैं[4]। छठीबोली के अन्य काव्यों में राम की पितृभक्ति संकेतों में ही सजाई गई है।

आदर्श राजा

वाल्मीकि रामायण से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी राम के चरित्र के इस रूप पर प्रकाश डाला गया है। स्मृतियों, पुराणों तथा प्राचीन काव्य ग्रन्थों में राजा के कायिक, वाचिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों का वर्णन मिलता है। इन सभी आदर्श गुणों से राम के राजत्व को विभूषित किया गया है। राम के आदर्श राजा रूप का सबसे उज्ज्वल चित्रण "वैदेही वनवास" में हरिऔध जी ने किया है। यहाँ के राम परम शान्ति और त्याग से युक्त राजा हैं जो वैयक्तिक हित की अपेक्षा जन कल्याण ध्यान रखते हैं। राम ने सीता का परित्याग करके इसी आदर्श की स्थापना

---

1. वा. रा. अयो. स.53 श्लोक.7
2. साकेत - पृ.75
3. वही - पृ.84
4. वही - पृ.90

वे आदर्श राजा होने के कारण लोकापवाद को कलंक मानते हैं और उसे धोने का परिश्रम भी करते हैं[1]। अपनी आदर्शवादिता के कारण वे प्रजानुरंजन केलिए सभी प्रकार के दुःख भोगने केलिए तैयार होते हैं। उनके अनन्य त्याग और लोकाराधन से प्रभावित होकर गुरु वसिष्ठ उनकी प्रशंसा करते हैं कि स्वार्थ से परमार्थ की, संग्रह से त्याग की, स्वहित से जातीय एवं देशहित की महत्ता सिद्ध करनेवाले राम पूर्णतः आदर्श राजत्व की कसौटी पर खरा उतरते हैं[2]। जीवन मूल्यों एवं भारतीय संस्कृति के पुनीत आदर्शों की स्थापना करनेवाले हरिऔध जी के राम गान्धीजी के राम-राज्य की विचारधारा से बहुत प्रभावित हैं। "साकेत" के राम भी अपने से राज्याधिकारी मानकर भी उसे अकेले भोगना नहीं चाहते[3]। क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि राज्य प्रजा की थाती है[4]। "राम-राज्य" में कवि ने राम के राजत्व के आदर्श रूप की खुल्लमखुल्ला अभिव्यक्ति की है। उन्होंने आधुनिक युगीन परिप्रेक्ष्य में - विज्ञान युग के ह्रास और विकास, प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य में राम-राज्य की प्रतिष्ठा का आग्रह किया है। यहाँ के राम सच्चे राजनीतिज्ञ और कुशल शासक भी हैं। लोकापवाद होने पर राम अत्यन्त आतुर होने पर भी जनहित केलिए पत्नी को निर्वासित करने में तनिक भी हिचके नहीं[5]।" "साकेत-सन्त" के राम ने अपने वनवास की आवश्यकता समझाते हुए कहा है कि राजा को प्रजा का उद्धार करना चाहिए। भारत के उत्तरापथ में मानवता कराह रही है, साम्राज्यवादी रावण दनुजता के बल पर मनुष्य को खा रहा है। जनोद्धार केलिए, विश्वबन्धुत्व की स्थापना केलिए दनुजता का दमन आवश्यक समझकर वे इसकेलिए अग्रसर हैं[6]। यहाँ पर युग प्रभाव बहुत झलकता है। आज की राजनीतिक दुःस्थिति को देखकर, उस स्थिति को परिवर्तित करने केलिए भावापित कवि आदर्श राजत्व के प्रतीक राम का

---

1. वैदेही वनवास - पृ.23
2. वही - पृ.52
3. साकेत - पृ.48
4. वही - पृ.48
5. राम राज्य - पृ.135
6. साकेत - सन्त - पृ.142, 147

आदर्श प्रस्तुत करके मानवता का उद्धार करना चाहते हैं । "उर्मिला" काव्य में भी राम विभीषण को राज्याभिषिक्त करके उनको आदर्श राजा एवं आदर्श राजत्व निभाने का उपदेश दे देते हैं ।

लोकसेवक

राम के चरित्र का सबसे अधिक आकर्षक रूप लोकनायक का है । वे राक्षसों की बर्बरता और ऋषियों का दुःख देखकर धर्मोद्धार की प्रतिज्ञा करते हैं । लोकरंजन केलिए अपनी प्राण प्रेयसी सीता का परित्याग करने में वे तनिक भी हिचकते नहीं । आधुनिक रामकाव्यों में राम के चरित्र के इस पहलू का ही अधिक आकर्षक रूप दिखाया गया है । गुप्तजी के राम लोकसेवक तथा आर्य संस्कृति के प्रचारक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । अपने जन्म और जीवन का उद्देश्य प्रकट करते हुए उन्होंने बताया कि -

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।[1]

यहाँ पर उनकी लोकसेवा की भावना पूर्ण रूप से अभिव्यक्त होती है । हरिऔध जी ने राम को लोकरंजनकारी सामनीति का प्रवर्तक बताया है । सीता संबन्धी लोकापवाद उठने पर वे वसिष्ठ मुनि से कहते हैं कि वे स्वयं लोकसेवक होने के कारण दमननीति के बदले सामनीति अपनाना

---

1. साकेत - पृ.167

इस केलिए वे भोग का मार्ग नहीं, त्याग के मार्ग का अवलंबन करते हैं[1]। वे दण्डकवन को साम्राज्यवादी रावण के आतंक से मुक्त करते हैं और किष्किन्धा में क्रांति करके विकास-विरोधी रावण के मित्र बालि का अन्त कर देते हैं[2]। राम के सिंहासनारूढ होने पर राष्ट्र धर्म की घोषणा की जाती है। राष्ट्रीय एकता एवं दृढता केलिए सांस्कृतिक एकरूपता, भारतीय राष्ट्र भाषा सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, सामान्य एवं विशेष धर्म आदि की व्यवस्था की जाती है। मिश्रजी के राम का यह रूप वर्तमान युग के युगपुरुष की धारणा प्रत्यक्ष करता है। कवि ने राम के व्यक्तित्व का निरूपण यथार्थदर्शी लोकनायक के रूप में किया है। वे उन्हें युग युग की प्रेरणा का धाम मानते हैं।

"त्रेता युग के नहीं, राम तो युग युग के प्रेरणाधाम हैं
पूर्ण पुरातन चिर नवीन वे, भाव स्रोत हृदयाभिराम हैं[3]।"

<u>भावुकता</u>

वाल्मीकि के राम के व्यक्तित्व में भावावेश और संवेदनशीलता के द्योतक अनेक प्रसंग हैं जैसे सीता से विदाई, सीता-अपहरण, लक्ष्मण-शक्ति आदि। इन सभी संदर्भों में लोकमत, सामाजिक मान्यताओं और परंपरागत आदर्शों के प्रति उनका लगाव अत्यधिक प्रबल होने के कारण, उनके चरित्र में एक प्रकार का संघर्ष देखा जाता है और अन्त में वाल्मीकि के राम ने लोक को प्राधान्य देते हुए अपने मनोवेगों का संवरण किया है - चाहे उन्हें भीतर ही भीतर उससे खेद भी हुआ हो। खडीबोली के कवियों ने राम के चरित्र के इस पक्ष का उन्नयन किया है। गुप्तजी के "पंचवटी" काव्य में उनका

1· राम राज्य - पृ·134

2· वही - पृ·81

3· वही - पृ·3 (प्रस्तावना)

प्रेम, करुणा आदि से संचालित हास परिहास पूर्ण चित्र पूर्णतः अंकित हुआ है। "पंचवटी" के आरंभ की तथा अन्त की पंक्तियाँ इसका सुन्दर नमूना है[1]। राम के पारिवारिक जीवन का जो सुन्दर चित्र गुप्तजी ने उपस्थित किया है वह भी राम की भावुक प्रकृति का द्योतक है[2]। वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि वाली भवभूति की उक्ति खड़ीबोली के राम काव्यों में चित्रित राम केलिए अधिक लागू होती है। साकेत के राम का चरित्र गंभीर होकर भी कुसुम कोमल अन्तःकरण से युक्त है। उनके मन में संपूर्ण प्राणि मात्र के प्रति प्रेम है और वे वसुधैवकुटुंबकम् का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। "साकेत" के राम के सामने सब प्राणी समान हैं और वे गुहराज की पत्नी को भी भाभी कहकर पुकारते हैं। शूर्पणखा भी उनके सम्बन्ध में कहती है - तो अब सुनो, बड़े होने से,

> तो अब सुनो, बड़े होने से,
> तुम में बड़ी बड़ाई है,
> दृढ़ता भी है, मृदुता भी है[3]।

इसी प्रकार परंपरागत चरित्र से भिन्न "वैदेही वनवास" के राम भी अत्यन्त भावुक हैं। लोकापवाद की बातें सुनने पर राम वसिष्ठ मुनि के यहाँ सलाह लेने केलिए जाते हैं। उस समय उनकी मानसिक दशा भावुक प्रकृति के अनुकूल है।

> कभी व्यथित हों, कभी वारि दृग में भरे,
> कभी हृदय के उद्वेगों का कर दमन[4]।

---

1. पंचवटी - पृ.4
2. वही - पृ.69
3. साकेत - पृ.112
4. वैदेही वनवास - पृ.49

सीता-निष्कासन के उपरान्त जब वे शंबूक वध केलिए पंचवटी जाते हैं तो वहाँ के सांस्कृतिक दृश्यों को देखकर उनकी पूर्वस्मृति सजग हो उठती है । वे सीता की याद में अतीव दुःखी होकर विलाप करने लगते हैं; यह उनकी भावुक प्रकृति को ही प्रस्फुटित करता है । निराला की "राम की शक्तिपूजा" में भी राम के चरित्र का भावुक पक्ष ही अधिक झलकता है । सीता के उद्धार के कार्य में बाधा उपस्थित होने पर वे विलाप करने लगते हैं[1] । "रामचरित चिन्तामणि" के राम भी अत्यन्त भावुक हैं । सीता के वियोग में उनकी दशा "मणि विहीन सर्प की भाँति हो जाती है । इसके विरुद्ध "राम-राज्य" के राम कुशल राजनीतिज्ञ हैं । राम के चरित्र की भावुकता इस काव्य में नहीं देखी जाती है । अपने शत्रु रावण के प्रति राम की संवेदना उनकी भावुक प्रकृति का द्योतक है । "साकेत" में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । यहाँ पर राम को गान्धीजी के पदचिन्हों पर चलते हुए दिखाया गया है । "साकेत-सन्त", "उर्मिला" आदि काव्यों में उनके चरित्र की भावुकता नहीं चित्रित की गई है ।

नवीन रूप

देशप्रेम

खड़ीबोली हिन्दी काव्यों में चित्रित राम के चरित्र की एक नवीन विशेषता है देशप्रेम । राम के व्यक्तित्व में जन्मभूमि-प्रेम के मनोवैज्ञानिक स्थायी भाव का विकास गुप्तजी और परवर्ती आधुनिक कवियों ने आकर्षक रूप में दिखाया है[2] । युग के सामने आदर्श उपस्थित करने केलिए गुप्तजी के राम आत्मरक्षा से अधिक स्वदेश रक्षा को महत्व देते हैं[3] ।

---

1. राम की शक्तिपूजा - निराला {अ राग विराग-रामविलासशर्मा}
 - पृ.103

2. साकेत - पृ.107-108

3. प्रदक्षिणा - पृ.13

भारतीय वाङ्मय में चित्रित मर्यादापुरुषोत्तम, लोकोद्धारक राम यहाँ आकर कट्टर देशप्रेमी बन जाते हैं । राम के इस रूप के पीछे निश्चय रूप से गांधीजी का प्रभाव देखा जाता है । "साकेत-सन्त" तथा "उर्मिला" में राम के चरित्र के देशप्रेम का मनबहलानेवाला चित्र न मिलने पर भी अवश्य इसकी झांकी मिल जाती है । इसके विरुद्ध "राम-राज्य" के राम का चरित्र देशप्रेम से तेजोदीप्त है[1] ।

हास-परिहास

खडीबोली हिन्दी काव्यों में चित्रित राम के व्यक्तित्व की ओर एक विशेषता है हास परिहास । गुप्तजी ने राम के चरित्र के इस पक्ष को उभारने का विशेष प्रयत्न किया है । रामायण के राम के गंभीर व्यक्तित्व में हास-परिहास का एकदम अभाव है। वहाँ गुप्तजी के राम हास-परिहास प्रिय एवं विनोदी स्वभाव के हैं । अपने इस स्वभाव के कारण वे वनवास की विषम स्थितियों में भी सीता के जीवन को और अपने जीवन को भी आनन्दमय बनाने में सफल होते हैं[2] । राम-राज्य के राम कुशल राजनीतिज्ञ होने के कारण उनके चरित्र में हास परिहास केलिए कोई स्थान नहीं है । "साकेत-सन्त", "उर्मिला", "रामचरित चिन्तामणि" तथा "वैदेही वनवास" में भी राम का गंभीर व्यक्तित्व ही अधिक झलकता है ।

विभिन्न कवियों द्वारा चित्रित राम के चरित्र का अध्ययन करने पर यह देखा जा सकता है कि राम का चरित्र असाधारण एवं आदर्शयुक्त है । उनमें अनेक लौकिक और अलौकिक गुणों के दर्शन होते हैं । प्राय: सभी कवियों ने उनके प्रति श्रद्धा अर्पित की है । लेकिन खडीबोली के राम काव्यों में

---

1. रामराज्य - पृ.21
2. साकेत - पृ.162-163

असल में राम के ईश्वरत्व की भक्तिमूलक अवधारणा का अन्त हो गया है और इसका स्थान सांस्कृतिक आदर्शों ने ले लिया है । खड़ीबोली के राम कवियों ने युगानुकूल मानवतावाद, गान्धीवाद आदि के प्रभाव में आकर परंपरागत राम के चरित्र में हेर फेर करके उनके चरित्र को और भी उज्ज्वल बना दिया है । यही राम के चरित्र का नवीन रूप है । इसकी मात्रा परंपरागत रूप की अपेक्षा कम होने पर भी अपने में बड़ा ही महत्व लिए हुए है । वाल्मीकि के द्वारा चित्रित राम का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रबल है । वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि महामुनि भी उनसे प्रभावित हैं । इनके साथ ही उन्होंने राम के जीवन के मानवीय पहलू पर, उनके सुख-दुख, उनके जीवन की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है । वस्तुत: उनके राम का चरित्र न एकान्तत: धार्मिक आदर्शवादी है और न एकान्तत: व्यावहारिक लाभान्वेषी । उनके व्यक्तित्व में इन दोनों का सन्तुलित सामंजस्य देखा जाता है । "वैदेही वनवास" में हरिऔध जी ने राम का मानवीय रूप अंकित किया है । राम का देवत्व यहाँ पूर्ण रूप से आँखों से ओझल है और उनके व्यक्तित्व को यहाँ पूर्ण रूप से मानवीय धरातल पर उतरा हुआ पाया जाता है । वे प्रत्येक स्थिति में मानवता की सुरक्षा तथा उसके पोषण केलिए लालायित हैं । उदात्तता और लोकप्रतिनिधित्व केलिए "साकेत" के राम मशहूर हैं । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे कर्मशील हैं और उदात्त आदर्श भी उपस्थित करते हैं । आर्य संस्कृति के प्रचार और प्रसार कार्य में वे कटिबद्ध हैं । "उर्मिला" के राम आध्यात्मोन्मुख जीवन दर्शन के प्रचारक हैं । "राम राज्य" के राम राजनीतिज्ञ अधिक हैं और मानवतावादी राष्ट्रीयता के पोषक हैं ।

लक्ष्मण

राम कथा में राम के बाद का सबसे महत्वपूर्ण चरित्र है लक्ष्मण का । राम के प्रति उन्होंने जो अगाध प्रेम, त्याग और समर्पण किया है वह उन्हें अमरवर बना देता है । सीता से अधिक लक्ष्मण पर राम मुग्ध हैं । लक्ष्मण शक्ति के प्रसंग में यह पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है । पौराणिक काल के राम काव्यों के अध्ययन करने से लक्ष्मण का चरित्र हमारे मन को अधिक प्रभावित नहीं करता क्योंकि उनके चरित्र की उग्रता एवं उनकी दुर्विनीत उक्तियों ने उन्हें आगे आने नहीं दिया है । लेकिन इसके विरुद्ध खड़ीबोली के कवियों ने विशेषकर गुप्तजी, नवीनजी आदि ने उनके महत्व को खूब पहचान लिया है और उनको नायकोचित गरिमा प्रदान करके उन्हें आगे आने दिया है । खड़ीबोली के राम काव्यों में "साकेत", "उर्मिला" आदि में प्रमुख रूप से तथा "वैदेही वनवास" "रामचरित चिन्तामणि" आदि काव्यों में प्रासंगिक रूप से लक्ष्मण का चरित्र उभरा हुआ है । गुप्तजी के "साकेत" का अध्ययन करने पर उनके राम से अधिक लक्ष्मण का चरित्र ही हमें प्रभावित करता है । "उर्मिला" में कवि ने लक्ष्मण को सभी नायकोचित गुणों से विभूषित किया है । साथ ही उनके चरित्र के परंपरागत दोषों को धोने का स्तुत्य प्रयास भी कवि ने किया है । विभिन्न काव्यों में चित्रित लक्ष्मण के चरित्र का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

प्राचीन रूप

वीरता

लक्ष्मण का चरित्र अतिशयोचित गरिमा से संयुक्त एक वीर चरित्र है । उनका उग्र स्वभाव अन्याय तनिक भी सह नहीं सकता ।

जब कभी अहित उन्हें छू जाता है तब वे उसके विरुद्ध हथियार उठाते हैं । उनके इस उग्र और हठी स्वभाव के कारण पुराणों ने उन्हें शेषावतार माना है । उनका क्षात्र तेज राम काव्यों में विश्वामित्र की याग रक्षा, धनुर्भंग, कैकेयी-वरदान, चित्रकूट-भरतागमन, राम-रावण-युद्ध, सीता-निष्कासन आदि अनेक प्रसंगों में अभिव्यक्त हुआ है । रामायण तथा पूर्व-वर्ती काव्यों में यह गुण अत्यन्त उज्ज्वल रूप में प्रस्फुटित हुआ है । लेकिन खड़ीबोली के राम काव्यों में विशेषकर उर्मिला में लक्ष्मण एक विवेकशील शान्त वीर हैं । उन्हें धृष्टता या औद्धत्य छू तक नहीं गया है ।

राम कथा संबन्धी काव्यों में बाल्यावस्था में ही उनकी वीरता अभिव्यक्त हुई है । बाल्यावस्था में ही वे राम के साथ विश्वामित्र के आश्रम जाते हैं और राक्षसों का संहार करते हैं । धनुर्भंग के अवसर पर जनक की वाणी रघुकुलमणि राम के लिए अपमानजनक देखकर लक्ष्मण उनके विरुद्ध गरज पड़ते हैं । खड़ीबोली के राम काव्यों में ये प्रसंग संकेतों में चित्रित किए गए हैं । धनुर्भंग के पश्चात् परशुराम के क्रोधित होने पर जब सब राजा प्रकंपित हो जाते हैं, तब लक्ष्मण उस स्थिति का भी सधैर्य सामना करते हैं । "साकेत"[1] तथा "रामचरित चिन्तामणि"[2] में उनका उज्ज्वल चित्र देखा जा सकता है । राम-वनवास का समाचार पाकर वे क्रोधाभिभूत हो उठते हैं । "साकेत" के तृतीय सर्ग में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति देखी जाती है । वे माता-पिता को भी खरी खोटी सुनाने में तनिक भी हिचकते नहीं । वे कैकेयी के सामने गरज उठते हैं और कैकेयी तथा भरत को मार डालने केलिए वे लालायित हैं । पिता के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए वे कहते हैं -

---

1· साकेत - पृ·63-64

2· रामचरित चिन्तामणि - पृ·44

"बने इस दस्युता के दास हैं जो,
इसी से दे रहे वनवास हैं जो,
पिता हैं वे हमारे या कहूँ क्या ।[1]

"रामचरित चिन्तामणि" में इस अन्याय की असहनीयता प्रकट करते हुए वे राम से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि लक्ष्मण के जीवित रहते भरत भारत पर शासन नहीं करायेगा[2]। लेकिन "उर्मिला" में आने पर लक्ष्मण अत्यन्त विवेकशील और संयमी वीर बन जाते हैं। उर्मिला द्वारा कैकेयी और दशरथ की भर्त्सना करने पर वे कैकेयी के पक्ष में बोलते हैं[3]। उनके अनुसार राम-वन-गमन मात्र सांसारिकता है, उसका लक्ष्य कैकेयी की स्वार्थ-सिद्धि नहीं है, बल्कि आर्य संस्कृति के प्रचार और प्रसार है[4]। पूर्ववर्ती काव्यों में लक्ष्मण का यह क्रोध और भी एक बार धधक उठता है जब चित्रकूट में वे भरत को ससैन्य आते देखते हैं। "साकेत" में वे क्रोधाभिभूत होकर यहाँ तक कह उठते हैं - "उनको इस शर का लक्ष्य चुनूँगा क्षण में,
प्रतिषेध आप का भी न सुनूँगा रण में।"[5]

"रामचरित चिन्तामणि" में भी उनका अमर्ष देखा जा सकता है लेकिन "राम-राज्य", "साकेत-सन्त" आदि काव्यों में वे प्रसंग नहीं उठाये गए हैं।

लक्ष्मण का यह वीरत्व केवल कथनी पर नहीं करनी पर भी झलकती है। राम-रावण-युद्ध इसका सुन्दर निदर्शन है। उनके रणकौशल का चित्रण पुराणों से लेकर सभी परवर्ती कवियों ने किया है। राम के द्वारा राक्षस राष्ट्र के

---

1. साकेत - पृ॰63-64
2. रामचरित चिन्तामणि - पृ॰81
3. उर्मिला - पृ॰261
4. वही - पृ॰263
5. साकेत - पृ॰187

विध्वंस का जो महनीय कार्य हुआ उसमें अधिक पराक्रम का श्रेय लक्ष्मण को है क्योंकि उन्होंने ही रावण से भी अधिक पराक्रमी इन्द्रजित का वध करके रावण वध की भूमिका निभायी है। शत्रु और मित्र सभी ने उनके अतुल पराक्रम की सराहना की है। "साकेत" में हनुमान उनकी अप्रतिम वीरता की प्रशंसा करते हैं।[1] "उर्मिला" काव्य में उनकी युद्ध कुशलता का विशद वर्णन नहीं किया गया है, लेकिन "राम"राज्य" में लक्ष्मण के अनुपम रणकौशल का चित्रण किया गया है जिसमें उनकी अपार वीरता सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुई है।[2] "वैदेही वनवास" में लक्ष्मण के उग्र स्वभाव के दर्शन सीता-निष्कासन प्रसंग में होते हैं। जब लोकापवाद के बारे में राम ने भाईयों से बताया तब लक्ष्मण क्रुद्ध होकर रंजक की रसना खींचने को भी लालायित हो जाते हैं। उनके अनुसार लोकापवाद को शांत करने का एकमात्र उपाय यही है।[3]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायण से लेकर सभी परवर्ती राम काव्यों में लक्ष्मण के क्षात्र-तेज का विशद चित्र खींचा गया है।

भ्रातृभक्ति और त्याग भावना

भ्रातृभक्ति लक्ष्मण-चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है। संपूर्ण राम-कथा में राम के साथ लक्ष्मण का चरित्र भी जुड़ा हुआ है। राम और लक्ष्मण के चरित्र आपस में इतना बंधे हुए हैं कि राम से अलग होने पर लक्ष्मण का चरित्र अपूर्ण रह जाता है और लक्ष्मण से अलग होने पर राम का चरित्र भी अपूर्ण रहता है। वे अपने अग्रज राम को इतना प्यार करते हैं कि उसकेलिए सभी ऐहिक सुखों, प्राण तक को त्याग देने केलिए कटिबद्ध हैं।

---

1. साकेत - पृ॰349
2. राम - राज्य - पृ॰100
3. वैदेही वनवास - पृ॰37

उनकेलिए सब कुछ राम ही है - "भ्राता भर्ता बन्धुश्च मम राघवः ।
जब कभी राम संकटग्रस्त हो जाते हैं तब लक्ष्मण उग्र रूप धारण करके राम के प्रतिद्वन्द्वी का सामना करते हैं । कैकेयी ने उन्हें अरण्यवास का दण्ड नहीं दिया है, लेकिन उनकी सीमातीत भ्रातृभक्ति ने उन्हें वनवास केलिए प्रेरित किया । कोई भी, स्वयं राम भी उन्हें इस कार्य से विमुख नहीं कर सकते । भ्रातृप्रेमी लक्ष्मण की तर्कपूर्ण उक्तियों के सामने राम को भी सिर झुकाना ही पड़ा है[1] । आदिकाव्य से लेकर सभी राम काव्यों में भी लक्ष्मण के चरित्र की यह विशेषता अभिव्यक्त हुई है । लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति का मनमोहक रूप "साकेत" में ही अभिव्यक्त हुआ है । राम के प्रति अत्याचार करने पर वे माँ-बाप के प्रति कटु वचन कहने में भी तनिक भी झिझकते नहीं[2] । गुप्तजी के लक्ष्मण राम के आज्ञाकारी, अनुयायी सेवक के रूप में हमेशा उनका अनुगमन करते हैं । भाई केलिए वनवास या नरक तक की यातना सहने केलिए भी वे लालायित हैं[3] । इसके अलावा गुप्त जी के लक्ष्मण भी कभी अपने अग्रज के प्रति कटु वचन तक कह देते हैं । यह भाव उनके भ्रातृप्रेम को कम करने केलिए नहीं बढ़ाने केलिए दिखाया गया है । डॉ॰ नगेन्द्र ने इसके संबंध में बताया है - "साकेत का लक्ष्मण चंचल और उग्र छोटा भाई है जो बड़े भाई केलिए मरने मारने तक को तैयार है[4] । जबकि "उर्मिला" तथा "साकेत-सन्त" में लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति की अभिव्यक्ति का विशेष अवसर नहीं दिया गया है तो भी "राम राज्य" के लक्ष्मण अपना चारित्रिक-विशेषता करते हुए कहते हैं -

> "मेरा विश्व स्वतः अग्रज बन मेरे सम्मुख है साकार,
> उसकी सेवा की तदीयता, है मेरे जीवन का सार[5] ।"

---

1. वा॰रा॰अयो॰सर्ग॰31
2. साकेत - पृ॰63-64
3. वही - पृ॰69-70
4. साकेत : एक अध्ययन - डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰33
5. राम-राज्य - पृ॰20

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र के विश्लेषण करने से यह ज्ञात हो जाता है कि वे राम-काव्य के एक सशक्त पात्र हैं । पौराणिक काव्यों में उनका गंभीर व्यक्तित्व मात्र झलकता है तो खड़ीबोली के कवियों ने उन्हें गंभीरता के साथ साथ सरस कोमल युवक का भी पद दे दिया है । पुरुषोत्तम राम में प्राप्त सभी गुण आधुनिक लक्ष्मण में भी देखे जाते हैं । उनमें कुछ उग्रता तथा कुण्ठता अवश्य है, परन्तु साथ ही दृढ़ता, उदारता, दया, क्षमा, विवेक, धैर्य, रसिकता तथा कलाप्रियता भी हैं । इसलिए उन्हें राम कथा का दूसरा नायक ही मानना चाहिए । गुप्तजी तथा नवीनजी ने यही कार्य किया है । लेकिन गुप्तजी राम भक्ति से अधिक प्रभावित होने के कारण उनके लक्ष्मण के चरित्र का उतना विकास और विस्तार नहीं हो पाया है । नवीनजी ने इस अभाव अमुरेषन की भी पूर्ति की है । उनके लक्ष्मण विवेकशील हैं, ज्ञानी हैं, परम वीर हैं, साथ ही मधुर प्रेमी भी हैं । लक्ष्मण-चरित्र के साथ नवीनजी ने ही सर्वाधिक न्यायकिया है ।

भरत

अधिकांश राम काव्य पुत्र कैकेयी पुत्र भरत का अत्यन्त त्यागशील चरित्र प्रस्तुत करते हैं । उनका चरित्र त्याग की उज्ज्वल रश्मियों से आलोकित है । धर्मनिष्ठा में वे राम से भी आगे हैं । अग्रज राम के प्रति उनका जो प्रेम है वह हर तरह से श्लाघनीय है । पौराणिक राम काव्यों में उनका चरित्र भ्रातृप्रेम, त्याग, सरलता आदि सद्गुणों से देदीप्यमान है । रामायण से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी उनका आदर्श चरित्र अभिव्यक्त हुआ है । एक कदम आगे बढ़कर बलदेवप्रसाद मिश्र ने उनके नायकत्व पर बल देकर "साकेत-सन्त" की रचना की है । उन्होंने वर्तमान युग के अशान्त और अंधकारमय वातावरण में भारतीय संस्कृति के पुनीत और पवित्र भरत के आदर्श जीवन को प्रस्तुत करके जनजीवन का उद्धार करना चाहा । इसके संबन्ध में

नवीन रूप

सरलता एवं कोमलता

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के लक्ष्मण चरित्र की एक नवीन विशेषता है सरलता एवं कोमलता । प्राचीन काव्यों में लक्ष्मण का उग्र गंभीर व्यक्तित्व मात्र झलकता है । उनके नरम कोमल व्यक्तित्व को दिखाने का परिश्रम किसी भी पौराणिक कवि ने नहीं किया है । सबसे पहले इस कार्य में गुप्तजी ने ही लेखनी उठायी है । उनके लक्ष्मण गंभीर होते हुए भी संवेदनशील अवश्य हैं । वे प्रेमी पति और ललित कला के प्रशंसक हैं । उनके आदर्श सेवा-व्रत के साथ साथ उनका दांपत्य प्रेम भी इस काव्य में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है । "साकेत" का प्रथम सर्ग इसका सुन्दर सबूत है । वे अपनी पत्नी के साथ प्रेम संलाप में लगे रहते हैं । प्रिया के साथ प्रेम संलाप में लगे हुए लक्ष्मण गुप्तजी की नूतन कल्पना का परिणाम है । सौमित्र ने कहा कि -

"तुम रहो मेरी हृदय देवी सदा
मैं तुम्हारा हूँ प्रणयसेवी सदा[1] ।"

इसी प्रकार "साकेत" के लक्ष्मण ललित कला के आचार्य भी हैं । उर्मिला द्वारा खींचे गए अभिषेक के चित्र से वे मुग्ध हो जाते हैं और कुशल आचार्य के रूप में उसकेलिए आवश्यक सुधार सुझाव भी दे देते हैं[2] । नवीन जी के "उर्मिला" काव्य के लक्ष्मण एक आदर्श आधुनिक पति हैं । नवीन जी ने वन जाने के पहले लक्ष्मण-उर्मिला, दोनों को एकांत मिलन का अवसर दिया है । यहाँ लक्ष्मण अपनी पत्नी से पूछने के बाद और उसे वन जाने की आवश्यकता

1• साकेत - पृ•27
2• वही - पृ•31

समझाने के बाद ही वन-यात्रा केलिए उद्यत होते हैं[1]   वे अन्त प्रभात में अपनी पत्नी उर्मिला को राजमाताओं की देखभाल करने का उपदेश देते हैं[2] ।
चौदह वर्ष की तपस्या के पश्चात् "उर्मिला" के लक्ष्मण का प्रेम स्थूल से सूक्ष्म धरातल तक पहुँचा जाता है -

"अब तो केवल शुद्ध प्रेम का ध्यान योग मय ज्ञान हुआ ।"

इस काव्य में लक्ष्मण का प्रेम ऐन्द्रिय से अतीन्द्रिय और पार्थिव से अपार्थिव हो जाता है ।

हास-परिहास

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के लक्ष्मण के चरित्र को कवि ने प्रेम की गंभीरता के साथ साथ शुद्ध हास से भी संजोया है । "साकेत", "पंचवटी", और उर्मिला में लक्ष्मण को देवर के रूप में देवर-भाभी के वार्तालाप में संलग्न रहते दिखाया गया है । उनकी इस विशेषता के कारण वनवास भी उनकेलिए एक प्रकार का परिहास बन जाता है[3] । वे बिना संकोच के भाभी के साथ हास परिहास में लगे रहते हैं । उनकी यह प्रवृत्ति बिलकुल आधुनिक है क्योंकि रामायण तथा अन्य परवर्ती काव्यों में लक्ष्मणकेलिए यह प्रवृत्ति बिलकुल अपरिचित है । गुप्तजी मर्यादावादी कवि होने के कारण उनके द्वारा चित्रित देवर-भाभी का हास परिहास भी बिलकुल शिष्ठ और मर्यादित है । "राम-राज्य", "साकेत-सन्त" आदि काव्यों में कवि ने लक्ष्मण के हास-परिहास पूर्ण जीवन का चित्रण करने केलिए स्थान नहीं छोड़ निकाला है ।

---

1. उर्मिला - पृ.195
2. वही - पृ.600
3. साकेत - पृ.116-117

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र के विश्लेषण करने से यह ज्ञात हो जाता है कि वे राम-काव्य के एक सशक्त पात्र हैं । पौराणिक काव्यों में उनका गंभीर व्यक्तित्व मात्र झलकता है तो खड़ीबोली के कवियों ने उन्हें गंभीरता के साथ साथ सरस कोमल युवक का भी पद दे दिया है । पुरुषोत्तम राम में प्राप्त सभी गुण आधुनिक लक्ष्मण में भी देखे जाते हैं । उनमें कुछ उग्रता तथा कुण्ठता अवश्य है, परन्तु साथ ही दृढ़ता, उदारता, दया, क्षमा, विवेक, धैर्य, रसिकता तथा कलाप्रियता भी है । इसलिए उन्हें राम कथा का दूसरा नायक ही मानना चाहिए । गुप्तजी तथा नवीनजी ने यही कार्य किया है । लेकिन गुप्तजी राम भक्ति से अधिक प्रभावित होने के कारण उनके लक्ष्मण के चरित्र का उतना विकास और विस्तार नहीं हो पाया है । नवीनजी ने इस अपेक्षा अनुरेषण की भी पूर्ति की है । उनके लक्ष्मण विवेकशील हैं, ज्ञानी हैं, परम वीर हैं, साथ ही मधुर प्रेमी भी हैं । लक्ष्मण-चरित्र के साथ नवीनजी ने ही सर्वाधिक न्यायकिया है ।

भरत

अधिकांश राम काव्य कुल कैकेयी पुत्र भरत का अत्यन्त त्यागशील चरित्र प्रस्तुत करते हैं । उनका चरित्र त्याग की उज्ज्वल रश्मियों से आलोकित है । धर्मनिष्ठा में वे राम से भी आगे हैं । अग्रज राम के प्रति उनका जो प्रेम है वह हर तरह से श्लाघनीय है । पौराणिक राम काव्यों में उनका चरित्र भ्रातृप्रेम, त्याग, सरलता आदि सद्गुणों से देदीप्यमान है । रामायण से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी उनका आदर्श चरित्र अभिव्यक्त हुआ है । एक कदम आगे बढ़कर बलदेवप्रसाद मिश्र ने उनके नायकत्व पर बल देकर "साकेत-सन्त" की रचना की है । उन्होंने वर्तमान युग के अशान्त और अंधकारमय वातावरण में भारतीय संस्कृति के पुनीत और पवित्र भरत के आदर्श जीवन को प्रस्तुत करके जनजीवन का उद्धार करना चाहा । इसके संबन्ध में

स्वयं कवि ने कहा है -

"शान्ति तज क्रान्ति का बटोही बना विश्व जब
सामग्री समिधा में विकल बिलखाता है
तब भावना में भारतीयता का भव्य रूप
भरकर भारत भरत गुण गाता है[1] ।"

"साकेत-सन्त" में कवि ने भरत के चरित्र को, परंपरागत गुणों के अलावा उनका स्नेही रूप, कर्तव्यपरायणता, सेवा भावना, आत्म तेज आदि नवीन गुणों से भी संजोया है । इसके अलावा कवि ने मनोवैज्ञानिकता का सहारा लेकर आत्मग्लानिपूर्ण भरत का जो चित्र खींचा है वह हृदयस्पर्शी है । भरत के चरित्र की उल्लेखनीय विशेषताएं निम्नलिखित है -

धर्मनिष्ठा और त्याग

भरत के चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनकी अभूतपूर्व धर्मनिष्ठा और त्याग है । इन अनुपम गुणों ने उन्हें अमर बना दिया है । भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू धर्म के अनुसार राज्य तो ज्येष्ठ पुत्र को मिलता है । लेकिन कैकेयी राज्याधिकार भरत को दिला देती है । इस अधार्मिक वैभव को स्वीकारने केलिए भरत की धर्मनिष्ठा तैयार नहीं होती । वे राज्य को ठुकरा देते हैं[2] । माता कैकेयी की भर्त्सना करने में वे तनिक भी हिचकते नहीं[3] । चित्रकूट जाकर राम को लौटा लाने का खूब परिश्रम भी करते हैं । इस कार्य में भी असफल होने पर वे राम के प्रतिनिधि के रूप में राज्यभार संभालते हैं[4] । साकेत सन्त में भरत के इस त्याग और धर्मनिष्ठा की विशेष

---

1. साकेत सन्त - उपक्रम - पृ.17
2. वा.रा. अयो. सर्ग 73
3. वही - सर्ग 74
4. वही - सर्ग 102,115

अभिव्यक्ति हुई है । उनके इस अद्भुतपूर्व त्याग के सामने राम भी नतमस्तक होकर उनकी प्रशंसा करते हैं -

आज भरत खोकर भी जीते,
और मैं जीतकर भी हारा ।[1]

साकेत-सन्त के भरत माँ के द्वारा अपने को राज्याधिकारी घोषित किये जाने पर माँ पर आक्रोश प्रकट करते हैं ।[2] वे माता-कौसल्या से सब पापों केलिए क्षमा याचना करते हैं, फिर भी उनकी धर्मभावना उन्हें शान्ति नहीं देती । वसिष्ठ आदि महामुनियों द्वारा बहुत बार समझाने पर भी वे इस ओर शान्त नहीं होते । उनकी इस अनुपम धर्म भावना से मुग्ध होकर वसिष्ठ मुनि उनकी प्रशंसा करते हैं ।[3] अन्त में चित्रकूट जाकर प्रभु को लौटाने का प्रयत्न करते हैं, इस कार्य में भी असफल होने पर वे उनके चौदह वर्षों तक राज्य भार संभालने का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर ले लेते हैं और सन्यासी का जीवन बिताते हुए कर्तव्य निर्वहण करते हैं ।[4] 'साकेत' में भरत की इस मूर्ति का सबसे महनीय चित्र गुप्तजी ने उपस्थित किया है । इस काव्य में भरत के चरित्र के विकास केलिए बहुत कम समय ही मिल जाता है, फिर भी अधर्म पर आक्रोश करनेवाले भरत का चित्र गुप्तजी ने खींचा है ।[5] परंपरागत होने पर भी गुप्तजी ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से भरत के त्याग का चित्र उतारा है । वे अपनी माँ की कुटिल करनी केलिए कौसल्या से क्षमायाचना करते हैं । अपने इसी दोष के प्रशमन केलिए वे चित्रकूट तक चले जाते हैं जहाँ पर उनकी मानसिक पीड़ा चरम सीमा पर पहुँच जाती है ।[6]

---

1. साकेत सन्त - पृ. 180
2. वही - पृ. 47
3. वही - पृ. 72
4. वही - पृ. 178
5. वही - पृ. 156
6. वही - पृ. 194

गुप्तजी के भरत का यह चित्र सर्वथा नवीन है जो बाद में बलदेवप्रसाद मिश्र जी को भी प्रेरणा प्रदान करता है । "राम-राज्य", "उर्मिला" आदि काव्यों में भरत-चरित्र की विशेष महत्ता न होने पर भी इन काव्यों में भी उनकी धर्मभावना झलकती है । "रामराज्य" के राम भी धर्मभावना में अपने को भरत के सामने नगण्य घोषित करते हैं -

भरत मुझसे बढ़कर बन्धु । धर्म में और त्याग में आप[1] ।"

<u>भ्रातृप्रेम</u>

भरत के चरित्र की और उल्लेखनीय विशेषता है उनका भ्रातृप्रेम । भरत को अपने अग्रज राम के प्रति अपार स्नेह और भक्ति है । अपने भाई के अधिकार की सुरक्षा के लिए वे अपने लिए प्राप्त राज्य को ठुकरा देते हैं । वाल्मीकि से लेकर खड़ीबोली के सभी कवियों ने भी उनके इस गुण पर प्रकाश डाला है । वाल्मीकि के भरत मातुल गृह से लौटने पर राम के वनवास की बात सुनते हैं और वे अत्यन्त ~~दुःख~~ व्याकुल हो जाते हैं । यहाँ के भरत के मन में पहले यह शंका होती है कि राम के किस कुकृत्य से क्रोधित होकर पिता ने उन्हें वन भेजा है[2] । राम के चरित्र के प्रति इस प्रकार की शंका का आना वाल्मीकि के भरत के चरित्र की दुर्बलता का परिचायक है । लेकिन खड़ीबोली के राम कवियों ने उनके चरित्र को इस दोष से पूर्णतः विमुक्त कर दिया है । किसी भी आधुनिक काव्य में भरत राम के सुशील चरित्र के प्रति शंकालु नहीं है । "साकेत" में भरत का भ्रातृप्रेम इतना सुदृढ है कि वे राम वनगमन की बात सुनने पर हतप्रभ हो जाते हैं और सचेत होने पर वे माँ की भर्त्सना तक करते हैं[3] । इससे भी उनके मन को चैन नहीं मिलता ।

---

1. राम राज्य - पृ.52
2. वा.रा. अयो. सर्ग श्लो. 7,8
3. साकेत - पृ.156

वे राजपद ठुकरा करके भाई की खोज में वन चले जाते हैं । राम को देखकर उनका भ्रातृप्रेम तरंगायित हो उठता है । राम के समक्ष भरत जिन शब्दों में अपने मर्माहत भावों को रखते हैं, उससे उनके स्नेहपूर्ण हृदय पूर्ण रूप से उद्घाटित होता है । "साकेत-सन्त" में भी भरत के भ्रातृप्रेम की उज्ज्वलता की झलक मिल जाती है । राम वनगमन के समाचार के सुनने मात्र से वे मूर्छित हो जाते हैं[1] । परंपरागत होने पर भी मिश्र जी ने उनके भ्रातृप्रेम को नवीनता से संजोया है । उन्होंने भरत की आत्मग्लानि की जो मनोवैज्ञानिक व्यंजना की है वह पूर्णत: नवीन ही है । गुप्तजी ने पहले इसका चित्रणकिया है, लेकिन भरत की ग्लानिपूर्ण मनोदशा का सबसे विशद, स्वाभाविक वर्णन "साकेत-सन्त" में ही मिल जाता है । निम्नलिखित पंक्तियां उनकी विह्वल मनोदशा का सुन्दरतम संकेत हैं -

"मेरे कारण ही [illegible] राम ने छोड़ा,
मेरे कारण तनु बन्धु पिता ने छोड़ा,
मेरे कारण यह दशा तुम्हारी माता,
दानव हूँ दानव विपुल व्यथा दाता ।"[2]

राम जब अपने [illegible] अरण्यवास की आवश्यकता समझाते हैं तब वे आज्ञाकारी अनुज बनकर राज्यभार अपने कन्धों पर लेने केलिए तैयार होते हैं । मिश्रजी ने इसका सुन्दर विशद चित्र खींचा है[3] ।

वाल्मीकि रामायण से लेकर खड़ीबोली के सभी काव्यों में राम ने भरत के अभूतपूर्व भ्रातृप्रेम, त्याग, धर्मनिष्ठा आदि से रोमांचित होकर उनकी प्रशंसा की है ।

1· साकेत सन्त - पृ·47
2· वही - पृ·51
3· वही - पृ·176-177

कर्मण्यता

श्री बलदेवप्रसाद मिश्र के अलावा किसी भी पौराणिक या आधुनिक कवि ने भरत की कर्मण्यता की चर्चा करने का प्रयत्न नहीं किया है। मिश्रजी के भरत का चरित्र निस्पृहता के साथ साथ कर्मण्यता का भी प्रतिमूर्ति है। वे अपने भ्राता राम की आज्ञा को शिरोधार्य करके उनके राज्य को प्रगतिपथ की ओर अग्रसर कराने का परिश्रम करते हैं और इस कार्य में सफल हो जाते हैं। उन्होंने राम के राजत्व का प्रतिनिधित्व करके राज्य को अच्छी तरह संभाला जिससे प्रभावित होकर प्रजा कहती है - "राजा का सच्चा रूप यही[1]।" भरत ने चित्रकूट से लौटने के बाद ग्राम सुधार को अपना प्रथम लक्ष्य बनाया है। नन्दिग्राम में निवास कर अपने स्वतः स्वीकृत व्रत और अनुष्ठान के साथ वे किस तरह इस कार्य में सफल हुए, यह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। उनकी अष्टायाम चर्या का विवरण वे स्वयं देते हैं। यह उनके चरित्र की कर्मण्यता को पूर्ण रूप से प्रस्फुटित करता है[2]। अपने कठिन तप और कर्मण्यता से वे राम को उनका राज्य ब्याज सहित लौटाने में सफल हो जाते हैं[3]। "साकेत" में भी उनकी त्यागशीलता के साथ साथ उनका क्षात्र तेज देदीप्यमान रहता है। राम-रावण-युद्ध का समाचार पाने पर वे क्षत्रियोचित गरिमा से युद्ध क्षेत्र जाने के लिए उद्यत होते हैं। यह भी खड़ीबोली के भरत की एक नवीन विशेषता है जो उनके चरित्र को अधिक उदात्त बना देती है।

संपूर्ण भरत के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भरत के साथ सबसे अधिक न्याय पं॰बलदेवप्रसाद मिश्र ने किया है। उन्होंने भरत के संपूर्ण चरित्र का उद्घाटन किया है। उनके भरत मात्र परंपरागत भरत के जैसे निस्पृह, त्यागी या भ्रातृप्रेमी ही नहीं, बल्कि वे सच्चे प्रेमी हैं, कुशल राजनीतिज्ञ हैं तथा प्रकाण्ड पण्डित भी हैं।

---

1. साकेत सन्त - पृ॰187
2. वही कथानक 5 पृ॰15
3. वही - पृ॰193

माण्डवी के साथ प्रेम संलाप में लगे भरत का चित्र कवि ने "साकेत-सन्त" के प्रथम सर्ग में ही खींचा है। उनके मर्यादित व्यक्तित्व के अनुकूल उनका प्रेमालाप भी शिष्टता के अनुकूल रहा है। "साकेत" में यद्यपि भरत के चरित्र के विकास केलिए बहुत कम अवकाश ही मिल जाता है, फिर भी गुप्तजी ने मनोविश्लेषणात्मक ढंग से भरत के "परंपरागत रूप को नवीन धरातल पर प्रस्तुत किया है। "उर्मिला", "रामराज्य" आदि काव्यों में भरत के चरित्र का उतना विकास नहीं दिखाया गया है।

रावण

रामायण के प्रतिनायक रावण के चरित्र की विशेषता यह है कि उनका चरित्र दोनों सद् और असद् पात्र की भूमिका अदा करते रहे हैं। उनकी विद्वत्ता और वाकपटुता के द्योतक अनेक प्रसंग रामायण में मिल जाते हैं। उनमें अभिमानवीयता के गुण भी देखे जाते हैं। रामायण के रावण का वैभव उन्हें धरती का ही नहीं स्वर्ग का भी कुबेर कहलाने लायक है। शौर्य और पराक्रम में भी वे अद्वितीय हैं। स्वयं राम ने तथा उनके विश्वस्त दूत हनुमान ने भी उनके अतुलनीय पराक्रम की प्रशंसा की है। राक्षसेन्द्र, लंकेश्वर, राक्षस मनोनन्दन, निशाचरेन्द्र आदि अनेक आदरार्थक शब्दों से ही वाल्मीकि उनका संबोधन करते हैं। लेकिन उनके चरित्र का एक दूसरा पक्ष भी है। अहंकार, कामुकता, छल, क्रोध आदि अवगुणों से भी वे पूर्ण रूप से दूषित हैं। रामायण के रावण के इस द्विविध व्यक्तित्व के कारण खड़ीबोली के कवियों ने युगानुकूल अपनी कल्पनानुसार उन्हें अपनाया है। खड़ीबोली के अधिकांश राम कवियों ने भी रावण के चरित्र के संबन्ध में एक मिश्रणात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया है। एक ओर वे रावण के पराक्रम, तपश्चर्या, पाण्डित्य आदि महद् गुणों को दिखाते हैं तो दूसरी ओर उनकी अतिशय काम वासना, क्रोध, घमण्ड आदि हेय स्वभाव का परिचय देते हैं।

रावण-चरित्र का सद् पक्ष

वाल्मीकि ने रावण के रूप, तेज, बल, पराक्रम आदि का निष्पक्ष तथा सहृदयता से युक्त वर्णन किया है[1]। उन्होंने रावण के दिग्विजय का भी विस्तार से वर्णन किया है। राज्य पाने केलिए, बढाने केलिए तथा उसे टिकाये रखने केलिए रावण ने अनेक राजाओं से युद्ध किया है। राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में भी विभिन्न प्रकार के द्वन्द्व युद्ध, अस्त्र-युद्ध, शस्त्र युद्ध सभी में उसका युद्ध कौशल अत्यन्त सराहनीय है। गुप्तजी ने भी तेजशाली राजा रावण का चित्र प्रस्तुत किया है[2]। "उर्मिला" के राम रावण की महिमा जानते हैं और उसकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं -

सब जानते हैं कि बड़े थे,
वे पक्के अपनी धुन के[3]। "राम-राज्य" में रावण की असामान्य वीरता और युद्धकुशलता का सराहनीय विवरण प्रस्तुत किया गया है[4]

कर्मण्यता

"उर्मिला" काव्य में नवीन जी ने रावण के चरित्र की कर्मण्यता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। उनके अनुसार रावणत्व में अन्वेषण की अथाह उड़ान निहित है जो मानस दिग्मण्डल को विकसित करने केलिए प्रेरणादायी है। रावण हमेशा कर्म में लीन रहते हैं। उनकी यह कर्मण्यता प्रकृति तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने केलिए तथा प्रगति पथ पर अग्रसर होने केलिए बहुत आवश्यक है[5]। इसलिए विभीषण इतने तक की महत्वाकांक्षा रखते।

---

1. वा॰रा॰ सुन्दर॰सर्ग॰ 49 श्लो॰17
2. साकेत - पृ॰342
3. उर्मिला- पृ॰542
4. राम-राज्य - पृ॰104
5. उर्मिला - पृ॰581

जग सदा रावण का आभारी रहेगा -

> इसीलिए जग सदा रहेगा,
> मम अग्रज का सदा कृतज्ञ ।

रावण के चरित्र विश्लेषण के प्रसंग में अनेक विद्वानों ने उनके चरित्र की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है जहाँ पर रावण को बुद्धिमान, ज्ञानी, पण्डित, विचारक तथा मानवता के उच्च और महान प्रतिरूप माना गया है[1] । रावण की महत्ता को उद्घोषित करने के लिए श्री हरदयालसिंह ने ब्रजभाषा में "रावण" महाकाव्य तक लिखा है । इस काव्य में उन्होंने रावण के सब दोषों को धोने का स्तुत्य प्रयास किया है । उनके रावण कुशल राजनीतिज्ञ हैं और राम-रावण के विरोध के हेतु विशुद्ध राजनैतिक माना गया है ।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि आधुनिक काल के कवियों ने रावण के महद् पक्ष को चित्रित करके उनके चरित्र को ऊपर उठाने का परिश्रम किया है ।

रावण चरित्र का असद् पक्ष

रावण-चरित्र के असद् पक्ष की बहुत चर्चा वाल्मीकि ने की है । वाल्मीकि के अहंकारी और घमण्डी रावण ने उग्र तपश्चर्या से प्राप्त शक्ति के बल पर सारे विश्व पर अधिकार जमाने तथा देवताओं से प्रतिशोध लेने तक की महत्वाकांक्षा की है । स्वयं रावण अपने आतंक का विवरण देते हुए सीता से स्वप्रभुत्व का परिचय देते हैं कि जैसे प्रजा मौत के भय से सदा डरती रहती है, उसी प्रकार देवता, गन्धर्व, पिशाच, पशु-पक्षी और नाग सदा जिससे भयभीत होकर भागते हैं, वही रावण मैं हूँ[2] । उनके अहंकार और नीच कामवासना ने उन्हें नाश के कगार पर पहुँचा दिया है । अनेक सुन्दरियाँ

---

1. आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में रावण-नर्मदाप्रसाद मिश्र 'नर्म'
2. वा॰रा॰अरण्य - सर्ग 481, श्लो॰3

रावण ने अपने बाहुबल से जीता है[1]। वाल्मीकि के रावण ने सीता का अपहरण प्रतिशोध के रूप में किया है। गुप्तजी ने भी उस परंपरागत रावण को उसी रूप में ही अपनाया है। यहाँ भी रावण अपनी प्रभुता के सामने राम को तुच्छ घोषित करते हुए सीता जी को वश में करने का असफल प्रयत्न करते हैं[2]। "राम राज्य" में भी कवि ने रावण के अत्याचारी रूप का विशद चित्र खींचा है[3]। "उर्मिला" के कवि रावण को साम्राज्यवादी घोषित करते हुए उसकी हत्या की आवश्यकता पर बल देते हैं[4]।

रावण के चरित्र का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रावण महान शक्तिशाली और वैज्ञानिक शक्ति के पुरस्कर्ता हैं। लेकिन अपनी असीम शक्ति का उन्होंने मानवीय शोषण और उत्पीड़न केलिए दुरुपयोग किया। उनमें कृ।राचार की अतिशायित दृष्टि देखी जाती है। अपने चरित्र के इस गुण ने उन्हें कहीं का न रख छोड़ा, वे दुष्प्रवृत्ति के प्रतीक बन गए। यदि वे अपनी कुप्रवृत्तियों में संयम रखते तो वे महापुरुष के रूप में सामने आ जाते, वे दुष्टता की प्रतीकात्मकता से मुक्त होते। सन् 1960 के बाद की कविताओं में रावण के चरित्र का सत् पक्ष असत् पक्ष से अधिक उभरा हुआ है। लेकिन विषय की सीमा को देखते हुए उसका विवेचन अप्रासंगिक रहने के कारण उसके वर्णन का प्रयास नहीं किया गया है।

हनुमान

वाल्मीकि रामायण में वानर श्रेष्ठ हनुमान के चरित्र को प्रमुख स्थान दिया गया है। वाल्मीकि ने उनके चरित्र का स्वतंत्र विकास उपस्थित किया है। रामायण में प्रमुख रूप से वे सेवक का आदर्श रूप ही उपस्थित करते हैं। सुवर्णमय सुमेरु पर्वत के राजा केसरी तथा उनकी प्रियतमा

---

1. वा॰रा॰ उत्तर काण्ड सं॰24
2. साकेत - पृ॰343
3. रामराज्य - पृ॰106
4. उर्मिला - पृ॰553

अंजना से हनुमान का जन्म वायुदेवता की कृपा से हुआ है । रामायण में उनका महान चरित्र शौर्य, दक्षता, बल, पराक्रम, बुद्धिमत्ता, राजनीतिज्ञता, सेवा-तत्परता आदि महनीय गुणों से देदीप्यमान है । यद्यपि खड़ीबोली के कवियों ने उनके चरित्र का स्वतन्त्र विकास नहीं उपस्थित किया है, तो भी रामायण के एक प्रमुख पात्र होने के कारण उनके चरित्र का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

आदर्श सेवक और राम के अनन्य भक्त

हनुमान के चरित्र की असामान्य बुद्धिमत्ता, वाक्पटुता तथा सेवातत्परता से राम उन पर आकृष्ट हो जाते हैं । वे असामान्य कुशलता से राम के सेवा-कार्य में संलग्न रहते हैं । सीता की खोज करते समय वे असामान्य वीरता और दक्षता से कार्य करते हैं और इस कार्य में पूर्ण रूप से सफल भी हो जाते हैं । राम के अनन्य सेवक के रूप में राम के साथ हनुमान ने भी देवत्व प्राप्त कर लिया है । राम हनुमान की प्रशंसा करते हैं और अपने सब वैभव का मूल उन्हें ही मानते हैं । स्वयं हनुमान अन्त में राम से उनके अविचल भक्त होने का वर माँगते हैं और राम उनकी इच्छा पूर्ति करते हैं । आज भी वे राम के अनन्य भक्त के रूप में विख्यात हैं ।

बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता

रामायण में हनुमान वानर राजा सुग्रीव के अनन्य मित्र और मन्त्री हैं । अपार बुद्धिमत्ता तथा राजनीति कुशलता से वे मन्त्री का अपना दायित्व निभाते हैं । वालि-वध के पश्चात् महारानी तारा को समझाने में उनकी कुशल राजनीतिज्ञता ही कार्य करती है ।[1]

---

1. वा॰रा॰ किष्किन्धा - सर्ग, 21

वीरता और पराक्रम

हनुमान के चरित्र की अनुपम वीरता समुद्र-लंघन,[1] लंका-दहन,[2] सीता-खोज,[3] राम-रावण-युद्ध[4] तथा लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में अभिव्यक्त हुई है । वाल्मीकि ने इन सभी प्रसंगों का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है और उनकी वीरता को पूर्ण रूप से प्रकाशित किया है ।

खड़ीबोली के कवियों ने हनुमान के चरित्र का स्वतंत्र विकास नहीं दिखाया है । 'साकेत' में गुप्तजी ने तथा 'साकेत-सन्त' में मिश्र जी ने कथावस्तु को जोड़ने केलिए उनका उपयोग किया है । इन काव्यों में संजीवनी बूटी लाने केलिए तथा भरत द्वारा आहत होने पर पूरा राम-वृत्तान्त संक्षेप में देनेवाले हनुमान के माध्यम से उनके चरित्र का उल्लेख किया गया है । मात्रा में अधिक विस्तृत न होने पर भी उनके चरित्र की सेवातत्परता, बल-पराक्रम आदि गुण इसके माध्यम से पूर्ण रूप से अभिव्यक्त किए गए हैं । 'राम-राज्य' में भी हनुमान के चरित्र की अनन्य वीरता और सेवातत्परता अभिव्यक्त हो गई है । लंका में निशाचरों द्वारा पकड़े जाने पर वे वीरोचित धैर्य से कहते हैं कि अबला के हरण से रावण नीच बन गए हैं और अपयश के पात्र बन गए हैं ।[5] 'उर्मिला' में हनुमान का चारित्रिक विश्लेषण करने केलिए कवि ने बहुत कम अवकाश ही खोज निकाला है ।

दुर्बलताएं

हनुमान के उच्च चरित्र की कुछ दुर्बलताएं भी रामायण में देखी जाती हैं । अनेक वरों के साथ उन्हें अपने बल के विस्मरण का एक शाप भी

---

1. वा॰रा॰ सुन्दर सर्ग॰1
2. वही सुन्दर सर्ग॰54
3. वही सुन्दर सर्ग॰14
4. वही युद्ध सर्ग॰107
5. रामराज्य - पृ॰92

मिल गया है[1]। इसीलिए वे कभी कभी अत्युत्साह में असंयत होकर कर्तव्याकर्तव्य को भी भूल जाते हैं। रावण-वध का समाचार देने केलिए सीता के पास जानेवाले हनुमान सीता के पास राक्षसियों को देखकर असंयमित हो जाते हैं। इसके अलावा अशोक वाटिका से सीता को बचाने केलिए सारी मर्यादाएं भूलकर अपनी पीठ पर बैठे चले चलने का प्रस्ताव भी रख देते हैं[2]।

हनुमान के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामान्य दुर्बलताओं के बावजूद भी रामायण के हनुमान का चरित्र रामायण का एक सशक्त चरित्र है। वाल्मीकि ने उनके चरित्र का सर्वांगीण विकास प्रस्तुत किया है। खडीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को संक्षेप में ही सजाया है।

विभीषण

रावण का भाई विभीषण रामायण का एक आदर्श चरित्र है। राक्षस होने पर भी वे हमेशा सत्य और धर्म के आराधक हैं। वे राम के अनन्य मित्र हैं। रामायण में उनके चरित्र का सर्वांगीण विकास दिखाया गया है। यद्यपि खडीबोली के राम कवियों ने उनके चरित्र को विशेष महत्ता न दी है तो भी उनके चरित्र की धार्मिकता पर अधिकांश आधुनिक कवि मुग्ध हैं। कतिपय कवियों ने उनके आचरण की गलत व्याख्या प्रस्तुत करके उन्हें देशद्रोही ठहराने का प्रयत्न भी किया है। उनके चरित्र की असाधारण धर्मनिष्ठा तथा मित्रत्व का आदर्श उन्हें अमरवर बना देता है। इसका विश्लेषण आगे किया जाएगा।

---

1. वा० रा० उत्तर० सर्ग ०36,35 श्लो०34,35
2. वही - सु० सर्ग०10, श्लो०

धर्मनिष्ठा

रामायण में विभीषण की धर्मनिष्ठा का उज्ज्वल चित्र खींचा गया है । वे बचपन से ही धर्मात्मा हैं और रावण, कुंभकर्ण जैसे अपने दुराचारी भाईयों से तनिक भी न प्रभावित होते हैं । उनकी प्रखर धर्मनिष्ठा से प्रभावित होकर ब्रह्मदेव ने बिना मांगे उन्हें अमरत्व प्रदान किया है[1]। वे अपने पक्ष के लोग विशेषकर रावण के सत्य और धर्म के मार्ग से विचलित होने पर उन्हें समझाकर धर्म के मार्ग पर लाने का परिश्रम करते हैं[2]। परन्तु इस कार्य में असफल होने पर वे छिपकर या कपटपूर्वक नहीं; खुलकर राम पक्ष में जाकर अन्याय के विरुद्ध हथियार उठाते हैं । विभीषण का यह महान् कार्य हर तरह से श्लाघनीय ही है । खडीबोली के भी अधिकांश कवियों ने उनके सत्य और धर्मयुक्त आचरण पर श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं । "उर्मिला काव्य में कवि ने राम के द्वारा उनकी धर्मनिष्ठा की प्रशंसा करायी है । नवीनजी के राम विभीषण के सद्गुणों से आकृष्ट हो जाते हैं । राम और विभीषण की मैत्री कवि के मत में राजसिक नहीं बल्कि आत्मा और आत्मा के बीच का बन्धन है । दोनों में पाई जानेवाली धर्माभिलाषा उनको एक दूसरे के निकट ला उपस्थित करती है[3]। गुप्तजी के धर्मिष्ठ विभीषण ने रावण को बार बार समझाया पर उन्होंने उलटे देशद्रोही का पद पाया है[4]। एक कदम आगे बढ़कर "राम राज्य" के विभीषण की आदर्शवादिता देखिए -

"बोले तब इस भांति विभीषण, चिंता नहीं मुझे जो मारा,
भ्रात हो, पर तुमसे बढ़कर मुझे कुटुंब देश हित प्यारा,
उसकी रक्षा हेतु मुझे अब न्याय पक्ष अपनाना होगा,
जिन्हें न लाना चाह रहा था, शरण उन्हीं की जाना होगा[5]।"

1· वा·रा· उत्तर· सर्ग 10, श्लो·34-35
2· वही - सर्ग 29, श्लो·17,18,19
3· उर्मिला - पृ·559-560
4· साकेत - पृ·346
5· राम-राज्य - पृ·95

इसके विरुद्ध पं०रामचरित उपाध्याय जी ने उन्हें देशद्रोही घोषित करके उनकी करनी को अत्यन्त निन्दनीय ठहराया है[1]। कवि ने उन्हें पूर्ण रूप से राज्य लोभ से मदमस्त स्वार्थी घोषित किया है। उनका तर्क यह है कि जिस विभीषण ने अब तक रावण के द्वारा किये गए सभी दुष्कर्मों का मौन होकर समर्थन किया है वही विभीषण अब किस कारण से रावण के विरोध में वाणी उठाते हैं[2]।

आदर्श मित्र

विभीषण अन्याय से विरोध करने के लिए सत्य और न्याय के पक्षधर राम का मित्रत्व स्वीकार करते हैं। जब एक बार वे राम का मित्रत्व स्वीकार करते हैं तब से वे सच्चे ईमानदार मित्र के समान राम की सहायता करते हैं। वे राम को रावण और लंका के सब रहस्यों से अवगत कराते हैं[3], सेना और राज्य के सब रहस्य बतलाते हैं, माया युद्धों से सावधान कराते हैं। इन सबके अलावा वे इन्द्रजित और रावण के उन महान यज्ञों को पूरा नहीं होने देते जिनके कारण वे राक्षस अजेय बन जाते हैं और इस प्रकार रावण वध का वास्तविक उपाय भी बतला देते हैं[4]। उनके ये कार्य अत्यन्त श्लाघनीय ही है और राम दल के सभी लोग उनकी मित्रता, सच्चाई, बुद्धिमत्ता, आदि का आदर करते हैं। खड़ीबोली के राम कवियों ने उनके इन मित्रतापूर्ण व्यवहारों को मात्र संकेतों में सजाया, उनका पूरा विकास नहीं दिखाया है। "उर्मिला" काव्य में नवीन जी ने इन सबके अलावा विभीषण के विनयी[5] और कुशल[6] रूप पर भी प्रकाश डाला है।

---

1. रामचन्द्रिका - पृ०75
2. वही - पृ०76
3. वा०रा० युद्ध० सर्ग०19
4. वही० सर्ग 84
5. उर्मिला - पृ०588
6. वही - पृ०583

विभीषण के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि रामायण के इस आदर्श चरित्र पर खड़ीबोली के मात्र रामचरित उपाध्याय जी ने शंका प्रकट की है । यद्यपि उनके चरित्र का सर्वांगीण विकास रामायण में मिल जाता है तो भी नवीनजी ने उनके चरित्र के साथ पूरा न्याय किया है । उनके विभीषण सत्य और धर्म के आराधक होने के साथ साथ अत्यन्त विनयी और कृतज्ञ भी हैं ।

सुग्रीव

रामकथा की प्रासंगिक कथावस्तु के नायक होने के कारण रामायण में सुग्रीव का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है । वे राम के अनन्य मित्र और सखा है । वाल्मीकि ने उनके चरित्र का पूर्ण रूप से विकास किया है । वाल्मीकि के सुग्रीव का चरित्र अनन्य कृतज्ञता, राम भक्ति, युद्ध कुशलता, राजनीतिज्ञता आदि महनीय गुणों से आलोकित है । खड़ीबोली के राम कवियों ने उनके चरित्र के साथ पूरा न्याय नहीं किया है । यद्यपि उन्होंने सुग्रीव का सर्वांगीण चारित्रिक विश्लेषण नहीं किया है तो भी उनके चरित्र की कृतज्ञता और राम भक्ति को उद्घाटित करने का परिश्रम अवश्य किया है । रामायण में प्रमुख पद अलंकृत करनेवाले सुग्रीव का चारित्रिक विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

कृतज्ञता

यह सुग्रीव के चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है । वाल्मीकि ने उनके इस गुण को पूर्ण रूप से उभारने का परिश्रम किया है ।

अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले बालि का अन्त करनेवाले राम के प्रति वे अत्यधिक आभारी हैं। वे राम की सहायता करने में हमेशा संलग्न रहते हैं। सीता की खोज में सुग्रीव ने राम की उल्लेखनीय सहायता की है। इसी प्रकार सुग्रीव और राम की मैत्री इतनी सुदृढ है कि वे राम के शत्रु को अपना शत्रु और राम के मित्र को अपना मित्र मानते हैं। रावण-वध केलिए सुग्रीव का उत्साह, असीम है क्योंकि राम की पत्नी सीता का अपहरण करनेवाले रावण के वे सदा के विरोधी हैं। खडीबोली के कवियों ने भी उनके इस चारित्रिक पक्ष को उभारकर सामने रखने का परिश्रम किया है। केवल रामचरित उपाध्याय जी ने ही विभीषण के समान सुग्रीव के चरित्र पर भी लांछन लगाया है। उनके अनुसार सुग्रीव ने राम केलिए जो उपकार किया है, वह निस्वार्थ भावना से नहीं है, केवल प्रत्युपकार से है। उनके स्वार्थ पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं -

> यश अपयश या पाप-पुण्य का तनिक न डर था,
> अपने सुख केलिए अनय में तू तत्पर था[1]। इसके विरुद्ध

गुप्तजी ने कहीं भी उनको स्वार्थी घोषित करने का परिश्रम किया है। डॉ॰ बलदेवप्रसाद मिश्र ने भी नवीन कल्पना के सहारे सुग्रीव के चरित्र के सद्पक्ष को उभारने का परिश्रम ही किया है[2]।

युद्धकुशलता और राजनीतिज्ञता

वाल्मीकि ने सुग्रीव की युद्धकुशलता का भी सांगोपांग चित्र प्रस्तुत किया है। उनकी अनन्य युद्धकुशलता रावण के तीन सेनापति कुंभ, निकुंभ, तथा महोदर को यम-सदन पहुँचाने में सफल होती है। वे कुशल राजनीतिज्ञ हैं और अत्यन्त आदर्श ढंग से सैन्य संचालन करते हैं।

---

1. रामचन्द्रिका - पृ॰53
2. राम-राज्य - पृ॰81

खड़ीबोली के कवियों को उनके इस चारित्रिक पक्ष को इतने विस्तृत रूप में अभिव्यक्त करने का अवकाश नहीं मिला है, उन्होंने इसका उल्लेख मात्र किया है ।

<u>दुर्बलताएं</u>

वाल्मीकि ने सुग्रीव के चरित्र की दुर्लभ मानवीय कमज़ोरियों पर भी प्रकाश डाला है । राज्य प्राप्ति के बाद वाल्मीकि ने सुग्रीव के विलासी तथा कामुक रूप को भी प्रदर्शित किया है ।

सुग्रीव के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि खड़ीबोली के अधिकांश कवि वाल्मीकि के समान सुग्रीव के चरित्र का सर्वांगीण विकास न दिखाने पर भी रामचरित चिन्तामणि के अलावा अन्य कवि सुग्रीव के प्रमुख चारित्रिक पक्ष कृतज्ञता तथा उनकी रामभक्ति को उद्घाटित करने में सफल हुए हैं ।

<u>दशरथ</u>

रामायण में दशरथ का चरित्र एक आदर्श राजा एवं पिता के रूप में ही सामने आता है । लेकिन ऐसा कहना असंगत न होगा कि उनका चरित्र मानव सहज कमियों से युक्त है । आदर्श गुणों के होते हुए भी उनकी कामासक्ति का अतिरेक उन्हें कैकेयी के जाल में फंसा देता है । यहाँ पर उनके आदर्शात्मक व्यक्तित्व को आघात सा लग जाता है । सत्य-प्रेम, पुत्र-प्रेम तथा पत्नी-प्रेम में मग्न, किन्तु किंकर्तव्यविमूढ़ दशरथ का भावुक हृदयस्पर्शी चित्र ही

प्रथम रामायण में उतारा गया है । भावना और कर्तव्य का इतना तीव्र संघर्ष अन्य किसी के चरित्र में नहीं देखा जाता । रामायण के अनुकूल, खड़ीबोली के कवियों ने भी दशरथ के इस संघर्ष का संक्षिप्त किन्तु जीता जागता चित्र ही उपस्थित किया है । इसका विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

आदर्श राजा

वाल्मीकि रामायण के दशरथ एक आदर्श राजा हैं । उन्होंने राजा दशरथ के कलाप्रिय, स्थापत्य एवं शिल्पकलाप्रवीण, वीरत्व, प्रजाहितदक्ष, तथा कर्तव्यनिरत रूप का जो उद्घाटन किया है वह अत्यन्त अनुपम है[1] । वाल्मीकि के अनुसार गुप्तजी तथा खड़ीबोली के अन्य कवियों ने भी राम के राज्याभिषेक प्रसंग पर दशरथ के इन गुणों पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला है । गुप्तजी के आदर्श राजा दशरथ को देखिए -

> है अयोध्या अवनि की अमरावती,
> इन्द्र है दशरथ विदित वीरव्रती
> नीतियों के साथ रहती रीतियाँ,
> पूर्ण है राजा प्रजा की प्रीतियाँ[2] ।

पुत्रप्रेम

राजा दशरथ को अपने चारों पुत्र प्रिय हैं, पर ज्येष्ठ पुत्र राम उनके लिए सर्वाधिक प्रिय है । वे किसी भी स्थिति में राम को अपने से अलग नहीं कर सकते । रामायण में बालकाण्ड में ही उनका यह अतिशयित पुत्रप्रेम अभिव्यक्त हुआ है । याग रक्षा के लिए विश्वामित्र के द्वारा

---

1. वा॰रा॰ बाल॰सर्ग 5, श्लो॰9 सर्ग 6, श्लो॰2-5,27
2. साकेत - पृ॰22-24

राम-लक्ष्मण को कुछ दिनों केलिए माँगा जाने पर वे मूर्छित हो जाते हैं[1]। राम राज्याभिषेक के प्रसंग पर उनका पुत्रप्रेम अपनी चरम सीमा पर प्रकट होता है। गुप्तजी ने भी दशरथ के पुत्रप्रेम का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। "साकेत" के दशरथ प्रेमवेग प्रकारेण वनवास को रोकना चाहते हैं। वे लक्ष्मण से अपने को बन्दी बनाकर राम-राज्याभिषेक करने की प्रार्थना करते हैं -

मुझे बन्दी बनाकर धीरता से,
करो अभिषेक साग्रह वीरता से।"

इसी प्रकार पुत्रवत्सल पिता राम को वनवास का आदेश देने के बाद उसकी कठोरता और असहनीयता स्वयं समझकर आदेश का उल्लंघन करने की प्रेरणा देते हैं। उनकी पुत्रवत्सलता की गहराई यहाँ पर आँकी जा सकती है। "रामचरित चिन्तामणि" में भी कैकेयी को वश में करना असंभाव्य मानकर उनकी अगाध पुत्रवत्सलता उन्हें यहाँ तक कहने केलिए प्रेरित करती है कि -

हे राम, मुझको मार कर जीत करके आज ही,
मम राज्य को तुम छीन लो, वन में वृथा जाओ नहीं,
मैं कामिनी-वश इस बुढ़ापे में बड़े दिक् हो गया[2]।

दशरथ अपनी दुर्बलता भलीभाँति जानते हैं। अपनी ग्लानि को मिटाने में वे असमर्थ होते हैं और अन्त में पश्चाताप की अग्नि में प्राण त्याग कर देते हैं। खड़ीबोली के अन्य राम काव्यों में भी दशरथ की पुत्रवत्सलता का विशद वर्णन न मिलने पर भी इसका संकेत अवश्य मिल जाता है।

---

1. वा॰रा॰ बाल॰ सर्ग॰ 19, श्लो॰21,22
2. रामचरित चिन्तामणि, पृ॰86

सत्यप्रेम या प्रतिज्ञापालन

दशरथ के निर्मल पुत्रप्रेम से अधिक उनके सत्यप्रेम या प्रतिज्ञापालन ही उनके चरित्र को आकर्षक बना देता है । कर्तव्यपूर्ति की बलिवेदी पर अपने जीवन सर्वस्व का बलिदान करके उन्होंने अपने चरित्र को अमरता बना दिया है । विश्वामित्र के कार्य को पूर्ण करने वचनबद्ध होने के कारण पितृसुलभ वत्सलता के कारण आनाकानी करने पर भी वे राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज देते हैं[1] । इसीप्रकार कैकेयी को दिये वचनों का निर्वाह करने केलिए वे प्राणतुल्य राम को वनवास देने केलिए मजबूर हो जाते हैं । खड़ीबोली के राम कवियों ने भी दशरथ के इसी उज्ज्वल पक्ष को उभारकर सामने रखा है । खड़ीबोली के कवियों ने प्रतिज्ञापालन करने केलिए कठोर आचरण करनेवाले दशरथ के चरित्र को और भी पवित्र बनाने केलिए उनके पश्चाताप विवश रूप को भी दिखाया है । गुप्तजी के दशरथ उर्मिला को सान्त्वना देते हुए कहते हैं -

मैं ही अनर्थ का हेतु हुआ,
रविकुल में सचमुच केतु हुआ[2] ।

विषय लंपटता

दशरथ के चरित्र की कामुकता के अनेक प्रमाण रामायण में मिल जाते हैं । अपनी तीन पत्नियों में सबसे अधिक प्रेम वे तरुण सुन्दरी कैकेयी पर रखते हैं । उनकी यही बड़ी लंपटता उन्हें कैकेयी के जाल में फंसा देती है । कैकेयी पुत्र को राज्याभिषिक्त करने का प्रण उन्होंने पहले ही कैकेयी के पिता को दिया है । अत्यन्त बलशाली तथा पराक्रमी होने पर भी कैकेयी के

---

1. वा॰रा॰ बाल॰ सर्ग॰22
2. साकेत - पृ॰134

सम्मुख वे हतप्रभ तथा भीरु हैं । 'साकेत' में लक्ष्मण ने पिता की स्त्री लंपटता की खुलकर भर्त्सना भी की है ।

बने इस दस्युजा के दास हैं जो,
इसी से दे रहे वनवास हैं जो[1]।

खड़ीबोली के अन्य राम कवियों ने भी दशरथ की इन दुर्बलताओं को केवल संकेतों में बताया है ।

दशरथ के चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि रामायण के अन्य पात्रों के चरित्रों से भिन्न उनका चरित्र मानवीय दुर्बलताओं से युक्त एक यथार्थ चरित्र है । वाल्मीकि ने उनके चरित्र का स्वाभाविक सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया है । खड़ीबोली के राम कवियों ने भी उनके चरित्र में अधिक हेर-फेर नहीं किया है, वाल्मीकि के अनुकूल ही उनके चरित्र को प्रस्तुत किया है, किन्तु सब कहीं संक्षिप्तता का ध्यान अवश्य रखा है ।

शत्रुघ्न

राम के भाई शत्रुघ्न के चरित्र का चित्रण रामायण में बहुत कम ही हुआ है । रामायण में लवणासुर-वध तथा मधुरापुरी को बसाने के प्रयत्न में मात्र उनके चरित्र के पराक्रम पर प्रकाश डाला गया है । लेकिन खड़ीबोली हिन्दी काव्यों में बात ऐसी नहीं है । यहाँ पर शत्रुघ्न के चरित्र को कहीं कहीं प्रमुखता मिल गई है । गुप्तजी ने अन्य अनेक चरित्रों को उजागर करने के साथ साथ शत्रुघ्न के चरित्र को भी उभारने का प्रयास

---

1. साकेत - पृ. 64

किया है । "साकेत" में कवि ने शत्रुघ्न के हृदयस्पर्शक भ्रातृस्नेही, परिवार-प्रिय, व्यवहार कुशल तथा सैन्यसंचालन सैद्धतत्पचित्त रूप को भी चित्रित किया है । "साकेत-सन्त" में भी शत्रुघ्न के चरित्र का ऐसा वैसा चित्र खींचा गया है । "उर्मिला" में उनके चरित्र की विनोदप्रियता दिखाई गई है । इसका विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

भ्रातृस्नेह

"साकेत" में कवि ने उनका उज्ज्वल भ्रातृप्रेम दिखाया है । जिसप्रकार लक्ष्मण राम के सेवक हैं उसी प्रकार शत्रुघ्न भरत के[1] ।

व्यवहारकुशलता और दायित्वबोध

जब भरत विरागी का जीवन बिताते हैं, तब चौदह वर्ष केलिए शत्रुघ्न अकेले अपनी अनन्य कुशलता से राज्य भार संभालते हैं । उनके दायित्वपूर्ण जीवन पर प्रकाश डालती हुई माण्डवी कहती है ।

कोई तापस, कोई त्यागी, कोई आज विरागी है,
घर संभालनेवाले मेरे देवर ही बड़भागी है[2] ।

गुप्तजी के शत्रुघ्न वीरता की प्रतिमूर्ति है । लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनकर, जब भरत सैनिक सज्जा का आदेश देते हैं तब शत्रुघ्न अनन्य वीरता का प्रदर्शन करते हैं[3] ।

---

1. साकेत - पृ.317
2. वही
3. वही - पृ. 371

विनोदप्रियता

"उर्मिला" काव्य में शत्रुघ्न के चरित्र की विनोदप्रियता को कवि ने उद्घाटित किया है । यहाँ कवि ने उर्मिला के साथ विनोद वार्तालाप में संलग्न शत्रुघ्न का चित्रण करके उनके चरित्र के कोमल पक्ष को उद्घाटित किया है

शत्रुघ्न के चरित्र का अध्ययन करने पर यह देखा जा सकता है कि गुप्तजी के शत्रुघ्न का चरित्र ही सबसे अधिक उजागर है । "उर्मिला" काव्य के शत्रुघ्न में किशोर का सान्निध्य ही अधिक दिखाया गया है, तो गुप्तजी के शत्रुघ्न के चरित्र में प्रगल्भता अवश्य देखी जा सकती है ।

प्रस्तुत अध्याय में खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के प्रमुख पुरुष पात्रों का विश्लेषणकिया गया है । अगले अध्याय में स्त्री पात्रों पर विचारकिया जाएगा ।

चतुर्थ अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के पात्र - 2

चतुर्थ अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित रामायण के पात्र - 2

स्त्री पात्र

सीता

आदर्श भारतीय नारियों में श्रेष्ठ सीता का चरित्र अपने में संघर्षमय रहा है । उन्हें अनेक विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, परन्तु वे तनिक भी अपने धर्म और आदर्श से विचलित नहीं हुई । यही उनकी श्रेष्ठता का निदान है । आज भी उनका चरित्र भारतीय रमणियों की धर्म प्रेरणा का अक्षय स्रोत है । सीता के पवित्र चरित्र का उद्घाटन वाल्मीकि ने पहले किया है, जिसकेलिए जीवन भर हम उनके आभारी हैं । सीता-चरित्र का महत्व प्रकट करते हुए वाल्मीकि कहते हैं - "'काव्यं' रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्[1] ।" आदि काव्य से लेकर अधुनातन युग तक सीता के चरित्र पर

---

1. वा॰रा॰ बाल॰ सं॰4, श्लो॰7

आधारित अनेक काव्य ग्रन्थ लिखे गए हैं । विभिन्न युगों में समाज और संस्कृति के परिवर्तन के साथ सीता का चरित्र भी परिवर्तित हुआ है । खड़ीबोली की सीता के चारित्रिक विकास को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है :- {1} सीता का आदर्श मानवी रूप, {2} सीता का प्रतीकात्मक स्वरूप और सीता का दार्शनिक स्वरूप । खड़ीबोली के प्रारंभ के दो महा- काव्यों - "साकेत" तथा "वैदेही वनवास" में सीता को परम आदर्श मानवी का रूप दिया गया है जो कभी कभी देवत्व की कोटि तक पहुँचा जाता है । "साकेत" में ही यह प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है । "साकेत" की सीता अधिकांशतः शुद्ध मानवी है, लेकिन कभी कभी उनमें उनका शक्ति स्वरूप भी दिखाया गया है । इसके विरुद्ध "वैदेही वनवास" की सीता शुद्ध मानवी है । आगे चलकर यथार्थवाद के आग्रह के कारण कविवर पन्त ने "लोकायतन" में उनके चरित्र की प्रतीकात्मकता में मार्क्सवादी दर्शन एवं राजनीति के प्रभाव के कारण नरेश मेहता ने "संशय की एक रात में उन्हें कोटि कोटि जनों की अपहृत स्वतंत्रता का रूप प्रदान किया है । लेकिन विवेच्यकाल में {सन् 1900-1960 तक} के साहित्य में सीता चरित्र का आदर्श मानवी रूप ही अधिक मुखरित रहा है । आगे इसका विशद रूप में विवेचन किया जाएगा । सन् 1900 से सन 1960 तक लिखे गये राम काव्यों मे सीता के चरित्र का सबसे आकर्षक रूप "वैदेही वनवास" में ही मिल जाता है । गुप्तजी के "साकेत" और रामचरित उपाध्याय के "रामचरित चिन्तामणि" में भी सीता का चरित्र उद्घाटित हुआ है, लेकिन "साकेत-सन्त", "उर्मिला", "राम-राज्य" आदि काव्यों में सीता के चरित्र का उल्लेख मात्र किया गया है ।

पतिव्रता

सीता के महान चरित्र की आधारशिला उनका अटल पातिव्रत्य धर्म है । वे हमेशा अपने पति के सुख दुःख की समभागिनी है । पातिव्रत धर्म में वे सती साध्वी सावित्री से समता रखती हैं । अपने अटल पातिव्रत धर्म से

ही उन्हें समस्त राम काव्य में उच्च स्थान की पदवि दे दी है । रामायण से लेकर खड़ीबोली के सभी काव्यों में सीता के चरित्र का यह मूलभूत गुण अभिव्यक्त हुआ है । खड़ीबोली के कवियों ने नवीनताओं के समावेश द्वारा सीता के इस परंपरागत गुण को युगानुकूल बनाने का परिश्रम किया है । सीता-चरित्र के पातिव्रत धर्म की कसौटी के प्रमुख प्रसंग हैं - वन गमन, वनवास, सीता-अपहरण, अशोक-वन-निवास, अग्निपरीक्षा तथा पुनः वनवास ।

सीता का सब कुछ अपना पति राम है । राम के बिना उन्हें जीना तक मुश्किल है । राम के बिना प्रत्येक वस्तु को वे तुच्छ मानती हैं । जब राम को काननवास का आदेश मिल जाता है तब सीता अतीव दुःखी होती है और कानन के कठिन पीडाओं के बीच भी उनकी अनुगामिनी होने का निश्चय करती है । स्वयं श्रीराम, कौसल्या, सुमन्त्र तथा दशरथ भी उन्हें रोकने का असफल प्रयत्न करते हैं । सीता तार्किक ढंग से अपनी पति-परायणता समझाकर दुर्गम वन में भी पति का अनुगमन करती है[1] । उनके अनुसार राम के सहवास में दुःख भी उनकेलिए सुख जैसा है और इसलिए यह अरण्यवास का वैभव उनकेलिए पितृगृह तथा श्वसुर के वैभवों से कहीं अधिक है । गुप्तजी ने भी पतिव्रता सीता का सुन्दर चित्र खींचा है[2] । वे अपनी पतिपरायणता का दायित्व अच्छीतरह निभाती है और जंगल में भी मंगल मनाकर श्रीरामचन्द्रजी की सेवा करती है । पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई गुप्तजी की सीता वन में स्वावलंबन, वन में रहनेवाले असभ्य लोगों की सेवा तथा उन्हें सभ्य बनाने के प्रयत्न में लीन रहती है । इस प्रकार गुप्तजी ने पातिव्रत धर्म से ओतप्रोत सीता के चरित्र को और भी महान बना दिया है । 'रामचरित चिन्तामणि' में भी सीता के पतिव्रता रूप पर प्रकाश डाला गया है । यहाँ की सीता अच्छी तरह जानती हैं कि पत्नी पति की अर्धांगिनी है । इसलिए सुख-दुःख, गौरव-निन्दा सभी में आपस में सहभागी होना उनका

1. वा॰रा॰ अयो॰ सर्ग ॰ 27, श्लो॰5,6,9

2. साकेत - पृ॰93-94

धर्म है । अतः वे राम से अपने को घर में त्याग करके कानन की ओर न प्रस्थान करने की प्रार्थना करती है[1] ।

सीता के चरित्र का पातिव्रत उनके वियोग में सबसे अधिक उभरता है । अशोक वाटिका में रावण सीता को अपने पथ से विचलित कराने का बार बार परिश्रम करते हैं, लेकिन वे अनेक यातनाओं के बावजूद भी अपने पथ पर अटल रहती हैं[2] । उन्हें अपने पति के पराक्रम तथा अपने सतीत्व का बल है जो उन्हें निशाचरों के साथ जीवन बिताने का धैर्य देता है । हनुमान के द्वारा अपने कन्धे पर चढ़ने केलिए बार बार अनुरोध करने पर भी वे इस केलिए तैयार नहीं होती हैं[3] । सीता के वियोग प्रसंग में, जिसमें उज्जवल रूप में वाल्मीकि ने उनके पातिव्रत का प्रकाशन किया है उतनी सफलता गुप्तजी को नहीं मिली है । अग्निकुण्ड में उनका पातिव्रत सबसे तेजोदीप्त रूप में प्रकट होता है । राम के द्वारा रावण के बन्धन से मुक्ति दिलाने पर भी उन्हें चैन नहीं मिलता । राम द्वारा अपने पातिव्रत पर शंकालु होने पर वे अतीव दुःखी हो जाती हैं । लेकिन आग में कूदकर वे अपनी पवित्रता दिखा देती है[4] । गुप्तजी ने इस प्रसंग को अधिक मानवीय और विश्वसनीय बनाने के प्रयास में नवीनताओं से सजाकर सीता के पातिव्रत को और भी अधिक उज्ज्वल रूप में प्रकट किया है । गुप्तजी के राम को सीता के पातिव्रत पर पूर्ण भरोसा है । अपनी धर्मपत्नी को वे अच्छी तरह जानती हैं । इसलिए सीता को प्रतिवाद तथा अग्निसाक्षी बनने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है ।

सीता – निष्कासन प्रसंग में भी सीता के पातिव्रत का मनोवैज्ञानिक रूप सामने आता है । धर्मपरायण राम जब प्रजाहितार्थ उनको गर्भावस्था

---

1. रामचरित चिन्तामणि – पृ.76
2. वा.रा. सुन्दर. सर्ग . 19-22
3. वही – सर्ग.37, श्लो.62
4. वा.रा.युद्ध. सर्ग 116 श्लो.29

त्याग देने का निश्चय करते हैं तब अपने पति की धृष्टता को भी वे बिना हिचके शिरोधार्य कर लेती हैं।[1] उनका उज्ज्वल शील यहाँ पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाता है। अन्त में मातृत्व से विभूषित होकर राम को दो पुत्रों को भेंट करके, अपने सतीत्व का, पातिव्रत धर्म का पालन करने के लिए वे पृथ्वी में समा जाती हैं। इस बलिदान का बड़ा मार्मिक और हृदयस्पर्शी वर्णन वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया है।[2] हरिऔध जी के अलावा खड़ीबोली के किसी भी कवि ने इस प्रसंग पर लेखनी नहीं चलाई है। संसार की सभी सतियों में सबसे उज्ज्वल सतीत्व का आचरण करनेवाली सीता जी के सतीत्व की उद्घोषणा करते हुए "वैदेही वनवास" में वसिष्ठ मुनि कहते हैं -

"आप मानवी हैं तो देवी कौन है,
xx xx xx
पातिव्रत अति पूत सरोवर अंक में,
कौन पतिव्रता पंकजिनी ऐसी खिली,
xx xx xx
पतिगतप्राण ऐसी न दूसरी,
कौन धरा की सतियों की सिरमौर है।[3]

"वैदेही वनवास" के सीता निर्वासन-प्रसंग में उनका पातिव्रत्य अत्यन्त उज्ज्वल रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। प्रारंभ में तो सीता राम के वियोग की कल्पना मात्र से दुःखी होती है। लेकिन लोकापवाद के कारण जब अपने पति का मान संकटग्रस्त होता है तब वे स्वयं वाल्मीकि आश्रम जाने के लिए तैयार होती हैं। पतिव्रता सीता का अत्यन्त उदात्त रूप ही यहाँ पर

---

1. साकेत - पृ. 343
2. वा. रा. उत्तर. सर्ग . 79
3. वैदेही वनवास - पृ. 98

देखा जाता है । सीता के सतीत्व की घोषणा करते हुए विभीषण कहते हैं कि राम के पराक्रम से बढ़कर सीता का उज्ज्वल सतीत्व ही रावण को पराजित करने में सहायक हुआ है[1] । ~~आदर्श बहू~~

आदर्श बहू

सीता के हृदय में अपनी माता कौसल्या तथा अन्य माताओं के प्रति अगाध प्रेम है । वे अच्छी तरह जानती हैं कि सास-ससुर की सेवा शुश्रूषा करना बहू का कर्तव्य है और वे अपना कर्तव्य निभाने में हमेशा सफल भी होती हैं । यह उनके चरित्र की परंपरागत विशेषता है और इसका विशद वर्णन वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया है । गुप्तजी तथा हरिऔध जी ने भी अपने काव्यों में सीता के चरित्र का आदर्श बहू का रूप अंकित करके पाठकों के सामने उनके आदर्श को प्रस्तुत किया है । "साकेत" की सीता एक आज्ञाकारिणी आदर्श बहू है । वे माता कौसल्या के आदेशों को उत्साहपूर्वक सुनती हैं और उनका पालन भी करती हैं । "वैदेही वनवास" में कौसल्या माता अपनी बहू की सेवा शुश्रूषा के बारे में कहती हैं कि सीता जी दिन रात उनकी सेवा शुश्रूषा में संलग्न हैं[2] ।

आदर्श माता

सीता के चरित्र का आदर्श माता रूप भी उनका परंपरागत गुण है । इस परंपरागत गुण को नवीनताओं से सजाकर हरिऔध जी ने प्रकट किया है । गुप्तजी ने उनके मातृत्व पर प्रकाश नहीं डाला है । पति द्वारा

---

1. उर्मिला - पृ.78
2. वैदेही वनवास - पृ.69

परित्यक्ता, वियोग दुःख से आकुल होने पर भी वे अपने मातृगत दायित्व को नहीं भूलती । वे अपने बच्चों की सारी बातों पर ध्यान रखती है । उनके व्यक्तित्व निर्माण और उनके पालन में ही वे अपना जीवन समर्पित करती है । हर एक बात को अनेक तत्वों की सहायता से और उदाहरणों से दोनों पुत्रों को समझाने में उत्सुक रहती है । जब मछलियों को पकड़ने की इच्छा दोनों पुत्र प्रकट करते है तब "वैदेही वनवास" की सीता जीवजन्तुओं की हत्या के बदले, सबकी भलाई करने का उपदेश देती हुई उन्हें उस उद्यम से रोकती है[1]।

नवीनता

सीता-चरित्र के परंपरागत गुणों को उजागर करने के साथ साथगुप्तजी, हरिऔध जी आदि ने उनके चरित्र को और अधिक उदात्त बनाने केलिए नवीन गुणों से उन्हें सज्जित किया है । गुप्तजी ने उनके चरित्र की विनयशीलता, उदारता, स्वावलंबन, हास-परिहास आदि भी प्रकट करके उन्हें एक शुद्ध मानवी का रूप दे दिया है तो "वैदेही वनवास" में सीता-चरित्र की कर्तव्यपरायणता, लोकरंजनकारी रूप ही अधिक मुखरित हुआ है । इसके अलावा परंपरागत सीता-चरित्र की दुर्बलताओं को धोने का जो स्तुत्य कार्य गुप्तजी ने किया है वह बिलकुल सराहनीय ही है । इसका विवेचन आगे किया जाएगा ।

स्वावलंबन

रामायण में सीता का अलग व्यक्तित्व नहीं दिखाया गया है । उनका व्यक्तित्व राम के व्यक्तित्व से दबा हुआ दिखाया गया है, उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । राम उनके समस्त आदर्शों एवं उद्देश्यों की

---

1. वैदेही वनवास - पृ.208

प्रतिमूर्ति है । सीता एक सुकुमार वधु है । आधुनिक नारियों के समान स्वतंत्र रूप से कार्य करने अवकाश उन्हें प्राप्त नहीं है । लेकिन इसके विरुद्ध "साकेत" की सीता आधुनिक नारी की प्रतिमूर्ति है । वन में उनको स्वतंत्र रूप से कार्य करने का संदर्भ मिलता है । कठिनाइयों का सधैर्य सामना करने की ताकत उनमें है । कुरपी लेकर खेत जोतने केलिए वे तैयार होती हैं ।

हास-परिहास

गुप्तजी की सीता की और एक नवीन विशेषता उनका हास-परिहास है । वे अपने पति तथा देवर के साथ भी विनोदवृत्ति में लगी रहती हैं । उनका हास पूर्ण शिष्ठ और मर्यादित है जो उन्हें वन की कठोरता से सरलता पूर्वक जूझने में सहायता देता है । उनके शिष्ठ और मर्यादित हास-परिहास से प्रभावित होकर निषादराजा गुह भी उनका अभिनन्दन करते हैं[1] । "उर्मिला" काव्य में भी सीता का सरस कोमल शिष्ठ और मर्यादित हास-परिहास युक्त व्यक्तित्व झलकता है[2] ।

आदर्श शिक्षिका

वन में पति सेवा करने के साथ साथ वे एक आदर्श शिक्षिका का कार्य भी करती है । वन में कोल किरात बालाओं को सभ्यता और संस्कृति की शिक्षा देकर वे उन्हें सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का भी परिश्रम करती हैं[3] । इसी प्रकार वाल्मीकि के आश्रम में भी दूसरी महिलाओं को आवश्यक सलाह देकर वहाँ भी वे एक आदर्श शिक्षिका का कार्य करती हैं । सभी प्रकार की सलाह देने में वे सक्षम हैं । गृह कलहों की शान्ति केलिए वे सहनशीलता की शान्ति केलिए वे आवश्यकता पर बल देती हैं[4] ।

1· साकेत – पृ·116–117 2· उर्मिला – पृ·592

3· साकेत – पृ·179 4· वैदेही वनवास – पृ·202

कर्तव्यपरायणता

खड़ीबोली के सीता-चरित्र की एक नवीन विशेषता है कर्तव्य-परायणता । इसका विस्तृत अंकन "वैदेही वनवास" में देखा जाता है । लोकापवाद के कारण जब पति का मान संकटग्रस्त होता है तब उनकी कर्तव्यपरायणता सजग होती है । वे अतीव दुःखी होती है, फिर भी अपना कर्तव्य समझकर लोकाराधन हेतु पति की आज्ञा वनवास को शिरोधार्य मानती है[1] । यहाँ पर कवि ने सीता के चरित्र को बहुत ऊँचा उठाया है । निर्वासित अवस्था में भी वे अपने कर्तव्य को नहीं भूलतीं ।

पर दुःख दुःखिनी

सीता का हृदय उदारता और भावुकता का निकुंज है । वे किसी को भी दुःखित न देखना चाहती हैं । "साकेत" में विरह वेदना से जलती हुई उर्मिला को वे एकांत मिलन का अवसर दे देती है[2] । वन में शूर्पणखा जैसी राक्षसी का भी वे पक्ष ले लेती हैं जो उनके चरित्र के इसी पक्ष को ही स्पष्ट करता है[3] । हरिऔध जी की सीता का उतना सरल और कोमल हृदय है कि वे अपने शत्रु को भी दुःखित देखना नहीं चाहतीं । मेघनाद-वध के पश्चात् सती प्रमीला का क्रन्दन और दुःख से वे आतुर हो जाती है । यद्यपि वे शत्रु है, फिर भी उनके दुःख में सीता समभागी हो जाती हैं ।

लोकरंजिका

खड़ीबोली काव्य की सीता के सबसे आकर्षक रूप लोकरंजिका का है । प्राचीन काव्यों में सीता के पतिव्रत का ही महान रूप दिखाया गया है

1· वैदेही वनवास - पृ·236 2· साकेत - पृ·208

3· पंचवटी - पृ·40

तो खड़ीबोली के काव्यों में उनकी लोक केलिए सर्वस्व समर्पण करने की आतुरता ही अधिक झलकती है । गुप्तजी की सीता का लोकमाता रूप ही सबसे अधिक देदीप्यमान है । उनका प्रेम मात्र राम पर न केन्द्रित होकर समस्त सृष्टि में तरंगायित है । उनका उदार हृदय सबको अपनी ममता बाँटता है । पेड़-पौधे पशु-पक्षी तथा समस्त सृष्टि उनके सामीप्य से पुलकित हो उठती है । प्रकृति के प्रति उनकी सहानुभूति उनके उदार हृदय की परिचायक है । सीताजी लोकोपकार में इतनी रत है कि वे श्रीराम को घनश्याम बनकर पृथ्वी का ताप मिटाने केलिए बरसने की प्रेरणा देती हैं और स्वयं पाप पुंज पर विद्युत बनकर टूट पड़ने की आकांक्षा व्यक्त करती हैं[1]।

सीता के चरित्र के लोकरंजिका रूप का सबसे लुभानेवाला चित्र "वैदेही वनवास" में देखा जा सकता है । "वैदेही वनवास" की सीता लोक कल्याण की पवित्र भावना से ओतप्रोत हैं । ~~ओतप्रोत हैं।~~ इसकेलिए वे अपना सब कुछ - सारे सुख भी त्याग देने केलिए तैयार हो जाती हैं और प्रेम की पवित्र भूमि पर पहुँचने केलिए लालायित होती हैं[2]। वे लोकमंगल केलिए, अपने सर्वस्व, राम को भी छोड़कर वाल्मीकि आश्रम जाती हैं[3]। उनकी यह त्याग और लोकमंगल की भावना पूर्ण रूप से श्लाघनीय है । उनके अतुलनीय त्याग की प्रशंसा करते हुए "उर्मिला" काव्य में विभीषण कहते हैं कि सीता जी ने आत्माहुति करके उस युग केलिए उच्च आदर्श ही उपस्थित किया है[4]। अन्त में श्रीराम के स्वर में स्वर मिलाते हुए उनकी त्याग-बुद्धि और लोक मंगल की भावना की प्रशंसा की जाये तो कहना पड़ेगा -

---

1· साकेत - पृ·184
2· वैदेही वनवास - पृ·59
3· वही - पृ·63
4· उर्मिला - पृ·579

"तुम विशाल हृदया, जो मानवता है तुम से छवि पाती,
इसलिए तुममें लोकोत्तर त्यागवृत्ति ही दिखलाती।[1]

मानव सहज दुर्बलताएं

रामायण में सीता सतीत्व की प्रतिमूर्ति, सब प्रकार से आदर्श नारी है, लेकिन चुने हुए प्रसंगों में उनकी आदर्शवादिता को गिरते हुए दिखाया गया है। राम को अरण्यवास का आदेश मिलने पर वे पति का अनुगमन करना चाहती है। बहुत हठ करने पर भी राम इसकेलिए तैयार न होते, तब वे आत्महत्या तक कर लेने की धमकी देती हैं और साधारण नारी सुलभ आचरण के अनुकूल शोक एवं करुणा से विलाप करती हुई राम से आलिंगनबद्ध हो जाती है। गुप्तजी ने यहाँ पर सीता के चरित्र को ऊँचा उठाने का परिश्रम किया है। उनकी सीता वीर क्षत्राणी का आचरण ही उपस्थित करती है। वे पत्नी का धर्म समझाकर पति का अनुगमन करने की अपनी अभिलाषा प्रकट करती है[2]। इसी प्रकार पंचवटी में रहते वक्त स्वर्ण मृग पाने के लोभ से रामचन्द्र जी को भेजने के बाद राम के आर्तनाद को सुनकर वे घबरा जाती हैं और लक्ष्मण से राम की खोज केलिए जाने का आग्रह करती हैं। अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहने वाले लक्ष्मण इसकेलिए तैयार न होने पर वे उन्हें धिक्कारती हुई कहती है कि "तुम मुझे प्राप्त करने की इच्छा से भाई की खोज केलिए न जा रहे हो। तुम्हें मेरा लाभ मात्र है, भाई का तुम्में तिल मात्र स्नेह नहीं है[3]। इस प्रसंग में सीता का चारित्रिक गौरव घट जाता है। गुप्तजी केलिए यह असह्य है। उन्होंने सीता के चरित्र की दुर्बलताओं को धोने का श्लाघनीय प्रयास किया है। उनकी सीता लक्ष्मण पर इतने कुत्सित शब्दों का प्रयोग नहीं करती है, वे जड़, निर्दय आदि साधारण शब्दों के सहारे अपना आक्रोश

---

1. वैदेही वनवास - पृ.61
2. साकेत - पृ.95-96
3. वा.रा. अरण्य. सर्ग. 45, श्लो.2-26

व्यक्त करती है[1]। इससे भी कवि संतुष्ट नहीं होते। उनकी सीता अपनी कुप्रवृत्ति केलिए पश्चाताप विकल होकर लक्ष्मण से क्षमा याचना भी करती हैं[2]। इस प्रकार गुप्तजी ने परंपरागत प्रसंगों को नवीनता से संजोकर सीता के आदर्श चरित्र को और भी पवित्र बना दिया है।

सीता के चरित्र का अवलोकन करने पर यह देखा जा सकता है कि खडीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को एक भव्य और ऊँचा स्थान प्रदान किया है। रामायण की सीता पतिव्रता की प्रतिमूर्ति है जिसके उद्घाटन में कोई भी कवि वाल्मीकि से समता नहीं कर सका। फिर भी रामायण की सीता का व्यक्तित्व उतना उजागर नहीं है। वे राम के व्यक्तित्व के नीचे दबा हुआ है। खडीबोली के कवि उनके व्यक्तित्व को उजागर करने में सफल हुए हैं। साकेत की सीता सुधारात्मक कार्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे रचनात्मक कार्यों में प्रवृत्त होती हैं। सहृदयता, संवेदना एवं करुणा ने उनके हृदय को अत्यन्त कोमल बना दिया है। कर्तव्यपरायणता, प्रकृति प्रेम, स्वावलंबन एवं शान्तिप्रियता उनके दिव्य गुण हैं। वे कुसल की देवी हैं जिन्हें लोकोपकार एवं समाज सेवा केलिए जीवन देने में भी प्रसन्नता है। हरिऔध जी की सीता के चरित्र में भी लोकमंगल की भावना अपनी पराकाष्ठा पर देखी जाती है जो उन्हें आज की भारतीय नारी केलिए अनुकरणीय आदर्श बना देती है। "उर्मिला" काव्य में विभीषण राम से अधिक सीता को लोकमंगलकारी मानते हैं।

उर्मिला

खडीबोली के राम काव्यों में उर्मिला का चरित्र बडा महत्वपूर्ण रहा है। वाल्मीकि रामायण में उनके चरित्र का उल्लेख मात्र किया गया है। टैगोर के 'काव्येतर उपेक्षिता', तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' आदि लेखों के माध्यम से ही कवियों का

1. साकेत - पृ.335
2. वही - पृ.344

ध्यान उर्मिला के चरित्र की ओर आकृष्ट हुआ है । खड़ीबोली के कवियों में पं० रामचरित उपाध्याय और हरिऔध जी ने उर्मिला के आदर्श चरित्र के प्रति श्रद्धा और करुणा समर्पित की है । उर्मिला के चरित्र का विस्तृत विवेचन मैथिलीशरण गुप्त ने ही सर्वप्रथम प्रस्तुत किया । "साकेत" में उन्होंने उर्मिला का जो चित्र खींचा है वह अभूतपूर्व है क्योंकि उन्होंने उर्मिला के चरित्र को नवीन रेखाओं से सजाकर सर्वप्रथम उनके चरित्र को आकार प्रदान किया है । इस प्रकार उर्मिला का सर्वथा उपेक्षित चरित्र हिन्दी-काव्य-जगत में अमर हो गया । गुप्तजी के बाद श्रीबालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने "उर्मिला" महाकाव्य की रचना की है । नवीन जी के शब्दों में "उर्मिला के स्तवन की लालसा और इस स्तवन को प्रकाश में लाने की इच्छा, चाहे वह बलि ही क्यों न हो, मेरी जीवन संगिनी रही है[1] ।

वाल्मीकि रामायण में उर्मिला के शिष्ठ व्यक्तित्व का उल्लेख किया गया है जिसमें उनके समर्पिता, पतिपरायणा, प्रेम प्रगल्भा रूप मिलता है । गुप्तजी ने अपनी कल्पना के सहारे उनके आदर्श चरित्र को स्वाभिमान, क्षत्रियत्व, सौन्दर्य बोध, कलाप्रेम, विचारशीलता, रोमांस, अनुराग, त्याग आदि नूतन गुणों से सज्जित करके उन्हें अपने काव्य की नायिका बनाया है । श्रीबालकृष्णशर्मा "नवीन" ने भी उर्मिला को नायिकोचित गरिमा प्रदान करके "उर्मिला" महाकाव्य की रचना की है । इस काव्य में भी उर्मिला के जीवन की उन गरिमामय घटनाओं को चित्रित किया है जिनसे उनके चरित्र की विशेषताएं उद्घाटित होती हैं । युग चेतना से प्रेरित होकर आर्य संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव उर्मिला के चरित्र में देखा जा सकता है । सत्य, तप, त्याग, विश्वबन्धुत्व, आध्यात्मवाद, नारी की महत्ता आदि आर्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्त हैं । इन सबके अनुकूल कवि ने उर्मिला के चरित्र को संजोया है । उर्मिला-चरित्र की विशेषताओं का विवेचन आगे किया जाएगा ।

---

1. उर्मिला - श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु - प्रथम पृष्ठ

त्याग एवं कर्तव्य भावना

उर्मिला का आदर्श चरित्र त्याग एवं कर्तव्य भावना का सुन्दर निदर्शन है । वाल्मीकि ने उनके इस चारित्रिक पक्ष का उल्लेख मात्र किया है । खड़ीबोली के कवियों ने विशेषकर गुप्तजी एवं नवीन जी ने उर्मिला के उज्ज्वल त्यागमयी रूप को प्रकट किया है । नव परिणीता उर्मिला के मन में अपने पति के प्रति प्रेम का अनन्तर सागर लहराता है, उनके सामीप्य केलिए वे आकुल हैं, लेकिन वे अपने मन को संयमित रखती हैं और अपने कर्तव्य को निभाने केलिए तैयार हो जाती है[1] । वे अपने पति को भाई के प्रति प्रेम एवं कर्तव्य को अच्छी तरह निभाने का अवसर दे देती हैं । इसकेलिए वे अपने प्रेम और सुख का बलिदान करती हैं और त्याग का महान आदर्श उपस्थित करती हैं । वे कहती हैं -

"हे मन -
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन,
आज स्वार्थ है त्याग भरा
हो अनुराग विराग भरा[2] ।"

"साकेत" की कर्तव्यपरायणा उर्मिला अच्छी तरह जानती हैं कि उनका अपने पति के साथ जाना पति के कर्तव्यपथ में विघ्नकारी है क्योंकि वे जानती हैं कि उनके पति के साथ रहने में वे भ्रातृसेवा को भलीभांति निभाने में असमर्थ हो जाएंगे । वे लक्ष्मण का विरोध भी नहीं करती जो पत्नी प्रेम से भी बढ़कर भ्रातृसेवा को ही प्रमुखता देते हैं । विरह जो स्त्रीकेलिए सबसे अधिक दु:खदायी है, वह भी स्वेच्छा से स्वीकारने केलिए उर्मिला तैयार होती ।

---

1. साकेत - पृ.89
2. वही - पृ.89

यहाँ उनके त्याग की चरम सीमा ही अभिव्यजित होती है । उर्मिला के चरित्र की यह विशेषता उनके व्यक्तित्व को सीता की तुलना में अधिक उदात्त और अनुकरणीय बना देती है । इसके संबन्ध में स्वयं सीता जी ने कहा है -

"सास ससुर की स्नेह-लता,
बहन उर्मिला महाव्रता,
सिद्ध करेगी वही यहाँ,
जो मैं भी कर सकी कहाँ[1] ।"

"उर्मिला" काव्य की उर्मिला भी त्याग एवं कर्तव्यपरायणता का महान आदर्श उपस्थित करती है । वे पहले राम-लक्ष्मण की वनवासयात्रा के धर्माधर्म की विवेचना करती हैं और दशरथ और कैकेयी के क्रूर व्यवहार की भर्त्सना करती है[2] । लेकिन लक्ष्मण के द्वारा वनवास यात्रा का वास्तविक लक्ष्य समझाने पर, जनोद्धार केलिए आर्य संस्कृति के प्रचार प्रसार केलिए वे लक्ष्मण को वन भेज देती हैं[3] । स्वयं उर्मिला भी लक्ष्मण के साथ वन जन्य कष्टों को भोग कर जनोद्धार करना चाहती हैं[4] । लेकिन जब लक्ष्मण ने उन्हें समझाया कि उनका स्थान साधक का है, राम के समान सिद्ध का नहीं है तब वे प्रिय पथ में विघ्न न डालना चाहती हैं और जनोद्धार केलिए लक्ष्मण को न्योछावर करके चौदह वर्ष के दारुण विरह दुःख भोगने केलिए तैयार होती हैं[5] । सीता जी[6] तथा स्वयं रामचन्द्रजी[7] भी उनके इस अभूतपूर्व बलिदान के सामने नतमस्तक हो जाते हैं ।

1· साकेत - पृ·95
2· उर्मिला- पृ·237
3· वही - पृ·195
4· वही - पृ·257
5· वही - पृ·278
6· वही - पृ·277
7· वही - पृ·315

प्रेम की मूर्ति

यह उर्मिला के चरित्र की और एक उल्लेखनीय विशेषता है। "साकेत" की उर्मिला एक कर्तव्यनिष्ठ धर्मपत्नी है। वे अपने पति के किसी भी कार्य में बाधा उपस्थित करना नहीं चाहतीं। इसकेलिए वे अपना सब कुछ खो देने केलिए तैयार हैं। वे अपने पति के भ्रातृप्रेम को गौरवान्वित करने केलिए अपने प्रेम सुख का भी बलिदान हँसते हँसते कर देती है। वस्तुत: उनके प्रेम में स्वार्थ की गुंजाइश तक नहीं है। उनकी केवल यही कामना है कि -

"आराध्या युग्म के सोने पर,
निस्तब्ध निशा के होने पर,
तुम याद करोगे मुझे कभी,
तो बस, फिर मैं पा चुकी सभी[1]।"

उनकी पतिपरायणता यहीं खतम नहीं होती, चित्रकूट में लक्ष्मण से मिलने पर वे अपनी विवशता और व्यथा व्यक्त नहीं करती अपितु वे अपने को संतुष्ट बनाने की कोशिश करती हैं[2]। वे पति के वियोग में इतनी कृश हो जाती हैं कि चित्रकूट में उन्हें देखते हुए लक्ष्मण को स्वयं कहना पड़ता है -

"यह काया है या शेष उसी की छाया[3]।"

गुप्तजी की उर्मिला संयोग में ऐन्द्रिय जगत से विरत नहीं है। नवीन जी की उर्मिला-लक्ष्मण की संयोग-क्रीडा में भी इन्द्रियोत्सव दृष्टिगोचर हो है। नवीन जी ने अपनी कल्पना के माध्यम से उसे सुन्दर रूप में उपस्थित

1· साकेत - पृ·131

2· वही - पृ·209

3· वही - पृ·208

किया है[1]। परन्तु कभी कभी यह मिलन आध्यात्मिक स्वरूप धारण कर लेता है और उन दोनों का अद्वैतभाव जीव और ब्रह्म का अद्वैत भाव बन जाता है[2]। गुप्तजी ने राम-वन-गमन के अवसर पर लक्ष्मण-उर्मिला को एकान्त मिलन का अवसर नहीं दिया है। उन्होंने उर्मिला के मूक और सघन विषाद को बड़ी कुशलता से दिखाया है। लेकिन नवीन जी ने उन दोनों को एकान्त मिलन का अवसर दिया है। यहाँ की उर्मिला मानवता के कल्याण के निमित्त विरह की सारी विह्वलता भोगने केलिए तैयार होती हैं -

"मानवता की पाद पीठ पर तुमको न्योछावर करके
रो लेगी उर्मिला तुम्हारी, चुपके, चुपके, जी भर के[3]।"

जब लक्ष्मण वन चले जाते हैं तब गुप्तजी की उर्मिला पति की प्रतीक्षा में तपस्या में लीन रहती हैं और वे राजभवन को भी तपस्विनी का उटज बनाती हैं। गुप्तजी की उर्मिला का विरह मानवीय है। उन्होंने मिलन के समय भी उर्मिला को रुला दिया है[4]। इसके विरुद्ध नवीनजी के उर्मिला-विरह में स्वच्छन्दता अधिक है। नवीन जी की उर्मिला वियोग में कभी तो प्रेम-योगिनी बनती है, कभी उनमें विरह दुःख सहने का शौर्य भाव उत्पन्न होता है, कभी वे वेदना को ही प्रियतम मानकर वियोग में भी संयोग की क्रीडा करने लगती है और अंत में अद्वैत-भावना से वे स्वयं ही लक्ष्मण बन जाती हैं[5]। गुप्तजी की उर्मिला भी वियोगाग्नि में अपनी ऐन्द्रियता भस्म कर प्रेम के शुद्ध रूप साक्षात्कार करती हैं, अंत में उनकी यही धारणा हो जाती है -

---

1. उर्मिला - पृ.129-130
2. वही - पृ.148
3. वही - पृ.206
4. साकेत - पृ.396
5. उर्मिला - पृ.515

"अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी"[1]।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि नवीनजी की उर्मिला एकान्त प्रेम की नायिका के रूप में हमारे समक्ष आती है, जबकि गुप्तजी की उर्मिला में एक कुलवधू की मृदुता और वीरांगना के आदर्श समाहित हो गए हैं।

कलाप्रेम

गुप्तजी ने परंपरागत उर्मिला के चरित्र को अनेक नवीन गुणों से सज्जित किया है। उनमें एक है उनका कलाप्रेम। गुप्तजी की उर्मिला चित्र रचना, संगीत, नृत्य आदि सभी कलाओं में प्रवीण है। उनकी चित्र-रचना-मर्मज्ञता विशेष उल्लेखनीय है और अभिषेक का चित्र उनकी अनुपम देन है। उनके द्वारा निर्मित भव्य और सुन्दर राज्याभिषेक के चित्र की कलात्मक सुन्दरता पर लक्ष्मण भी मुग्ध हो जाते हैं[2]। विरहाग्नि में तपते वक्त भी वे अपने कलात्मक गुणों को नहीं भूलती हैं। वे इन कलाओं को सिखाने के लिए पाठशाला खुलवाने की इच्छुक हैं[3]। नवीन जी की उर्मिला भी चित्रकला की विशेषज्ञ है। वे लक्ष्मण का एक अस्तव्यस्त एवं शस्त्रहीन शिकारी के रूप में चित्रांकन करती हैं। शत्रुघ्न के द्वारा इस वैचित्र्य के संबन्ध में जिज्ञासा प्रकट करने पर वे कला के रहस्य की व्यंजना करती हैं। नवीन जी ने उर्मिला को कला विवेचन में अधिक प्रगल्भ दिखाया है।

---

1. साकेत - पृ.395
2. वही - पृ.31
3. वही - पृ.217

विनोदप्रियता

गुप्तजी ने उर्मिला के चरित्र को युगानुकूल बनाने केलिए उन्हें विनोदप्रियता से भी विभूषित किया है । "साकेत" के प्रथम सर्ग में लक्ष्मण के साथ उनके वार्तालाप से उनकी विनोदप्रियता पूर्ण रूप से अभिव्यंजित होती है[1] । लेकिन हास परिहासमें भी वे सदा शील और मर्यादा का ध्यान रखती हैं । "उर्मिला" काव्य में भी उर्मिला के बाल्य काल वर्णन में उनके चरित्र की विनोदप्रियता ही अभिव्यंजित होती है[2] ।

वीर क्षत्राणी

उर्मिला की चरित्र सृष्टि में गुप्तजी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने परंपरानुसार उर्मिला को मात्र वेदना और करुणा की परंपरागत प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित किया वरन् उनमें बुद्धि और वीरता का अद्भुत समन्वय भी उपस्थित किया है । गुप्तजी की उर्मिला वियोगाग्नि में जलते समय भी अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखती हैं । वे समय की माँग के अनुसार कार्य करती हैं । प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति का भी वे सधैर्य सामना करती हैं । प्रिय के वियोग से विह्वल-विकल उर्मिला मेघनाद के शक्ति बाण से लक्ष्मण के मूर्छित होने के समाचार से सामान्य नारियों की तरह संज्ञा शून्य न होकर एक वीर क्षत्राणी के समान शत्रु संहार केलिए तत्पर हो उठती हैं[3] । इससे उनके चरित्र का अखण्ड साहस और वीरता ही अभिव्यंजित होती है । क्षत्रियत्व की यह भावना उर्मिला के चरित्र की शोभा एवं गौरव को बढ़ाने में सक्षम है ।

---

1. साकेत - पृ.26
2. उर्मिला - प्रथम सर्ग
3. साकेत - पृ.376

"उर्मिला" काव्य की उर्मिला भी वीर क्षत्राणी का पद अलंकृत करती है । वे मानी भी है । राम लक्ष्मण के वनवास की बात उठाये जाने पर वे उसके धर्माधर्म की विवेचना करती है और दशरथ और कैकेयी के क्रूर व्यवहार के विरुद्ध हथियार उठाने का उपदेश लक्ष्मण को देती है[1] । इसमें उनके चरित्र का क्षत्रियत्व ही झलकता है क्योंकि वे अधर्म को चुपचाप सहना नहीं चाहतीं । लेकिन नवीन जी ने आपत्ति में पड़े लक्ष्मण की सहायता के अर्थ हथियार उठानेवाली उर्मिला का चित्र नहीं उपस्थित किया ।

उदारता एवं कोमलता

यह भी गुप्तजी की उर्मिला के चरित्र की एक नवीन विशेषता है । उर्मिला के चरित्र का यह पक्ष उनके वियोगिनी रूप में अधिक स्पष्ट हुआ है । वे परंपरागत विरहिणियों की भांति प्रकृति को घृणा एवं जलन की दृष्टि से नहीं, बल्कि संवेदनात्मक दृष्टि से देखती हैं[2] । वे अपने दुःख को भूलकर अन्य जीव जन्तुओं के दुःख को हरने का परिश्रम करती हैं । इससे उनका निस्वार्थ चरित्र ही पूर्ण रूप से अभिव्यक्त होता है । डॉ॰नगेन्द्र ने उसके संबन्ध में बताया है कि वस्तुतः वे घर में जलाए गए उस आशापूत दिव्य दीप की शिखा की भांति प्रज्वलित है जो दूरदेशगामी पुरुषों को प्रकाश प्रदान करने की कामना का प्रतीक है[3] । वे अत्यन्त "दीना", "हीना" "अधीना" होते हुए भी सबको शान्ति एवं सुख प्रदान करने का परिश्रम करती है जिससे वे स्वयं शान्ति का अनुभव करती हैं । तप करनेवाले लक्ष्मण को संबोधित करती हुई उर्मिला कहती है -

---

1· उर्मिला - प्रथम सर्ग

2· साकेत नवम सर्ग

3· गुप्तजी की कला - डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰109

प्यासे है प्रियतम सब प्राणी,
उन पर दया करो हे दानी,
इन प्यासी आँखों में पानी,
मानस, कभी न रीतो,
तन को यों मत जीतो ।[1]

"उर्मिला" काव्य में भी उनके चरित्र का उदार एवं कोमल रूप प्रस्फुटित हो गया है । विरहाग्नि में जलते समय भी वे समसृष्टियों के साथ सहानुभूतिपरक व्यवहार करती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उर्मिला के महान और आदर्श चरित्र की ओर वाल्मीकि जैसे पौराणिक कवियों ने मात्र संकेत ही किया है । गुप्तजी ने उनकी चारित्रिक विशेषताओं का जो विशद वर्णन प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त अनुपम है । उर्मिला की संयोग तथा वियोग की अवस्थाओं का विवरण देकर स्त्री के भावात्मक रूप को अपनी कल्पना से गुप्तजी ने उभारा है । उन्होंने उर्मिला के महद् चरित्र को पतिपरायणता, कर्तव्यनिष्ठा, निस्वार्थ प्रेम, सरलता, दया, त्याग, व्यवहारकुशलता, धैर्य, क्षत्राणी सुलभ स्वाभिमान इत्यादि महान गुणों से सज्जित किया है और "साकेत" की उर्मिला पूर्ववर्ती कवियों की उर्मिला की तुलना में अधिक मानवीय और महान बन गई है । "साकेत" की रचना के समय गुप्तजी मानवतावादी जीवन दर्शन, उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा, नारी चेतना और पात्रों को युगीन संदर्भों में प्रस्तुत करने की तत्कालीन प्रवृत्तियों से अवश्य प्रभावित है । इन सबका प्रतिबिंब "साकेत" की उर्मिला के चरित्र में देखा जाता है और वे सीता के समतुल्य या उनसे भी महान आदर्श उपस्थित करती हैं । इस काव्य में उर्मिला का चरित्र सामाजिक अधिक न होकर रोमांटिक अधिक है । उनका

---

1. साकेत - पृ.288

प्रेमी रूप ही प्रधान है, यहाँ तक कि वे आध्यात्मिक स्वरूप भी धारण कर लेती है ।

कैकेयी

राम कथा के प्रसंग में कैकेयी के चरित्र का विशेष महत्व है । कथा के विकास का मूल सूत्र कैकेयी के हाथों में ही रहता है । कैकेयी यदि राम को वन नहीं भेज देती तो राम कथा का विकास वहीं पर रुक जाता । इस कारण से उनके चरित्र का विशेषमहत्व है । कैकेयी दशरथ की द्वितीय पत्नी है और उनके चरित्र के विश्लेषण का प्रमुख प्रसंग राम वनवास ही है । उनके चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि वे परस्पर विरोधी तत्वों का समाहार प्रस्तुत करती है । एक ओर वे दृढ और हठीली हैं तो दूसरी ओर अत्यन्त उदार और कोमल हैं । इसलिए विभिन्न कवियों ने अपनी कवि भावना तथा युग प्रभाव के अनुसार उनके चरित्र के भिन्न भिन्न रूपों को अपनाया है । वाल्मीकि कैकेयी को अपने स्वाभाविक रूप मे दिखाया है, अतः वे अपने दोषों के बावजूद भी पूर्णतः घृणास्पद नहीं बन गई है । वे पाठक की सहानुभूति बटोरने में सक्षम हैं । खड़ीबोली के कवियों ने कैकेयी के चरित्र का उद्धार करने का परिश्रम किया है । इस कार्य में गुप्तजी ने ही सर्वप्रथम प्रयास किया है । उनके पीछे खड़ीबोली के अधिकांश कवियों ने भी कैकेयी के चरित्र को दोष विमुक्त करने का स्तुत्य कार्य किया है । श्री केदारनाथमिश्र प्रभात ने कैकेयी के चारित्रिक महत्व को उभारने केलिए कैकेयी महाकाव्य की ही रचना की है । कैकेयी के चरित्र का विश्लेषण आगे विस्तार से किया जाएगा ।

कुटिलता

निसर्गतः उदार होने पर भी कैकेयी का चरित्र कुटिलता से आच्छादित रहा है जो उनके चरित्र को युग युग से कलंकित करता आ रहा है ।

पौराणिक राम काव्यों में इसका विशद चित्र खींचा गया है । एक बार जब मंथरा द्वारा उनकी दमित कुटिल मनोवृत्ति भड़कायी जाती है तब वे उसके अधीन बन जाती हैं । राम का राज्याभिषेक और कौसल्या की राजमाता पदवी वे सह नहीं पातीं । उसका मूल हेतु उनकी कुटिल मनोवृत्ति अहंमन्यता ही है । वे किसी को भी अपने से बढ़कर देखना चाहती हैं । इसलिए वे मंथरा से पूछती हैं -

इदन्त्विदानीं संप्रश्ख्येनोपायेन मोञ्यसे ।
भरत: प्राप्नुयाद्राज्यं न तु राम: कथंचन ।।[1]

वे येनकेन प्रकारेण अपनी इच्छापूर्ति केलिए परिश्रम करती हैं । राजा को बुलाकर वे उनसे वर माँगती हैं । अपनी प्रतिज्ञा, कुल मर्यादा आदि का स्मरण दिलाकर हतप्रभ और विवश राजा को और भी सताकर वर देने केलिए वे प्रेरित करती हैं । राजा विविध भाँति उन्हें समझाने का परिश्रम करते हैं, लेकिन अपने हठ से वे तनिक भी विचलित नहीं होती और हतप्रभ राजा को धमकी तक देती हैं[2] । उनकी वर याचना में भी आकण्ठ कुटिलता ही देखी जाती है । उन्होंने भरत केलिए मात्र राज्य ही नहीं माँगा, बल्कि सदा केलिए निष्कण्टक राज्य ही माँगा है और इसकेलिए सबके लाडले राम केलिए चौदह वर्ष का वनवास भी माँगा । लेकिन इससे भी उनकी हठीली कुटिल बुद्धि संतुष्ट नहीं होती है । अपनी इच्छा पूर्ति में आनेवाले सभी अड़चनों को वे दूर करती हैं । इसकेलिए वे अपने वैधव्य तक को वे तुच्छ मानती हैं । उनके चरित्र की अहंमन्यता की चरम सीमा उस समय सर्वाधिक व्यक्त होती है जब वे राजा की मृत्यु को भी शान्त भाव से देखती हैं । तब भी वे आत्मालोचन केलिए तैयार नहीं होती हैं । सपत्नी पुत्र लक्ष्मण, वसिष्ठ, सुमन्त्र तथा पुरवासियों की भर्त्सना से भी वे तनिक भी विचलित नहीं होती । भरत द्वारा राज्य के

---

1. वा॰रा॰ अयो॰ स॰9, श्लोक॰3
2. वही सर्ग॰63, श्लो॰2-9

क्रा देने पर वे उन पर क्रुद्ध हो जाती हैं । भारद्वाज के आश्रम में वे दु:खी अवश्य होती हैं, लेकिन यह ग्लानिवश नहीं बल्कि लोकनिन्दा के कारण । उनकी इस अहंमन्यता और कुटिलता का विशद और सांगोपांग चित्रण रामायण आदि पौराणिक काव्यों में देखा जाता है । कैकेयी के चरित्र की इस कुटिलता का विश्लेषण करते हुए भरत ने स्पष्ट ही कहा है -

क्रोधनामकृतप्रज्ञां दृष्टां सुभगमानिनीम्
ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम् ।।
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् ।।[1]

गुप्तजी जैसे खड़ीबोली के कवियों ने भी इस प्रसंग का चित्रण अवश्य किया है । उन्होंने कैकेयी के चरित्र को सुधारने का परिश्रम अवश्य किया है ।

उदारता

यह सबको विदित है कि कुटिल कैकेयी उदारता की भी प्रतिमूर्ति है । पौराणिक काव्यों में उनकी उदारता की झलक देखी जाती है तो खड़ीबोली के काव्य उनके चरित्र की उदारता से ओतप्रोत हैं । वाल्मीकि की कैकेयी राम राज्याभिषेक के समाचार से अत्यधिक खिन्न उठती हैं । उनमें स्वार्थपरता की गुंजाइश तक नहीं है क्योंकि वे मंथरा के कहते ही अनुकूल कार्य करने के लिए तैयार नहीं हो जातीं । इसी प्रकार खड़ीबोली के राम काव्यों में भी कैकेयी भरत और राम में कोई भेद नहीं मानतीं । पं॰रामचरित उपाध्याय की कैकेयी कहती हैं कि -

---

1॰ वा॰रा॰ अयो॰ स॰92, श्लो॰26

"मंथरे, राम और भरत में कोई भेद नहीं है,
तू हर्ष मना और यह माला उपहार स्वरूप ले[1] ।

गुप्तजी की कैकेयी राम-राज्याभिषेक के समाचार से अत्यधिक प्रसन्न दिखाजाता है[2] परन्तु मंथरा की कपट बुद्धि से कैकेयी का सरल हृदय हार जाता है । खड़ीबोली हिन्दी के कवियों ने सरल हृदया कैकेयी के हृदय परिवर्तन को मनोवैज्ञानिक आकार देकर उनके उदार और सज्जनोचित व्यवहार को प्रकाशित करने का परिश्रम किया है ।

<u>कैकेयी के चरित्र का सदुबल</u>

खड़ीबोली के राम काव्यों में कैकेयी परंपरागत कैकेयी के समान कुटिल नहीं है । उनके मन में राम और भरत केलिए समान ही नहीं, राम के प्रति अधिक ममत्व रहता है[3] । लेकिन मंथरा उनके हृदय को अवश्य फेर देती है । "साकेत" में मंथरा का यह वाक्य -

"किन्तु भरत से सुत पर भी सन्देह
बुलाया तक उन्हें जो गेह"[4] ।

उनके मन को झकझोरता है । यहाँ पर कवि ने कैकेयी के अन्तर्द्वन्द्व का जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा नवीन ही है । गुप्त जी के पहले किसी भी कवि ने यह महान कार्य नहीं किया है ।

---

1. रामचरित चिन्तामणि - पृ.54
2. साकेत - पृ.37
3. वही - पृ.38
4. वही - पृ.41

उसके ममताभरे मातृहृदय पर मंथरा के शब्दों का प्रभाव पड़ने लगता है और वे शंकालु हो जाती हैं। सब कहीं वे किसी भी प्रकार का कुमन्त्र देखती हैं। अपने पुत्र केलिए कुछ करने केलिए उसका मातृहृदय लालायित हो उठता है। मंथरा के कठोर और कुटिल वचनों से विक्षुब्ध होकर अपने पुत्र पर होनेवाले अन्याय का प्रतिकार करने की कैकेयी की भावना पूरी तरह से क्षम्य ही है। राम के प्रति आन्तरिक वात्सल्य से भरे कैकेयी के हृदय को स्वार्थ और ईर्ष्या से परिचालित करके कठोर व्यवहार करनेवाली विमाता के रूप में कवि ने जिस कुशलता से परिवर्तित किया है वह हर तरह से श्लाघनीय ही है।

कैकेयी की यह कठोरता अधिक समय तक नहीं ठहरती, दशरथ के स्वर्गवास तथा भरत की विरक्तिपूर्ण क्रुद्ध वाणी सुनकर उसका हृदय पहले की तरह कोमल बन जाता है। पुत्र के कठोर वचनों से उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है। पश्चाताप की आग में जलानेवाली गुप्तजी की कैकेयी की दीन दशा देखिए -

वैधव्य तुषारावृत विधु लेखा,
बैठी थी अचल तथापि असंख्यतरंगा,
वह सिंही, अब थी हहा, गोमुखी गंगा।"[1]

वे सारे दोषों का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेकर राम से क्षमायाचना करती है और वापस आने की विनती करती हैं[2]। गुप्तजी की कैकेयी की सारी कठोरता पश्चाताप के आसुओं में गलकर करुणा का रूप धारण कर लेती है। गुप्तजी से प्रेरित होकर डॉ॰ बलदेवप्रसाद मिश्र ने भी पश्चाताप विवश कैकेयी का चित्रण किया है जिसमें कैकेयी के चरित्र का सद्पक्ष उभर आता है।

1· साकेत - पृ·195
2· वही - पृ·196,199,202

भरत द्वारा राज्य ठुकराने पर "साकेत सन्त" की कैकेयी विह्वल हो उठती है[1]। इस समस्या को सुलझाने केलिए वे राजा को पुन: जीवित कराने की प्रार्थना करती है[2]। इस कार्य में भी असफल होने पर वे सती होने तक को उद्यत होती हैं। यह उनके पश्चाताप दग्ध हृदय को पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित करता है। चित्रकूट में राम से मिलने पर उन्होंने अपने को दोषी ठहराया और प्रायश्चित्त करने की इच्छा प्रकट की। अत्यधिक विह्वल होकर राम से [illegible] क्षमा याचना करके राज्य संभालने की याचना करनेवाली कैकेयी राम के प्यार केलिए लालायित होती है -

"तुम एक बार "माँ" कहो लाल। बलि जाऊँ।"[3]

इस प्रकार श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र भी पश्चाताप दग्धा कैकेयी के हृदय को प्रकाशित करके उनके चरित्र के सद्पक्ष को उभारने में पूर्णत: सफल हुए हैं। कतिपय कवियों ने कैकेयी के चरित्र को दोष विमुक्त प्रमाणित करने केलिए राम के वनवास का मूल हेतु ही बदल दिया है। "नवीन" जी की कैकेयी अपने स्वार्थ की पूर्तिकेलिए राम को वन नहीं भेजतीं। उन्होंने लक्ष्मण द्वारा इस बात का संकेत कराया है कि कैकेयी आर्य संस्कृति के प्रचार प्रसार केलिए ही राम-लक्ष्मण को वन भेजने केलिए उद्यत होती हैं। वे अनुभवशीला हैं और भलीभाँति जानती हैं कि अपनी महत्वाकांक्षा को साकार करने में राम-लक्ष्मण ही सक्षम हैं। ~~"कैकेयी ने सोच सम ससर रसर सेल यह ससरर~~

"कैकेयी ने सोच समझकर रचा खेल यह सारा अब
सिवा खेलने के है बाकी रहा कौन सा चारा अब।"[4]

---

1. साकेत - सन्त - पृ.74
2. वही - पृ.76
3. वही - पृ.133
4. उर्मिला - पृ.262-263

इस कल्पना का विस्तृत रूप ही श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की "कैकेयी" में मिल जाता है । उनकी कैकेयी उच्च कोटि की विदुषी एवं वीर बाला है । उन्में राष्ट्र गौरव तथा मानवता की रक्षा का ध्यान है । भारत में असुरों के आक्रमण से वे व्यथित होती हैं और राष्ट्र की रक्षा केलिए पति की असमर्थता पहचानने पर वे राम को वन भेजती हैं । दायित्व या कर्तव्य की स्वीकृति के द्वन्द्व में जलनेवाली कैकेयी अन्त में कर्तव्य का वरण करती है । यहाँ उनके चरित्र का सर्वोत्कृष्ट रूप ही अभिव्यंजित होता है । स्वयं दशरथ भी कैकेयी की गरिमा को स्वीकार करते हुए कहते हैं -

कैकेयी ! हे प्रिये ! प्रियतमे ! साक्षी है युग धर्म विधान
सच है तुम न राम की जननी किन्तु तुम्हीं माता, न विमाता[1]

युग की पुकार पर, राष्ट्र की भलाई केलिए राम को भेजकर वे विह्वल होने लगती हैं । भरत के उग्र वचन के सामने वे नतमस्तक हो जाती हैं । फिर भी वे स्वयं विष का प्याला पीकर भी दूसरे को अमृत पिला देती हैं

"अमृत पिये संसार, अमृत की जय, मैं ने पी हाला ।"[2]

उनका यह त्याग अतुलनीय है और हर प्रकार से श्लाघनीय भी है ।

कैकेयी-चरित्र का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी के परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के चरमोत्कर्ष का समन्वयात्मक रूप ही कैकेयी में अभिव्यक्त हो जाता है । कैकेयी चरित्र में मानसिक द्वन्द्व तथा मनोभावों के परस्पर संघर्ष का जितना कुशल चित्रण खड़ीबोली के कवियों ने

1· कैकेयी - पृ·133
2· कैकेयी - पृ·183

राम के आग्रह के समक्ष वे अपने हृदय पर पत्थर रखकर राम को वनवास की

विशेषकर गुप्तजी ने जो किया है वह प्राचीन काव्यों की कैकेयी में मिलना दुर्लभ है । प्राचीन काव्यों में उन्हें निष्ठुर तथा स्वार्थी माता के रूप में चित्रित किया गया है । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर उनके दोषों का प्रक्षालन करके उन्हें आदर्श मानवी का पद दिया है । गुप्तजी ने उन्हें सती साध्वी एवं तापसी चित्रित करते हुए उनके चरित्र में भावुकता का समावेश किया है । डॉ॰बलदेवप्रसाद मिश्र ने उनके पश्चाताप दग्ध हृदय को कथनी से नहीं करनी से भी दिखाया है । श्री केदारनाथमिश्र "प्रभात" की कैकेयी सर्वथा उनकी नवीन सृष्टि है । उन्होंने कैकेयी-चरित्र को महत्वपूर्ण बनाने केलिए राम-वन-गमन का हेतु ही बदलकर उनके चरित्र को उत्कर्ष प्रदान किया है ।

कौसल्या

श्रीराम की माता और दशरथ की प्रथम पत्नी का स्थान ही कौसल्या के चरित्र के महत्व का निदान है । वाल्मीकि रामायण में उनके ममताभरे मातृहृदय का यथार्थ चित्र खींचा गया है । खड़ीबोली के कवियों ने उनके ममताभरे मातृहृदय का उद्घाटन करने के साथ साथ उनके चरित्र को एक आदर्श रूप भी प्रदान किया है । इसका विशद विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

पुत्रस्नेह

अपने इकलौते बेटे श्रीराम के प्रति कौसल्या के मन में सीमातीत स्नेह है । राम राज्याभिषेक के समाचार से वे अत्यधिक खिल उठती हैं । उसी प्रकार राम के वनवास की बात सुनने पर उनका हृदय शोक और दुःख से आन्दोलित हो उठती है। वाल्मीकि ने उनके शोक का विशद चित्र खींचा है ।

इसके विरुद्ध पं॰रामचरित उपाध्याय जी ने अत्यधिक भावुक कौसल्या का चरित्र ही उपस्थित किया है । उनका ममत्व भरा मातृहृदय अत्याचार और अन्याय करनेवाली कैकेयी तथा भरत की जोरदार शब्दों में भर्त्सना करता है।[1]

कौसल्या के चरित्र का विश्लेषण करने से यह देखा जा सकता है कि वे माता का आदर्श रूप ही उपस्थित करती हैं । उनके ममताभरे मातृ हृदय के उद्घाटन में वाल्मीकि से लेकर खड़ीबोली के सभी राम कवि भी सफल हुए हैं । खड़ीबोली के राम काव्यों की कौसल्या रामायण की कौसल्या से अधिक आदर्श चरित्र उपस्थित करती है ।

सुमित्रा

राम कथा में सुमित्रा की भूमिका अत्यन्त संक्षिप्त होने पर भी वे सौ प्रतिशत आदर्शात्मक चरित्र ही उपस्थित करती हैं । उनमें तनिक भी कमजोरी नहीं है । वाल्मीकि ने इस आदर्श चरित्र का वास्तविक एवं मानवीय रूप उपस्थित किया है तो गुप्तजी आदि खड़ीबोली के कवियों ने सुमित्रा के चरित्र को तत्कालीन परिवेश में राष्ट्रीय विचारों से भी अभिभूत चित्रित किया है । उनके चरित्र का आदर्श चार रूपों में देखा जा सकता है - आदर्श पत्नी, आदर्श सपत्नी, आदर्श माता एवं आदर्श विमाता । उनके आदर्श चरित्र का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

---

1. रामचरित चिन्तामणि - पृ॰109

आदर्श पत्नी

सुमित्रा पत्नीत्व का आदर्श रूप ही उपस्थित करती है। वे पुत्र वियोग से शोक विह्वल दशरथ को सांत्वना देती हैं। दशरथ से हमेशा उपेक्षा एवं अवहेलना मिलने पर भी वे हमेशा अपने पति से हमेशा स्नेह और आदर का आचरण करती हैं। जब राम के वियोग से आहत, दशरथ की मृत्यु हो जाती है तब सुमित्रा शोक विह्वल हो जाती है[1]। गुप्तजी की सुमित्रा एक पग आगे बढ़कर सती होने केलिए भी तैयार होती हैं।

आदर्श सपत्नी

सुमित्रा का चरित्र सपत्नी के रूप में भी आदर्श उपस्थित करता है। वे अपनी सपत्नियों से स्नेह और आदर का व्यवहार उपस्थित करती है पुत्र वियोग से विह्वल कौसल्या को सान्त्वना देनेवाली पुत्र वियुक्ता सुमित्रा का रूप अत्यन्त आदर्शात्मक है[2]।

आदर्श माता

सुमित्रा का माता रूप भी अत्यन्त आदर्शात्मक रहा है। धर्मसंस्थापनार्थ वनगमन केलिए प्रस्तुत राम का अनुगमन करने के इच्छुक लक्ष्मण को वे सहर्ष अनुमतिदेती हैं। वे धर्माधर्म को अच्छी तरह जानती हैं और सब कुछ त्याग करके भी धर्म का आचरण करने का उपदेश देती हैं[3]। उनका यह रूप अत्यन्त मनमोहक है। गुप्तजी की सुमित्रा अत्यन्त ओजस्वी वाणी में

---

1. वा० रा० अयो० स०65, श्लो०21-22
2. वही - सर्ग०44
3. वही - स०40, श्लो०6-9

राम का अनुगमन करने तथा धर्म आचरण करने का उपदेश देती है।[1]

आदर्श विमाता

सुमित्रा का विमाता रूप माता से भी महान आदर्श उपस्थित करता है। वे राम के प्रति अपने बेटे से भी आत्मीयता का भाव रखती हैं। वे अपने बेटे को राम की सहायता केलिए सहर्ष वन भेज देती हैं। उनका यह आचरण अत्यन्त अनुपम ही है।

सुमित्रा के चरित्र का अवलोकन करने पर यह देखा जा सकता है कि सुमित्रा का चरित्र वाल्मीकि रामायण से लेकर खड़ीबोली के काव्यों में भी आदर्श ही उपस्थित करता है। खड़ीबोली के कवियों ने मुखरित रूप में न होने पर भी संकेतों में उनके आदर्श चरित्र को सजाया है।

माण्डवी

रामायण जैसे प्राचीन काव्यों में उर्मिला के समान भरत की पत्नी माण्डवी का चरित्र भी उतना मुखरित नहीं हुआ है। लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को उजागर करने का परिश्रम किया है। गुप्तजी ने अवश्य ही "साकेत" में उनके चरित्र का उत्कर्ष किया है। श्री बलदेवप्रसाद मिश्र ने एक कदम आगे बढ़कर उन्हें अपने काव्य साकेत-सन्त" की नायिका बनायी है। अन्य काव्यों में उनके चारित्रिक विकास केलिए विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। गुप्तजी की माण्डवी पतिव्रता ही नहीं, कुलवधू भी है।

---

1. साकेत - पृ.89

उनका आदर्श चरित्र त्याग, कर्तव्य परायणता, सेवा भावना आदि गुणों से देदीप्यमान है और इसका विवेचन आगे किया जाएगा ।

त्याग

तपस्विनी के रूप और वेष में अपने घर को संभालनेवाली गुप्तजी की माण्डवी एक आदर्श चरित्र ही है । जब राम चौदह वर्ष केलिए वन चले जाते हैं तब भरत सन्यास ले लेते हैं । पतिपरायणा माण्डवी भी अपने पति के अनुकूल श्रृंगार प्रसाधनों को छोड़कर तपस्विनी बन जाती है ।[1] साकेत-सन्त में मिश्र जी आहत और विह्वल माण्डवी का अत्यन्त हृदयस्पर्शी आलङ्कारिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं जो अत्यन्त अनुपम भी है । सीता पति के साथ वन जन्य दुःखों का अनुभव करती है, उर्मिला लक्ष्मण के अभाव में राजमहल में रहते हुए भी कष्ट झेलती हे रहती है तो माण्डवी की स्थिति कुछ और ही है । वे महल में है, पति का साथ भी उन्हें मिला है, लेकिन है तो निस्सहाय जैसे की जैसे चन्द्रमा के आगे चकोर ।[2] माण्डवी की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में कवि सफल हुए है ।

सेवा भावना

माण्डवी के चरित्र की और एक उल्लेखनीय विशेषता उनकी सेवा भावना है । अत्यन्त दीन हीन विह्वल अवस्था में भी वे अपने पारिवारिक कर्तव्य को मनोयोगपूर्वक निभाहती हैं । वे राजपरिवार के अन्य लोगों की सेवा शुश्रूषा में संलग्न रहती हैं । विरहिणी उर्मिला को वे

---

1. साकेत - पृ.308
2. साकेत सन्त - पृ.191

सब प्रकार की सहायता देती है[1]। उनके मन में एकान्त प्रेम की इच्छा है जो लोक साधना एवं पारिवारिक सेवा की भावनाओं में व्यक्त हुई है। उनका पति प्रेम अनन्यता का प्रण एवं सन्तोष का सुख लिए हुए हैं -

"मेरे नाथ जहाँ तुम होते, दासी वहीं सुखी होती[2]।"

राम-रावण-युद्ध के समाचार से व्यथित भरत को धैर्य दिलानेवाली माण्डवी का चरित्र श्लाघनीय ही है[3]। साकेत-सन्त के कवि ने भी माण्डवी के चरित्र को त्याग, तप, ममता, कर्तव्यपरायणता आदि गुणों से सज्जित किया है। इन गुणों के साथ साथ मिश्र जी की माण्डवी में वह तीक्ष्णता भी रहती है जिससे जन कल्याण संभव हो। युगीन प्रभाव में आकर माण्डवी यहाँ समाज सेवा को अपनाती है। गान्धीजी के द्वारा निर्धारित पथ पर चलती हुई वह सरल जीवन बिताती है[4]।

प्रिया रूप

"साकेत-सन्त" में मिश्र जी ने अपनी नायिका का प्रिया रूप भी उपस्थित किया है। साकेत-सन्त के प्रथम सर्ग में शिष्ट और मर्यादित प्रेम संलाप में संलग्न माण्डवी का जो चित्र कवि ने खींचा है वह अत्यन्त अनुपम है।

माण्डवी के चरित्र का अवलोकन करने पर यह देखा जा सकता है कि वाल्मीकि के आदर्श किन्तु मौन माण्डवी का चरित्र बीसवीं के काव्यों में आकर बहुत मुखरित हुआ है। "साकेत-सन्त" में मिश्र जी ने उनके

---

1. साकेत - पृ.311
2. वही - पृ.314
3. वही - पृ.312-313
4. साकेत सन्त - पृ.190

चरित्र का सर्वांगीण विकास प्रस्तुत करके उनके साथ पूरा न्याय किया है । गुप्तजी का कार्य भी इस क्षेत्र में कम महत्व का नहीं है जो इस दिशा में प्रथम कडी माना जाता है ।

मंथरा

राम कथा में कैकेयी की दासी मंथरा की भूमिका अत्यन्त संक्षिप्त होने पर भी उनका प्रभाव आद्यन्त इसमें व्याप्त रहा है । रामायण में वे अपनी कुटिल करनी केलिए प्रसिद्ध है ।

कुटिलता

राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर और राजभवन में तदर्थ होनेवाली तैयारियों को देखकर मंथरा को विस्मय हो जाता है और यह विस्मय आगे अमर्ष में परिणत हो जाता है जब वे सुनती हैं कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है ।[1] वे क्रोध से जल जाती हैं और तुरन्त दौडती हुई कैकेयी के पास पहुँचती हैं । वे कैकेयी पर अपनी कुबुद्धि का प्रभाव फैलाना चाहती हैं । बार बार कैकेयी पर किया जानेवाला यह प्रयोग अन्त में मंथरा की विजय में परिणत हो जाता है और कैकेयी उनकी बात को, मान लेती है[2] । मंथरा की कुटिलता यहाँ पर सर्वाधिक व्यक्त हुई है । वाल्मीकि रामायण में मंथरा द्वारा कैकेयी के सामने दिए गए तर्क विस्तार से अंकित किए गए हैं जिसमें उनके चरित्र का यह पक्ष भलीभांति उभर आता है[3] । वाल्मीकि के आधार पर खडीबोली के राम काव्यों में भी मंथरा के चरित्र की कुटिलता पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है । गुप्तजी ने उनकी कुटिलता का विशद चित्र ही खींचा है

1. वा·रा· अयो· स·7, श्लो·12

2. वही - स·7, श्लोक 14-15

3. वही - स·7, श्लोक 8

तो खड़ीबोली के अन्य राम काव्यों में उनकी कुटिलता संकेतों में सजाई गई है ।

मंथरा के चरित्र के द्वारा वाल्मीकि ने दास वर्ग की मनोभावना ही उद्घाटित की है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बड़े आदमियों के सेवक भी उनके साथ तादात्म्य की अनुभूति द्वारा अपने आप में महत्ता का आरोप कर अपने अहं को संतुष्ट करते हैं[1] । यहाँ की मंथरा भी ऐसी एक दासी है । राजा दशरथ की प्राणप्रिया तरुण सुन्दरी कैकेयी की दासी होने से वे आत्मगौरव का अनुभव करती हैं । लेकिन राम राज्याभिषेक के समाचार से वे अपने भविष्य के प्रति आशंकित हो जाती हैं और राजमाता की पदवी प्राप्त कराने केलिए वे कैकेयी को उत्तेजित करती हैं और इस कार्य में वे सफल हो जाती हैं । दशरथ के कलहपूर्ण परिवार में उनकी समस्त आशंकाएं निर्मूल नहीं कही जा सकतीं; वे अधिक स्वाभाविक ही जाती हैं । उनके चरित्र की यह मनोवैज्ञानिक व्याख्या उनकी कुटिलता को कम करने में पूर्ण रूप से सहायक है । अहं प्रेरित होने पर भी उनकी स्वामि भक्ति भी विशेष रूप से श्लाघनीय है । कैकेयी के मायके से आई मंथरा हमेशा अपनी स्वामिनी की हितैषिणी ही है ।

शूर्पणखा

रामायण में रावण की बहिन शूर्पणखा के चरित्र का अलग अस्तित्व है । वे ही कथाप्रसंग को एकदम मोड़कर युद्ध भूमि में पहुँचा देती है । रामायण में उनके राक्षसीय आकार को व्यक्तित्व का मूल कर चित्रण किया गया है । रामायण की शूर्पणखा दुर्मुखी, महोदरी, विरूपाक्षी एवं कुरूपा है[2] ।

1• इन्ट्रडक्शन टू साइकोलोजी – गार्डनर मर्फी – पृ•412

2• वा•रा• अर• का• सर्ग 17, श्लो•10–11

काम रूपा शूर्पणखा की कामासक्ति का भी यथार्थ चित्र वाल्मीकि ने खींचा है[1]। खड़ीबोली के कवियों में विशेषकर गुप्तजी ने शूर्पणखा के चरित्र को विशेष महत्व दी है और उनको नायिकोचित पदवी प्रदान करके "पंचवटी" नामक खंडकाव्य की रचना की है । "पंचवटी" में गुप्तजी ने शूर्पणखा के चरित्र को राक्षसी के रूप से बढ़कर, मानवी के रूप में उपस्थित किया है । उनकी शूर्पणखा दुर्मुखी, महोदरी, विरूपाक्षी एवं कुरूपा नहीं है । वे सुन्दरी के रूप में लक्ष्मण के पास उपस्थित हो जाती हैं । गुप्तजी उन्हें सतृष्ण वासना की मूर्ति बनी हुई प्रमदा के रूप में चित्रित करते हैं[2]। राम के पूछने पर शूर्पणखा अपना परिचय रावण या कुंभकर्ण की बहिन कहकर नहीं, वरन् अपने को एक स्वेच्छाचारिणी स्वतंत्र नारी कहकर देती हैं । वे वासना की पुतली है और राम पर मुग्ध होकर उन्हीं को वरमाला पहनाने आती हैं[3]। राम और लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत होने पर वे विचित्र उलझन में पड जाती हैं और क्रुद्ध होकर अपना राक्षसी रूप प्रकट करती हैं । इसका यथार्थ चित्र गुप्तजी ने प्रस्तुत किया है[4]। गुप्तजी की शूर्पणखा के चरित्र की विशेषता यह है कि उन्होंने मानवीयता के आवरण में उनकी राक्षसीयता को प्रकट किया है । शूर्पणखा की राक्षसता में भी स्त्री सुलभ मुग्ध भाव एवं वाग्वैदग्ध्य है । गुप्तजी ने शूर्पणखा के राक्षसीत्व को मानवीय बना दिया है और राक्षसी विचारों का द्योतन करनेवाला निशाचरी शब्द मात्र उनकेलिए प्रयुक्त किया है ।

गुप्तजी की शूर्पणखा रूपगर्व , ईर्ष्याभावना, उच्छृंखलता और हिंसायुक्त नारी के विकृत रूप को वाणी देती है । शूर्पणखा के चरित्र के माध्यम से कवि ने वर्तमान समाज में दिखाई पडनेवाली स्वतंत्र नारी के भावों को वाणी दी है । उनके चरित्र के माध्यम से कवि ने यह दिखाने का प्रयत्नकिया है कि जब स्त्री अपनी यथार्थ प्रकृति को त्याग कर पुरुष की

---

1. वा॰ रा॰ अ॰ का॰ स॰17, श्लो॰20-22
2. पंचवटी - पृ॰21
3. वही - पृ॰52

क्रूरता को अपनाने का प्रयत्न करती है और उच्छृंखलता के कारण नाना प्रकार की दुरभिसन्धियों में पड जाती है तब असफल होकर गिरती है । यही शाश्वत सत्य कवि ने शूर्पणखा के चरित्र के माध्यम से उद्घाटित किया है ।

निष्कर्ष

खडीबोली राम काव्य के पात्रों को पौराणिक संदर्भ में विश्लेषित करने पर यह देखा जा सकता है कि युगीन प्रभाव ~~तथा कवियों के व्यक्तित्व के प्रभाव~~ तथा कवियों के व्यक्तित्व के प्रभाव में आकर अधिकांश रामकथा के पात्र परिवर्तन के शिकार बन गए हैं । कतिपय कवियों ने राम के मानवत्व को स्थापित करने केलिए उनके चरित्र को दोषविमुक्त बनाया है तो कतिपय कवियों ने मानवीय दुर्बलताओं से युक्त राम का चरित्र भी खींचा है । "पंचवटी", तथा "रामचरित चिन्तामणि" में राम राज्य से वंचित होने से अतीव दुःखी हैं । वे स्थान स्थान पर कैकेयी के प्रति आक्रोश प्रकट करते हैं । इसके अलावा बालि-वध, तथा सीता-निष्कासन के प्रसंग भी उनके चरित्र को कलंक कालिमा में डुबाते हैं । इसके विरुद्ध श्री बलदेवप्रसादमिश्र ने बालि को, साम्राज्यवादी रावण का मित्र तथा प्रजातंत्र की व्यवस्था में विघ्न उपस्थित करनेवाला चित्रित करके राम को दोषविमुक्त करने का प्रयास किया है । हरिऔध जी ने सीता-निष्कासन को निष्कासन नहीं ~~माना~~ माना क्योंकि वैयक्तिक सुखों की अपेक्षा लोकमंगल के अभिलाषी उनके राम सीता के इच्छानुसार ही उन्हें वाल्मीकि के आश्रम भेजते हैं । गुप्तजी के राम भी लोकसेवा में अग्रसर हैं । नवीनजी के राम आध्यात्मवाद के समर्थक हैं तो बलदेव-प्रसाद मिश्र जी के "राम-राज्य" के राम सच्चे राजनीतिज्ञ के पद को अलंकृत करते हैं । उनके राम तो सार्वजनीन एवं विश्वहित की कामना से ओतप्रोत हैं । पुराणों में शेषनाग के अवतार के रूप में मशहूर लक्ष्मण "उर्मिला" काव्य में विश्व कल्याण की कामना से ओतप्रोत, नवसंस्कृति के सन्देशवाहक और प्रसारक हैं ।

"साकेत" में उनके क्षत्रियत्व के साथ साथ उनके हृदय के कोमल पक्ष का भी उद्घाटन किया गया है । "साकेत", "साकेत-सन्त" आदि काव्यों में चित्रित भरत के चरित्र में साधुता और निस्पृहता के साथ साथ क्षत्रियत्व, कर्मठता और सेवा भाव भी देखा जाता है । हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि को देवता या वानर मानना अस्वाभाविक मानकर गुप्तजी, नवीनजी आदि ने उन्हें मानव का पद प्रदान किया है । हनुमान की असाधारण शक्ति का आधार उनकी अनुपम साधना और योगबल ही माना गया है । गुप्तजी ने रावण, शूर्पणखा जैसे राक्षसों को भी मानवीय गुणों से विभूषित किया है । गुप्तजी तथा मिश्र जी ने पुराणों में उपेक्षित शत्रुघ्न के चरित्र को उजागर करके उन्हें वीरता की प्रतिमूर्ति तथा कर्मण्यता के उच्च आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया है । नारी जागरण के प्रभाव में आकर गुप्तजी, मिश्रजी, नवीन जी आदि कवियों ने अनेक पौराणिक नारी चरित्रों का भी उद्धार किया है । गुप्तजी तथा मिश्र जी ने रामायण में उपेक्षित उर्मिला तथा माण्डवी के चरित्र को त्याग, सौन्दर्य, कलाप्रेम, अनुराग, क्षत्रियत्व, विचारशीलता आदि नारियोचित गुणों से विभूषित किया है । इसी प्रकार इन कवियों ने कैकेयी जैसी तिरस्कृत पात्रों के दोषों का प्रक्षालन करके उन्हें सम्मान दिया है । इस ओर सर्वप्रथम कदम गुप्तजी का रहा है तो सर्वाधिक प्रयास केदारनाथ मिश्र "प्रभात" जी ने किया है । खड़ीबोली के काव्यों में सीता का चरित्र परंपरागत पातिव्रत्य के साथ साथ लोकमंगल की भावना से भी सुशोभित है । गुप्तजी ने उन्हें सच्ची समाजसुधारिका का पद प्रदान किया है और "वैदेही वनवास" की सीता लोकमंगल के लिए स्वयं वाल्मीकि आश्रम जाने के लिए उद्यत होती है । इस प्रकार देखा जा सकता है कि रामायण के समस्त पात्र खड़ीबोली हिन्दी काव्य में आकर काफी परिवर्तित ~~दिखाई पड़ते हैं~~ हो गए हैं ।

पंचम अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित महाभारत के पात्र-।

पंचम अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित महाभारत के पात्र

इतिहास, पुराण, धर्मग्रन्थ, नीतिग्रन्थ, और महाकाव्य के रूप में मशहूर महाभारत ज्ञान का भण्डार है । द्वितीय अध्याय में भी स्पष्ट रूप से इस पर प्रकाश डाला गया है । भारतीय जीवन का संपूर्ण तत्व ज्ञान, संपूर्ण धार्मिक आचार-विचार इसमें अभिव्यक्त हुए हैं । भारत का सांस्कृतिक इतिहास इसमें समुज्ज्वल रहा है । सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा तथा अधर्म का क्षय जैसे जीवन-सत्य का उद्घोषणा ही इस चिरंतन साहित्य-सृष्टि का मूल उद्देश्य है । धर्म के पक्षधर पाँच पाण्डवों के द्वारा अधर्मी किन्तु शक्त कौरवों के पराजय के माध्यम से कवि ने इसी शाश्वत जीवन-सत्य की उद्घोषणा की है । महाभारत में क्षात्र-धर्म की प्रतिष्ठा है और क्षात्र धर्म के आधार पर ही परम ज्ञान का उपदेश दिया गया है । अर्जुन, कर्ण, भीष्म, द्रोण, भीम आदि वीर चरित्रों के माध्यम से वीरत्व की प्रतिष्ठा, शोषण का विरोध, कर्मण्यता की आवश्यकता, आशावादिता आदि पर बल दिया गया है । अदम्य वीरत्व के साथ तपस्या

और त्याग की महत्ता की उद्घोषणा भी युधिष्ठिरादि चरित्रों के माध्यम से की गई है । महाभारत के सभी सात्त्विक पात्र अपनी अपनी सीमा में आदर्शवादी है । उनके प्रत्येक कर्म के पीछे आदर्श का आधार दिखाया गया है । द्रोण, विदुर, भीष्म सब अधर्म का पक्ष लेते हुए भी धर्मात्मा बने रहते हैं । व्यक्तिगत कर्तव्य और व्यक्तिगत प्रेम के संघर्ष का उत्कृष्ट एवं आश्चर्य जनक समन्वय ही इन चरित्रों में उपस्थित किया है ।

इस ज्ञान-भण्डार का अक्षय स्रोत गत दो हज़ार वर्षों से भारतीय जन मानस को नाना रूपों में प्रभावित करता आ रहा है । भारतीय साहित्य में महाभारत पर आधारित काव्यों की सुदीर्घ परम्परा रही है। इसके पात्रों के समुज्ज्वल चरित्र से आकृष्ट होकर बीसवीं के भी अनेक कवियों ने महाभारत-कथा के आधार पर काव्यरचना की है । आज का जीवन चंचल है, दृष्टिकोण भौतिक है और वातावरण अनास्थाहीन हो गया है, ऐसी स्थिति में आध्यात्मिकता और भौतिकता को साथ लेकर चलनेवाले महाभारत के पात्रों के माध्यम से कवियों ने लोगों का उद्धार करना चाहा है । महाभारत के प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व के साथ धर्म या आदर्श के जिस शाश्वत रूप का अभिन्न सम्बन्ध है, उसकी पुन:स्थापना ही आज के युग में कवियों का प्रमुख उद्देश्य रहा है । अपनी विचारधारा तथा युगदृष्टि के प्रभाव में आकर सभी कवियों ने महाभारतीय कथा को स्वतंत्र रूप से ग्रहण कर चरित्र दृष्टि में नवीनता का समावेश किया है । महाभारत कालीन हिंसा-प्रतिहिंसा के वातावरण में विकसित पात्रों को कवियों ने अपने युग की समस्याओं का प्रतीक बनाकर उनके परम्परागत रूप को सुरक्षित रखने के साथ नवीनता के आलोक में आज के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित किया है । महाभारत के पात्र महाभारतकालीन व्यक्ति की सीमा से आगे आकर आज के युग में सामाजिक सुधार के स्तम्भ बन गए हैं । प्रियप्रवास के कृष्ण, जयभारत के युधिष्ठिर रश्मिरथी, अंगराज और सेनापति कर्ण के कर्ण, अर्जुन, भीम, भीष्म, द्रोण आदि

पुरुष पात्र और द्रौपदी, गान्धारी, कुन्ती, हिडिम्बा आदि स्त्री-पात्र आज के स्वार्थ-संघर्ष के युग में मानवता के संदेशवाहक हैं । उपेक्षित तथा अनादृत चरित्रों के उद्धार द्वारा मानव मानव की समता का उद्घोषकिया गया है । महाभारत के समुज्ज्वल चरित्रों के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से वर्तमान भारत को अपने अतीत गौरव से परिचित कराया गया है, साथ ही अनेक सामयिक समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है । इसके लिए कहीं पात्रों के आंतरिक संघर्ष का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया गया है तो कहीं उनकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की गई है । आज की नई तथा समसामयिक कविताओं में भी महाभारत के पात्र आज के नए राष्ट्रीय, सामाजिक तथा व्यक्तिवादी संदर्भों में नए-नए अर्थ के संकेत केलिए प्रयुक्त हो रहे हैं । महाभारत के प्रत्येक पात्र ने विवेच्य काल के खड़ीबोली के काव्य में ये कौनसा रूप लिया है इसका विशद अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में किया जाएगा ।

कर्ण

कर्ण महाभारत का एक सशक्त चरित्र है, लेकिन महाभारत में उन्हें जितना स्थान मिलना था उतना नहीं मिला है । शौर्य और पराक्रम में वे अद्वितीय हैं । अर्जुन, युधिष्ठिर जैसे पाण्डव पक्ष के वीर शिरोमणि भी उनके वीरत्व के प्रशंसक हैं । उनकी शौर्य गाथा के साथ उनकी दानवीरता भी उनके जीवन को स्पृहणीय बनाती है । लेकिन उनके जीवन का करुण पक्ष तो यह है कि उनके जीवन की महत्ता को पहचानने केलिए, उनका अंगीकार करने केलिए समाज तैयार नहीं है । उन पर अवैध पुत्र का आरोप लगाकर समाज ने उनका तिरस्कार किया है । जन्म होते ही माता कुन्ती ने उन्हें त्याग दिया और इस प्रकार उन्हें दूसरे की भूल का फल भोगना पड़ता है, माँ और सगे भाइयों के प्रेम से वंचित होना पड़ता है । इससे भी नियति संतुष्ट नहीं होती, अंत तक उन्हें सताती रहती है । उनके गुरुजनों के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने भी उनके साथ छल किया है । छल और कापट्य के सामने भी वे सिर झुकाने केलिए तैयार नहीं हुए बल्कि उन्होंने वीरोचित गरिमा से मृत्यु का वरण किया ।

विषाद की कड़ुवाहट ने उन्हें एक अजेय व्यक्तित्व प्रदान किया ।

महाभारत से लेकर आधुनिक काल तक कर्ण के चरित्र को कोई महत्ता नहीं दी गई है । कवि मनीषियों ने उनका वर्णन नहीं किया है, उन्हें लगभग उपेक्षित सा कर दिया है । लेकिन दलितों और उपेक्षितों के उद्धार के इस आधुनिक युग में राष्ट्रभारती के जागरूक कवि ने हजारों वर्षों से उपेक्षित एवं कलंकित मानवता के मूक प्रतीक कर्ण-चरित्र का उद्धार करने का परिश्रम किया है । उनके चरित्र को उजागर करने के लिए अनेक कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है । आधुनिक कवि ने कर्ण के माध्यम से न केवल कर्ण के उपेक्षित पक्ष को चित्रित किया है, अपितु उनके चारित्रिक पक्षों के द्वारा नवीन आयामों और संदर्भों को प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है[1] । कर्ण-चरित्र को प्रधानता देने वाले अनेक काव्य-ग्रन्थ खड़ीबोली हिन्दी काव्य में लिखे गए हैं जिनमें प्रमुख हैं "रश्मिरथी", 'अंगराज', 'कर्ण', 'सेनापति कर्ण', 'महारथी' आदि । गुप्तजी के 'जयभारत' में भी कर्ण-चरित्र अत्यंत उज्ज्वल रूप में अभिव्यक्त हुआ है । इन कवियों ने कर्ण चरित्र के साथ कैसा न्याय किया है, कर्ण चरित्र की विशेषताओं को किस रूप में आत्मसात किया है, इसका विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

पौरुष

यह कर्ण-चरित्र की सबसे प्रमुख विशेषता है जो महाभारत से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी अभिव्यक्त की गई है । उनके पौरुष की गरिमा अधिकांशतः रंगभूमि में तथा युद्ध-क्षेत्र में झलकती है । अर्जुन जैसे वीर एवं यशस्वी राजकुमार का भी वे सधैर्य सामना करते हैं । पौरुष से ओतप्रोत महाभारतीय कर्ण की सुन्दर झांकी देखिए -

"सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्यपराक्रमः । दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपमः ।
प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा । असंख्येयगुणः श्रीमान् भास्करस्यात्मसंभवः ।"[2]

---

1. अभिशप्त महारथी - मूल्यांकन की कसौटी पर - लक्ष्मण सहाय, नईधारा जून-जुलाई 1981
2. म० आदि प०अ० 135 श्लो०4,5

रंगभूमि में अर्जुन की गर्वोक्तियों से उनका पौरुष प्रज्वलित होता है और वे नाटकीय ढंग से रंगभूमि में प्रवेश करते हैं और ऐसा शस्त्र-प्रदर्शन दिखाते हैं जिससे सब लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं । 'जयभारत' के कर्ण भी पौरुष में किसी से हेय नहीं हैं । रंगभूमि में जाति से निकृष्ट घोषित करके, जब कृपाचार्य उन्हें वीरता-प्रदर्शन से इनकार करते हैं, तब कर्ण उनका सधैर्य सामना करते हैं -

"मैं मनुष्य हूँ और जन सब देख रहे हैं
पूछो उनसे, लोग मुझे क्या देख रहे हैं ?"[1]

सुधारवादी युग का यह विचार निस्संदेह कर्ण के चरित्र को उत्कर्षित करनेवाला है । "रश्मिरथी" के कर्ण का पौरुष इससे एक कदम आगे का है । कवि के विचार में कर्ण का रंगभूमि प्रवेश तो उनकी जवानी का जागना है, उनके पौरुष की पहली आग का फूट पड़ना है । क्योंकि -

"जलद पटल में छिपा किंतु, रवि कब तक रह सकता है ?
युग की अवहेलना शूरमा कब तक सह सकता है ?"[2]

इसी प्रकार अपने कुल और जाति की अवहेलना करनेवाले कृपाचार्य को वे स्पष्ट उत्तर देते हैं -

"पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से, और कवच-कुण्डल से ।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास ।"[3]

---

1. जयभारत - पृ.63
2. रश्मिरथी- पृ.3
3. वही - पृ.5

"रश्मिरथी" में इस प्रसंग के अलावा कुन्ती-कर्ण-संवाद प्रसंग तथा श्रीकृष्ण-कर्ण-संवाद में भी उनके पौरुष की झलक देखी जाती है। स्वयं कवि दिनकर ही पौरुष के कवि रहे हैं। इसलिए उनके नायक कर्ण का चरित्र सब कहीं पौरुष से ओतप्रोत है। उनका कर्ण श्रीकृष्ण से कहते हैं -

"कुल-जाति नहीं साधन मेरा।
पुरुषार्थ एक बस धन मेरा[1]।"

इसी प्रकार कर्ण कुन्ती से स्पष्ट कहते हैं कि उन्हें अज्ञात कुलशीलता की चिन्ता नहीं है, पौरुष से वे सब कुछ पा गए हैं[2]। 'अंगराज' में अर्जुन की चुनौती स्वीकार करके कर्ण रंगभूमि में प्रवेश करते हैं और अतुलनीय पराक्रम का प्रदर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण-कर्ण-संवाद में कर्ण स्वीकार करते हैं कि उनका पुरुषार्थ ही उनके लिए सिद्धि-समृद्धि-प्रसिद्धि-प्रदायक है[3]। लेकिन इसके विरुद्ध "कर्ण" काव्य में कर्ण चरित्र के पौरुष का ज्वलंत तेजोमय रूप अभिव्यक्त नहीं किया गया है। इसके कर्ण अपने पौरुष पर स्वयं शंकालु हैं और अर्जुन के विजयी होने की बात वे अनेक बार दुहराते हैं[4]। 'महारथी' में कवि ने कर्ण-चरित्र के पौरुष प्रदर्शन के लिए समय नहीं खोज निकाला है, लेकिन "सेनापति कर्ण" में भीष्म ने अत्यंत उज्ज्वल वाणी में उनके पौरुष की प्रशंसा की है[5]।

वीरता

यह कर्ण की एक परम्परागत विशेषता है जिसकी अभिव्यक्ति महाभारत से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी की गई है। अर्जुन के अतिरिक्त सभी पाण्डवों को पराजित करना, घटोत्कच जैसे शक्तिशाली राक्षस का वध

---

1. रश्मिरथी - पृ.50
2. वही - पृ.62
3. अंगराज - पृ.163
4. कर्ण - पृ.71
5. सेनापति कर्ण - पृ.120

करना, दुर्योधन के पक्ष के अनेक राजाओं को पराजित कर दिग्विजय करना, महाभारतीय युद्ध में सेनापति-पद से दो दिनों तक युद्ध का संचालन करना, ये सभी घटनाएं उनके अनुपम वीरत्व के निदर्शन हैं ।

उनकी युद्ध कुशलता वीरता से ओतप्रोत होने के साथ साथ धर्म से परिचालित भी है । कर्ण-अर्जुन-युद्ध इसका सुन्दर सबूत है। "कर्ण" काव्य में उनके वीरत्व-प्रदर्शन का विशेष वर्णन नहीं मिलता, लेकिन श्रीकृष्ण,[1] भीष्म[2] आदि की प्रशंसा के माध्यम से कवि ने कर्ण की अनुपम वीरता की अभिव्यक्ति की है ।

कर्ण के वीरता-प्रदर्शन में "अंगराज" के कवि बहुत आगे हैं । यहाँ श्रीकृष्ण खुलकर स्वीकार करते हैं कि श्रीकृष्ण और अर्जुन मिलकर भी धर्मयुद्ध में कर्ण को पराजित न कर सकी[3] । उनके अपरिमेय पराक्रम के सामने सारी पाण्डव-सेना छिन्न-भिन्न हो जाती है[4] । अमित मानवता के मूक प्रतीक कर्ण के चरित्र को गुप्तजी ने वीरत्व के आदर्श, पुरुषार्थ-निष्ठा आदि से विभूषित करके परंपरागत तत्वों को सशक्त बनाया । "महारथी" में कर्ण के वीरत्व को दिखाया गया है, लेकिन वे महाभारत के वीर चरित्र के निकट तक न आ पाए हैं । इसके विरुद्ध "सेनापति कर्ण" में कर्ण की वीरता तथा पराक्रम का विस्तार से वर्णन किया गया है । उनकी अपराजेय वीरता से त्रस्त श्रीकृष्ण-अर्जुन को युद्धविमुख करने की आज्ञा देने केलिए युधिष्ठिर से अनुरोध करते हैं[5] । "रश्मिरथी" में कवि ने कर्ण के इस रूप को सबसे अधिक उजागर किया है । यहाँ के कर्ण को अपने पराक्रम पर पूर्ण विश्वास है, इसीलिए वे जाति-गोत्र से दूर रहने पर भी दुःखी नहीं हैं । "समर की शूरता साकार हूँ"[6] कहनेवाला कर्ण अपने को वीरता का साक्षात्स्वरूप मानते हैं और विजय प्राप्ति केलिए अधर्म को स्वीकारने केलिए वे किसी भी परिस्थिति में तैयार नहीं हैं ।

---

1. कर्ण - पृ.90
2. वही - पृ.79
3. अंगराज - पृ.240
4. वही - पृ.55
5. सेनापति कर्ण-पृ.164-184
6. रश्मिरथी - पृ.158

दानवीरता

दानवीरता भी महाभारत के कर्ण की एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण विशेषता है । अपनी शरण में आनेवाले किसी भी व्यक्ति का कर्ण इनकार नहीं कर सकते हैं । वे ब्राह्मणों को दान दिया करते हैं । उनकी दानवीरता तब अपनी चरम कोटि पर देखी जाती है जब वे छद्मवेषधारी इन्द्र को अपने जीवन का मूल्य अलभ्य-कवच-कुण्डल दान में देते हैं[1]। अपनी माता कुन्ती से उनके चार पुत्रों की प्राणरक्षा के वचन देने का प्रसंग भी उनकी दानवीरता की उच्चता को ही अभिव्यक्त करता है[2]।

खड़ीबोली के कर्ण की तुलना में महाभारतीय कर्ण का दान उतना निष्काम नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे अपने कवच कुण्डल को बचाने का प्रयत्न करते हैं और अंत में इन्द्र से शक्ति के बदले ही कवच-कुण्डल देने केलिए तैयार होते हैं । वे इन्द्र को स्पष्ट रूप में बताते हैं कि यदि कवच-कुण्डल देने से उनका शरीर विकृत हो जाएगा तो वे कवच-कुण्डल नहीं देंगे[3]। लेकिन इसके विरुद्ध दिनकर जी ने कर्ण के दानवीर रूप का सबसे उज्ज्वल चित्र ही खींचा है । कवि ने कर्ण के कवच-कुण्डल दान को युग का अंतिम मूल्य ही प्रमाणित किया है । इस दृष्टि से उनके कर्ण, राम, दधीचि, शिबि, हरिश्चन्द्र सुकरात, ईसा, महात्मा गांधी आदि महानुभावों के समकक्ष हैं[4]। "कर्ण" काव्य के कर्ण भी अच्छी दानवीरता निभाते हैं । वे इन्द्र की याचना के सामने कवच-कुण्डल ही नहीं, प्राण तक देने की अपनी उत्सुकता सूर्य के सामने प्रकट करते हैं । क्योंकि उनके लिए प्रणभंग से बढ़कर मृत्यु ही श्रेयस्कर है ।

---

1. म.वन. प. अ. 310
2. म.उद्योग अ.146
3. म. वन प. अ. 310
4. रश्मिरथी - पृ.61-66

"जयभारत" तथा 'सेनापति कर्ण' में कवच-कुण्डल-दान प्रसंग नहीं उठाया गया है, लेकिन कुन्ती-कर्ण-संवाद प्रसंग में उनकी दानवीरता पूर्ण रूप से अभिव्यक्त की गई है । कुन्ती की विवशता देखकर 'जयभारत' के कर्ण अत्यंत विनय एवं कोमलता से उनके चार पुत्रों के प्राण बचा देने का वादा करते हैं[1] ।

"सेनापति कर्ण" के कर्ण आजीवन अपने दानव्रत का पालन करना चाहते हैं । इस काव्य के कर्ण इतने महादानी हैं कि उनके सामने कुछ भी अदेय नहीं है[2] ।

इस प्रकार देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दानी कर्ण का उज्ज्वल रूप महाभारत की तुलना में खड़ीबोली काव्यों में ही अधिक उजागर हुआ है । 'महारथी' को छोड़कर सभी काव्यों में कर्ण अपनी माँ को उनके चारों पुत्रों के प्राण दे देते हैं । "जयभारत" तथा "सेनापति कर्ण" को छोड़कर शेष सभी काव्यों में भी वे कपटवेषधारी इन्द्र को अपने जीवन का सर्वस्व कवच कुण्डल दान में देकर उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करते हैं ।

कृतज्ञता

महाभारत के कर्ण अत्यंत कृतज्ञ हैं और उनका यह गुण परवर्ती काव्यों में भी जैसे के तैसे अभिव्यंजित किया गया है । रंगभूमि में अत्यंत संकटपूर्ण परिस्थितियों में दुर्योधन ने कर्ण को सहारा प्रदान किया जिसका कर्ण अपने जीवन भर आभारी रहे[3] । कई पूज्य व्यक्ति भी उन्हें अपने पथ से विचलित करने का परिश्रम करते हैं, लेकिन वे सफल नहीं होते । कर्ण सच्चे मित्र का आदर्श प्रस्तुत करते हुए अपने पथ पर अटल रहते हैं । "जयभारत" में भी कर्ण का आदर्शमित्रता झलकती है । यहाँ के कर्ण विवेकी हैं और अच्छी तरह जानते हैं

---

1. जयभारत - पृ.344
2. सेनापति कर्ण - पृ.34
3. म.आदि.प. अ.134,137

कि न्याय पाण्डवों के साथ है । लेकिन उनकी अटूट मित्रता दुर्योधन को त्यागने केलिए तैयार नहीं होती । इसके फलस्वरूप उनका मानसिक द्वन्द्व पश्चात्ताप की ज्वाला में परिवर्तित हो जाता है ।

"हे देव, देव को भी यहाँ मैं हो गया असाध्य-सा
अपने ही राज्य विरुद्ध अब लड़ने को हूँ बाध्य-सा ।"[1]

कर्ण का यह पश्चात्ताप परम्परागत चरित्र केलिए एक नवीनता है जो उनके चारित्रिक उत्कर्ष को बढ़ाने में सक्षम है । इसीप्रकार "कर्ण" के कर्ण भी दुर्योधन की नीचता अच्छी तरह जानते हैं, लेकिन कृतज्ञता-बोध से दबे जाने के कारण वे उनके पक्ष का समर्थन करते हैं[2]। एक कदम आगे बढ़कर "अंगराज" के कर्ण दुर्योधन के समयोचित उपकार से संतुष्ट होकर अपने को देकर ऋण-मुक्त होने का प्रण करते हैं[3]। "रश्मिरथी" में कर्ण चरित्र का यह गुण सबसे उज्ज्वल रूप में प्रकट होता है । जब एक बार कर्ण दुर्योधन का मित्र-पद अलंकृत करते हैं तब वे अपने मित्र केलिए मृत्यु की घाट तक उतरने केलिए कटिबद्ध हैं[4]। मित्र केलिए मृत्यु तक को गले लगाने की उनकी यह आतुरता बिलकुल सराहनीय ही है ।

"सेनापति कर्ण" के कर्ण कृतज्ञता के साथ अत्यंत विनयी भी हैं दुर्योधन द्वारा मित्र के पद और सम्मान से विभूषित होने पर भी वे आजीवन अपने को उनका दास ही मानते हैं[5]।"

---

1. जयभारत - पृ.338
2. कर्ण - पृ.55
3. अंगराज - पृ.29
4. रश्मिरथी - पृ.32
5. सेनापति कर्ण - पृ.45

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि कर्ण का यह कृतज्ञ-स्वभाव महाभारत की तुलना में खड़ीबोली के काव्यों में अधिक दैदीप्यमान है ।

कष्टसहिष्णुता और गुरुभक्ति

महाभारत से लेकर अधिकांश परवर्ती काव्यों में भी कर्ण-चरित्र कष्टसहिष्णुता तथा गुरुभक्ति से जाज्वल्यमान है । परशुराम-आश्रम में घटित घटना इसका सुन्दर निदर्शन है । महाभारत के कर्ण गुरु के शापवचन के सामने नतमस्तक हो जाते हैं;[1] लेकिन "रश्मिरथी" के कवि ने इस प्रसंग में कर्ण की आत्मग्लानि का चरित्र संतोषक रूप प्रस्तुत किया है । कर्ण हृदय से स्वीकारते हैं कि वे छली नहीं है, किन्तु प्रबल कारणों से बाध्य होकर भी उनसे जो हो गया है उसे छल की ही संज्ञा दी जा सकती है[2] । उनके पश्चाताप दग्ध हृदय का प्रदर्शन करके कवि कर्ण की चारित्रिक गरिमा को और भी बढ़ाते हैं[3] । "अंगराज" के कर्ण इसके विरुद्ध अनेकों युक्तियों द्वारा अपनी करनी की युक्तियुक्तता स्थापित करने का प्रयास करते हैं जिससे पाठक की सहानुभूति बटोरने में वे असफल ही देखे जाते हैं । "कर्ण", "जयभारत", "सेनापति कर्ण आदि काव्यों में उनकी गुरुभक्ति पर प्रकाश नहीं डाला गया है ।

पश्चाताप की भावना

यह खड़ीबोली के काव्यों के कर्ण की एक नवीन विशेषता है । महाभारत के कर्ण के चरित्र में सद्गुणों के साथ-साथ अनेक दुर्गुण भी देखे जाते हैं, लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त के ज़रिये उनके दुर्गुणों को धोने का स्तुत्य प्रयास किया है । महाभारत के कर्ण द्यूत सभा में द्रौपदी के प्रति किए गए अत्याचार के औचित्य पर विचार ही नहीं करते हैं ।

---

1. म. शान्ति. प. अ. 3
2. रश्मिरथी - पृ.20
3. वही - पृ.22

वे द्रौपदी को वेश्या कहते हैं और यहाँ तक कहते हैं कि द्रौपदी को सभा में भी रूप में लाया जाय। वे उनके वस्त्रों को उतार फेंकने का आदेश देते हैं[1]। उनके चरित्र की यह परुषता किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं है। लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने उनकी परुषता की मात्रा को कम करने का स्तुत्य प्रयास किया है। "कर्ण" काव्य के कर्ण द्यूत सभा में द्रौपदी के अपमान से अतीव दुःखी हैं और इस पाप-कर्म केलिए प्राण तक देकर प्रायश्चित्त करना चाहते हैं[2]। लेकिन "अङ्गराज" में कर्ण का परम्परागत रूप ही प्रकट होता है तो "जयभारत" में इसके बिलकुल विरुद्ध कर्ण अत्यंत सुसंस्कृत हैं। द्रौपदी के प्रति किए गए अपमान को प्राण तक देकर प्रायश्चित्त करने केलिए वे कटिबद्ध हैं[3]। "सेनापति कर्ण" के कर्ण भी नारी की महिमा जानते हैं और अव्यक्त रूप में ही सही, इसमें भी उनका पश्चात्ताप इंगित किया गया है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त के ज़रिये खड़ीबोली के काव्यों में कर्ण का चरित्र उज्ज्वल रूप धारण कर गया है।

धृष्टता एवं कोमलता

ये कर्ण के चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएं हैं जिनकी अभिव्यक्ति महाभारत से लेकर सभी परवर्ती ग्रन्थों में भी की गई है। कर्ण-कुन्ती-संवाद इसका प्रमाण है। विपक्षी दल में अपने अन्य पुत्रों के विरुद्ध कर्ण को देखकर कुन्ती अतीव दुःखी होती है और वे कर्ण से पाण्डव-पक्ष में रहने का अनुरोध करती है। दुर्योधन का आभारी होकर कर्ण कुन्ती की निन्दा तथा स्वार्थ की भर्त्सना करते हैं[4]। लेकिन ऐसे, होते हुए भी कर्ण का

---

1. म० सभा० प० अ० 68, श्लो० 35, 36, 38

2. कर्ण – पृ० 58

3. जयभारत – पृ० 338

4. म० उद्यो० प० अ० 146, श्लो० 4-8

हृदय संवेदनात्मक रहा है । उसमें दया भरी हुई है । कुन्ती को खरी खोटी सुनाते हुए भी महाभारत के कर्ण उनके प्रति सहानुभूति भी दिखाते हैं । वे कुन्ती को वचन देते हैं कि अर्जुन के अतिरिक्त वे उनके और किसी पुत्र का वध नहीं करेंगे[1] । खड़ीबोली के काव्यों में भी प्रस्तुत प्रसंग में कर्ण का आक्रोश तथा उनकी कोमलता झलकती है । "रश्मिरथी" में कर्ण का आक्रोश अति उग्र रूप धारण कर लेता है । राधा को कुन्ती की तुलना में श्रेष्ठ घोषित करते हुए वे कहते हैं ।

"पथ से वंचित कर, गोदी से निष्कासित कर
परिवार, गोत्र, कुल सबसे निर्वासित कर
फेंका तुमने मुझ भाग्यहीन को जैसे
रहने दो त्यक्त विपन्न आज भी वैसे[2] ।"

इसीप्रकार "रश्मिरथी" के कर्ण जितने जोरदार शब्दों में कुन्ती की भर्त्सना करते हैं उतने ही उन पर दयार्द्र भी हो उठते हैं । वे अपनी असमर्थता उनके सामने प्रस्तुत करके आँसुओं से उसे प्रमाणित भी करते हैं[3] ।

वे बन्धु अर्जुन के अतिरिक्त उनके और किसी पुत्र को न मार डालने का वचन देते हैं और श्रीकृष्णके साथी अर्जुन का पराजय असंभव बताकर उनको सांत्वना भी दे देते हैं । इसके विरुद्ध "जयभारत" के कर्ण कोमलता की प्रतिमूर्ति हैं । वे अपनी माता के ऊपर आक्रोश नहीं करते हैं, उनकी वेदना और दुःख को सही रूप में आँककर माता के सामने कोमल व्यवहार करते हैं - "दो मुझको पद धूलि, तुम्हें मैं दे न सका माँ, मनचाहा[4] ।"

---

1. म० उद्यो०प० अ० 146, श्लो०20,21,23
2. रश्मिरथी - पृ०97
3. वही - पृ०104,109
4. जयभारत - पृ०344

इसके विरुद्ध अङ्गराज के कर्ण का चरित्र धृष्टता से भरपूर है । वे कुन्ती को जननी का व्यवसाय करनेवाली तक कहने में तनिक भी हिचकते नहीं ।[1] उनमें कोमलता की मात्रा बहुत कम ही देखी जाती है । माता कुन्ती के द्वारा बार-बार अनुरोध करने पर ही वे उनके पुत्रों के जीवन-दान करने का वचन देते हैं । "कर्ण" काव्य में कर्ण जोरदार शब्दों में अपनी माँ पर टूट पड़ते हैं । अपने इतिहास को कालिख में आंकनेवाली नारी के प्रति उनके मन में रोष ही रोष है । उनका मत है कि यदि वे कुन्ती के पुत्र हैं तो कुन्ती को शस्त्र प्रदर्शन के समय यह घोषणा करनी चाहिए थी कि कर्ण सूत पुत्र नहीं है ।[2] लेकिन इस काव्य में कर्ण चरित्र की धृष्टता के साथ-साथ उनके दुःखी संवेदनशील हृदय के उद्गारों को भी स्पष्ट करने में कवि पूर्ण सफल हुए हैं । कर्ण के आक्रोश से दुःखी होकर जब कुन्ती लौटने लगती है तब कर्ण उन पर सदय होकर उनके चारों पुत्रों का प्राणदान देते हैं ।[3]

"सेनापति कर्ण" के कर्ण ने सशक्त वाणि में अपना आक्रोश प्रकट किया है ।[4] लेकिन उनकी धृष्टता से अधिक उनकी कोमलता ही इस काव्य में अभिव्यंजित है । वे अपनी माता की विवशता समझने पर अधिक विवश बन जाते हैं और कठोर वचन कहने केलिए क्षमायाचना करते हैं और पश्चात्ताप-विवश होकर काश का वरण करने तक की अभिलाषा प्रकट करते हैं ।[5]

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि मात्रामें अंतर होने पर भी कर्ण के चरित्र की परम्परागत धृष्टता और कोमलता को खड़ीबोली के सभी काव्यकारों ने भी प्रस्तुत किया है । खड़ीबोली के काव्यकारों ने उनकी धृष्टता से अधिक उनके दुःखी संवेदनशील हृदय को प्रकट करके उनके चरित्र को गरिमामय बनाने का परिश्रम किया है ।

---

1. अङ्गराज - पृ.162
2. कर्ण - पृ.66
3. वही - पृ.70-71
4. सेनापति कर्ण - पृ.129
5. वही - पृ.130-131

कर्ण-चरित्र का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाभारत के सशक्त किन्तु उपेक्षित कर्ण के चरित्र का उद्धार करने का जो स्तुत्य प्रयास खड़ीबोली के कवियों ने किया है वह तो प्रतिशः श्लाघनीय ही है। महाभारत के कर्ण अनेक देवोपम गुणों से सुशोभित होने पर भी उनकी आत्मश्लाघा उनके चरित्र को कलंकित करती है। अपनी वीरता अथवा पराक्रम आदि की चर्चा वे प्रायः किया करते हैं। उनका असामान्य दर्प और गर्व के कारण वे भीष्म, द्रोण, परशुराम, कृपाचार्य आदि उनके चरित्र को हेय ही मानते हैं। कृपाचार्य उन्हें क्रूरमति की संज्ञा देकर अर्जुन की तुलना में बहुत हेय प्रमाणित करते हैं।[1] भीष्म भी उन्हें अवज्ञा का पात्र ही मानते हैं। वे उन्हें उत्तम वीरों की पंक्ति में मानने केलिए तैयार नहीं हैं। वे उन्हें कवच-कुण्डलों से शून्य, परशुराम और ब्राह्मण से अभिशप्त लोगों को घृणा की दृष्टि से देखनेवाले ईर्ष्यालु अर्द्धरथी मात्र मानते हैं। द्रोण भी उन्हें उतनी महानता नहीं देते। उनके अनुसार वे युद्ध में अवश्य शौर्य और अभिमान प्रदर्शित करते हैं, लेकिन युद्ध के सामने भाग खड़े होते हैं :-

"रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः[2]।"

खड़ीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को अति अहं की भावना से विमुक्त करके गरिमामय बना दिया है। इस दृष्टि से कविवर दिनकर ने ही सर्वोच्च कार्य किया है। कर्ण चरित्र के परम्परागत गुणों को सशक्त बनाने के साथ उन्होंने कर्ण चरित्र को अनेक नवीन गुणों से भी सज्जित किया है। प्रत्येक प्रसंग में महाभारत के कर्ण की चारित्रिक कमी को दूर करने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। एक उज्ज्वल आदर्श मूर्ति के रूप में उनके कर्ण देदीप्यमान

---

1. म॰ द्रोण॰प॰ अ॰158, श्लो॰44-47
2. म॰ उद्यो॰प॰ अ॰168, श्लो॰ 9

रहते हैं। कवि ने कर्ण के मुख से ही स्पष्ट किया है कि संसार के सामने कतिपय आदर्शों की स्थापना केलिए उनका जन्म हुआ है। वे इन आदर्शों की प्रतिमूर्ति हैं। वे नियति के भाल पर भी पाँव रखने में समर्थ वीर हैं, विकट परिस्थितियों में भी सत्पथ पर चलनेवाले सच्चे मनुष्य हैं। वंश-गौरव के चाबुक से पीड़ित, समाज से उपेक्षित तथा पिता का नाम बताने में असमर्थ लोगों केलिए भी वे यही संदेश सुनाते हैं कि कर्म से विमुख न बनो, दुःख से न डरो और किसी भी सुख की प्राप्ति केलिए पाप से संधि न करो। उनका कर्ण लोगों के सामने यही धर्म स्पष्ट करते हैं कि बलिदान से कभी पीछे न हटना तथा अतिम तेज के साथही जीना और मरना। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि कर्ण के महत आदर्श रूप को प्रस्तुत करने में कवि दिनकर सर्वाधिक सफल हुए हैं। इसी प्रकार 'अङ्गराज' के कर्ण भी हेय नहीं है। आनंद कुमार ने परम्परागत गुणों के साथ साथ कुछ नवीन गुणों से भी उनके कर्ण को संजोया है। कवि ने उन्हें लोकप्रिय राष्ट्रनेता तथा कुशल शासक का भी पद दे दिया है। "अङ्गराज" की जनता पुष्पवर्षा से उनका स्वागत करती है, 'स्वतंत्रता का अग्रदूत' तथा 'देशप्राण' जैसे विशेषणों से उन्हें विभूषित करती है[1]। वे शासन केलिए प्रजातंत्र को अपनाते हैं और सत्य और अहिंसा, न्याय और धर्म के सहारे वे राज्य का संचालन करते हैं[2] जिससे जनता स्वस्थ और सुखी हो जाती है[3]। कर्ण के चरित्र का यह पक्ष महाभारत तथा परवर्ती सभी काव्यों केलिए नवीन है। लेकिन कर्ण के चरित्र की परम्परागत कमियों को धोने में कवि उतना सफल नहीं हुए हैं। द्रौपदी के अपमान से उनके कर्ण विमुक्त नहीं हुए हैं, फिर भी 'अङ्गराज' में कर्ण का चरित्र अवश्य उत्कर्षित हुआ है। "जयभारत" में गुप्तजी ने कर्ण की वीरता, त्याग आदि परम्परागत गुणों को सशक्त बनाने के साथ साथ उनके उदात्त एवं निष्कलंक मन का प्रदर्शन करके कर्ण के चरित्र को गरिमामय बना दिया है।

---

1. अङ्गराज - पृ.34-35
2. वही - पृ.38
3. जयभारत - पृ.338

उनके कर्ण की ईर्ष्याभावना ही उन्हें अनुचित कार्य करने केलिए बाध्य बनाती है[1]। यहाँ भी गुप्तजी कर्ण के चारित्रिक उत्कर्ष को दिखाने में पूर्णतः सफल हुए हैं। लेकिन इसके विरुद्ध "कर्ण" काव्य में कर्ण का बिलकुल नवीन रूप ही प्रस्तुत किया गया है। उनके चरित्र को उत्कर्षित करने के प्रयास में उनके परम्परागत तेज, वीरता, पुरुषार्थ आदि सब खोया गया है। यहाँ के कर्ण अत्यंत भावुक है, अनन्य श्रीकृष्ण-भक्त हैं और निर्भय बलिदानी का पद अलंकृत करते हैं। वे शत्रु को पराजित करने के बदले, प्रसन्न मन से अपने प्राणों का परित्याग करने के अभिलाषी है। अपनी अतिभावुकता में वे अपने जीवन तक को व्यर्थ मानते हैं। कुन्ती द्वारा परित्यक्त होने पर वे अतीव दुःखी दिखाई पड़ते हैं -

"घृणा, अनादर, तिरस्क्रिया, यह मेरी करुण कहानी
देखो, सुनो कृष्ण। क्या कहता इन आँखों का पानी[2]।"

कर्ण चरित के परम्परागत गुणों के विकास में असमर्थ होने पर भी नवीन गुणों के समावेश द्वारा कर्ण का चारित्रिक उत्कर्ष दिखाने में कवि सफल हुए हैं। इसी प्रकार "सेनापति कर्ण" में कर्ण के परम्परागत गुणों का विकास दिखाने में कवि असफल हो जाते हैं। "सेनापति कर्ण" में कवि ने कर्ण के चरित्र को उजागर करने केलिए अनेक नवीन गुणों से इन्हें विभूषित किया है। उनके कर्ण तो स्त्री की महत्ता माननेवाले ईर्ष्या - द्वेष रहित अत्यंत विनयी है, शत्रु के प्रति भी उनके मन में निन्दा नहीं है, अहंकार या दर्प उन्हें छू तक नहीं गया है। लेकिन उनके पौरुष पर यहाँ प्रकाश नहीं डाला गया है। फिर भी नवीन गुणों से सुसज्जित होने के कारण यहाँ कर्ण का चरित्र भव्य और आकर्षक बन गया है। सन 1954 में रचित 'लिपथगा' में भगवतीचरण वर्मा ने अपने सबसे प्रिय चरित्र कर्ण को सभी परम्परागत गुणों से विभूषित

---

1. जयभारत - पृ.338
2. कर्ण - पृ.50

किया है । कवि कर्ण की अमन्यता पर मुग्ध है । कर्ण की अहंमन्यता के उद्घाटन द्वारा कवि यही शाश्वत सत्य उद्घाटित करना चाहते हैं कि उसके अति होने पर महानाश अनिवार्य है ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि खड़ीबोली के कवि विविध प्रकार से - परम्परागत गुणों की सशक्त अभिव्यक्ति द्वारा, कुछ नवीन गुणों से विभूषित करके, कुछ पौराणिक कमियों को धोकर कर्ण के चरित्र को उत्कर्षित करके सामने उपस्थित करने में सफल हुए हैं ।

युधिष्ठिर

महाभारत के प्रमुख पात्र युधिष्ठिर का चरित्र अत्यंत व्यापकता लिए हुए है । आरंभ से अन्त तक वे अपने महान प्रभाव से "महाभारत" में देदीप्यमान रहते हैं । मानवीय दुर्बलताओं से युक्त एक महान नेता के रूप में उनका चरित्र सामने आता है । उनके चरित्र की विशेषता तो यह है कि यह वीर कुलीन चरित्र से भिन्न अत्यंत सत्वगुण सम्पन्न और सात्विक दृष्टि से परिपुष्ट है और त्याग, दया, विनय, सहिष्णुता, अविचल प्रेम आदि मानवीय गुणों से ओतप्रोत है । मानव होने के नाते महाभारत के युधिष्ठिर के चरित्र में कुछ मानवीय दुर्बलताएं अवश्य देखी जाती है । लेकिन उनके महत् गुणों के अनंत सागर की तुलना में इन दुर्बलताओं का स्थान बहुत ही तुच्छ है । महाभारत में युधिष्ठिर के चरित्रांकन के प्रमुख प्रसंग है -वारणावत-यात्रा, द्रौपदी-स्वयंवर, द्यूत-प्रसंग, वन में दुर्योधन-गन्धर्व-युद्ध, जयद्रथ-प्रसंग, अरणि-मथनिका-प्रसंग, युद्ध-प्रसंग, भीष्म वार्ता तथा स्वर्गारोहण प्रसंग । महाभारत में अत्यंत व्यापक रहने के कारण महाभारत पर आधारित खड़ीबोली के अधिकांश काव्यों में भी उनके महान चरित्रका उद्घाटन हुआ है । खड़ीबोली के कतिपय कवियों ने उनकी कलंक-कालिमा को धोकर उन्हें पूर्णत: एक आदर्श मानव बनाने का परिश्रम किया है तो कुछेक कवियों ने कौरव दल को निर्दोषी ठहराने के प्रयास में

युधिष्ठिर के चरित्र के साथ पूर्ण रूप से अन्याय किया है । जहाँ पर धर्म के स्वरूप की हानि से महाभारत के युधिष्ठिर का चरित्र में कुछ अंत:संघर्ष दिखाया गया है वहाँ पर खड़ीबोली के कवियों ने मनोवैज्ञानिकता के सहारे उनके चरित्र के अंत:संघर्ष और मानसिक द्वन्द्व का विस्तृत, जीता जागता चित्र खींचा है । उनके चरित्र का विशद विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

उत्तरदायित्व बोध

बचपन में ही पिता पाण्डु की मृत्यु होने के कारण ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते माँ तथा छोटे भाइयों के लालन-पालन का कार्य उनके कंधों पर आ जाता है और वे यह कार्य बहुत अच्छे ढंग से निभाते हैं । महाभारत से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी युधिष्ठिर का चरित्र इस गुण से देदीप्यमान है । भीम, अर्जुन जैसे उनके शक्तिशाली अनुज भी उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं ।

आज्ञापालन

युधिष्ठिर बड़ों के आज्ञाकारी हैं । महाभारत के वारणावत, द्रौपदी स्वयंवर, द्यूत, युद्ध और शांति प्रसंग में उनका यह गुण पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है महाभारत के युधिष्ठिर यह जानते हैं कि वारणावत भेजने के अवसर पर धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति दूषित है फिर भी वे उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं । महाभारत में वारणावत प्रसंग में युधिष्ठिर के चरित्र के आज्ञा पालन के रूप के साथ साथ उनकी असहायता प्रकट होती है[1] । खड़ी बोली के कवियों ने विशेषकर गुप्तजी ने युधिष्ठिर के चरित्र को यहाँ पर

---

1. म. आदि प. अ. 142, श्लो. 11

अधिक उदात्त बनाने का परिश्रम किया है । यहाँ के अत्याचार असहाय होने से नहीं, अत्यंत उच्च शील के कारण ही धृतराष्ट्र की आज्ञा को शिरोधार्य करने केलिए कटिबद्ध होते हैं[1] । इसी प्रकार द्रौपदी-स्वयंवर प्रसंग में भी गुप्तजी ने युधिष्ठिर के चरित्र को महाभारत से अधिक उदात्त बना दिया है । महाभारत में द्रौपदी के पंचपत्नीत्व को स्वीकारने केलिए आदेश मिल जाने पर उनका मन दुविधा में पड जाता है । यहाँ उनका आज्ञापालन उतना विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता । लेकिन "जयभारत" में युधिष्ठिर विवेकपूर्ण उक्तियों द्वारा माता की आज्ञा को ~~फिर~~ शिरोधार्य करते हैं -

बोले धर्मात्मज धृतिशाली
वर पार्थ वधू है पांचाली ।
हो वर ज्येष्ठ का पद पावें
हो देवरत्व पर बलि जावें ।
भोगे यों पाँचों सुख इसका[2] ।

शान्ति तथा सहनशीलता

युधिष्ठिर अत्यंत शान्त स्वभाव के हैं । विपद् परिस्थितियों में भी वे अपने मन को संयमित रखते हैं । महाभारत में द्यूत सभा में द्रौपदी के अपमान तथा विराट सभा में सैरन्ध्री के विलाप में यह पूर्णरूप से अभिव्यक्त होता है । महाभारत में अपनी पत्नी को अपमानित करने के प्रयास को भी समचित्तता खोये बिना वे देखते रहते हैं । यहाँ तक कि शत्रुओं के वध केलिए उद्धत भीम को भी वे सान्त्वना देते हैं[3] । युधिष्ठिर जैसे अति कोमल तथा

1• जयभारत - पृ•70
2• वही - पृ•120
3• म•सभा•प•अ•72, श्लो•16,17

उच्च शीलवाले व्यक्ति मात्र इस कार्य में समर्थ हो जाते हैं । गुप्तजी ने यहाँ पर कोमलता से अधिक उन्हें तेजस्विता दी है और उनके चरित्र को और भी उदात्त बनाने केलिए द्यूत के कुप्रभाव से चेतनाशून्य युधिष्ठिर के द्वारा द्रौपदी को दाँव पर रख दिया है।[1]

दया एवं क्षमा

महाभारत के युधिष्ठिर आदि से अंत तक क्षमा और दया की प्रतिमूर्ति है । प्रतिशोध भावना उनके पवित्र चरित्र को छु तक नहीं गई है । अत्याचार और अन्याय करनेवाले शत्रु को भी वे मित्र मानने केलिए तैयार हैं । दुर्योधन को गन्धर्वों के बन्धन से मुक्त करना इसका सुन्दर निदर्शन है[2]। खड़ीबोली के कवियों ने भी युधिष्ठिर की दयालुता का सुन्दर चित्र खींचा है । "वनवैभव" के दया की प्रतिमूर्ति युधिष्ठिर का चित्र देखिए -

"कौरवों ने जो अत्याचार, किये हैं हम पर बारम्बार,
करेंगे उनका हमीं विचार, नहीं औरों पर इसका भार,
क्रूर कौरव अन्यायी हैं, हमारे फिर भी भाई हैं ।[3]"

इसके अलावा अत्याचार और अनाचार करनेवाले हिडिम्ब तथा जयद्रथ को उचित दंड देने केलिए आतुर भीम के हाथों से वे उनके प्राणों की रक्षा करते हैं । श्री० सियाराम शरण गुप्त के "नकुल" काव्य में भी उनकी दयालुता की सुन्दर अभिव्यक्ति देखी जाती है । अपने अनुजों के अभाव में जब ऋषि आकर हरिण के सींग से अपनी अरणि-मथनी प्राप्त कराने की याचना करते हैं तब वे उनकी सहायता करने केलिए तुरंत तैयार हो जाते हैं[4]।

1• जयभारत - पृ•146

2• म•वन•प• अ•243

3• जयभारत - पृ•238

4• नकुल - पृ•10

त्याग

महाभारत के युधिष्ठिर अत्यंत त्यागी हैं, वे पूर्ण रूप से निस्पृह और अनासक्त हैं, उनके मन में राज्य के प्रति कोई अनन्यासक्ति नहीं है । दुर्योधन से सिर्फ पाँच गाँव या तो कहीं रहने केलिए सिर्फ पाँच घर ही मिलें तो वे उनसे सन्धि करने केलिए तैयार हैं । अधिकार की रक्षा केलिए, राज्य की प्राप्ति केलिए, युद्ध का मार्ग अवलम्बित करने केलिए आतुर द्रौपदी तथा भीम को वे शान्ति तथा त्याग का संदेश प्रदान करते हैं[1] । 'सेनापति कर्ण' के अलावा खड़ीबोली के सभी काव्यों में भी उनके इस परम्परागत गुण के साथ पूर्ण रूप से न्याय किया गया है । युधिष्ठिर के शत्रु और मित्र दोनों उनके इस गुण से अभिज्ञ हैं । "रश्मिरथी" के कर्ण युधिष्ठिर-चरित्र के त्याग पर प्रकाश डालते हुए श्रीकृष्ण से कहते हैं कि युधिष्ठिर अत्यधिक त्यागी होने के कारण मेरे जन्म की कथा से अवगत होने पर वे पूरा राज्य मुझको दे देंगे[2] । इसलिए कर्ण अपने जन्म की कथा को गुप्त रखने का उपदेश श्रीकृष्ण को दे देते हैं । यहाँ पर युधिष्ठिर की त्याग भावना पूर्ण रूप से अभिव्यंजित है । 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर की आत्मग्लानि उनकी अनासक्ति को ही प्रस्फुटित करता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका समर्थन करते हुए कहा है कि आत्मग्लानि का उदय शुद्ध और सात्त्विक अंतःकरण से ही हो सकता है । आत्मसंघर्ष का चित्रण यद्यपि 'महाभारत' तथा 'जयभारत' में भी मिल जाता है तो भी इसकी सब से सुन्दर अभिव्यक्ति 'कुरुक्षेत्र' तथा 'अंधायुग' में ही देखी जाती है । महाभारत के युधिष्ठिर युद्ध की विनाशक लीला से विक्षुब्ध होने पर भी अपने को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके क्षात्र धर्म को दोषी ठहराने का प्रयत्न करते हैं[4] ।

---

1. म.वन.प. अ. 36
2. रश्मिरथी - पृ.57
3. त्रिवेणी - पृ.134
4. म.शान्ति.प. अ.7, श्लो.5

वे क्षत्रियों के उस धर्म की निन्दा करते हैं जो क्षत्रिय होने के नाते व्यक्ति को युद्ध की प्रेरणा देते हैं । "जयभारत" के युधिष्ठिर की वाणी देखिए -

"दोष नहीं मेरा यदि है तो क्षात्र धर्म का
हम अपराधी क्षात्र धर्म पालन के हैं[1] ।"

लेकिन इसके विपरीत कुरुक्षेत्र के युधिष्ठिर युद्ध की ताण्डव लीला से अत्यंत दु:खी और विवश होकर आत्मग्लानि से जलते हुए सभी दोषों केलिए अपने को दोषी ठहराते हुए कहते हैं -

पाँच असहिष्णु नर के द्वेष से ।
हो गया संहार पूरे देश का[2] ।"

"अंधायुग" में अपने पर युधिष्ठिर की आत्मग्लानि को एक कदम और आगे दिखाकर कवि ने एक नवीन जीवन सत्य की भी उद्घोषणा करने का जो स्तुत्य प्रयास किया है वह यों है -

"ऐसे भयानक महायुद्ध को
अर्धसत्य, रक्तपात, हिंसा से जीतकर तिलक हारा
हुआ अनुभव करना यह भी यातना ही है[3] ।

यहाँ पर कवि युधिष्ठिर के चरित्र के त्याग और निस्पृहता को उद्घाटित करने में पूर्णत: सफल हुए हैं । अन्तिम स्वर्गारोहण प्रसंग में भी युधिष्ठिर के चरित्र की निस्पृहता ही पूर्ण रूप से अभिव्यंजित हुई है ।

1· जयभारत - पृ·409
2· कुरुक्षेत्र - पृ·6
3· अंधायुग - पृ·106

वे अपने से अधिक मानवता को अधिक महत्व देते हैं । शुनकसाथी केलिए स्वर्ग तक का त्यागना, आत्मीयों की स्वीकृति केलिए नरकवास तक को अपनाने की आतुरता उनके चरित्र की निस्पृहता ही अभिव्यक्त करती है । स्वर्गारोहण के समय गिरते हुए अपने बन्धुजनों की गलती पर टिप्पणि करना युधिष्ठिर के महान त्यागी व्यक्तित्व केलिए बाधक समझकर गुप्तजी ने अपने युधिष्ठिर के चरित्र को पूर्ण आदर्श रूप प्रदान करने केलिए युधिष्ठिर द्वारा यह स्वीकारा गया है कि अपने अहंभाव के कारण ही बन्धुजन का पतन संभव हो गया है[1] ।

समानता के समर्थक

युधिष्ठिर अत्यन्त समतावादी हैं । उनके सामने छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं है । वे सब के प्रति समानता के भाव रखते हैं । अरणि-मथनि प्रसंग में उनके चरित्र का यह गुण ही अभिव्यक्त हुआ है[2] । अपने यशस्वी, वीर, युद्ध, पराक्रमी अर्जुन, भीम आदि अनुजों से भी बढ़कर वे माद्री पुत्र नकुल को जीवित देखना चाहते हैं । छोटों के प्रति उनका यह समता भाव पूर्ण रूप से सराहनीय ही है । आधुनिक युग के "नकुल" काव्य में युधिष्ठिर के चरित्र का यह समता भाव विस्तृत रूप में चित्रित किया गया है । लोगों का उद्धार करने केलिए सब के प्रति प्रेमभाव दिखाने की या सबको समान समझने की अपनी आवश्यकता कवि युधिष्ठिर के माध्यम से ही अभिव्यक्त करते हैं -

करना है यदि हमें यहाँ यह पाप निवारण,
हो अभीष्ट सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण[3] ।

1· जयभारत - पृ·441-442
2· म·वन·प·अ· 313
3· नकुल - पृ·101

युधिष्ठिर के चरित्र की यह विशेषता अन्य अनेक जगहों पर भी अभिव्यक्त हुई है । दुर्योधन [illegible] विग्रह युद्ध प्रसंग में वे भीम को शत्रु और मित्र के भेदभाव को मिटाकर सबको समानता देने का उपदेश देते हुए कहते हैं - "भाई बन्धुओं में मतभेद झगड़े होते ही रहते हैं । इससे आत्मीयता नहीं चली जाती ।"[1] 'जयभारत' में भी इस प्रसंग में युधिष्ठिर का समताभाव पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है । इसके अलावा राजसूय-यज्ञ प्रसंग में अतिथि मात्र सब देव रूप थे जो हों आर्य अनार्य" कहकर गुप्तजी ने उनकी समानता को एक [illegible] पग आगे चित्रित किया है[2] । 'नकुल' काव्य में ही युधिष्ठिर के चरित्र की इस विशेषता की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति की गई है । यहाँ के युधिष्ठिर आज के समाज की विडम्बना प्रस्तुत करते हुए शोषण के विरोध में अपना तीखा विचार प्रस्तुत करते हैं[3] ।

मानवीय दुर्बलताएं

महाभारत के युधिष्ठिर का चरित्र देवोपम गुणों से अभिभूत होकर भी उसमें कुछ मानवीय दुर्बलताएं भी देखी जाती हैं । सत्यवादी होकर भी द्रोण-वध केलिए मिथ्या भाषण करना[4], कौरव-पक्ष के योद्धाओं जैसे भीष्म, कर्ण, द्रोण आदि से भयभीत होकर कायरों जैसा प्रलाप करना आदि उनके चरित्र को सदा केलिए कलंकित कर देते हैं । युधिष्ठिर के चरित्र की और एक दुर्बलता है द्यूतक्रीडा । शकुनि उनकी इस कमजोरी से परिचित है । वे जानते हैं कि द्यूतक्रीडा में पारंगत होने पर भी युधिष्ठिर द्यूतक्रीडा के निमन्त्रण को स्वीकार करेंगे और अवश्य पराजित होंगे[5] । खड़ीबोली के [illegible] कतिपय

---

1. म.वन.प.अ.243, श्लो.2
2. जयभारत - पृ.142
3. नकुल - पृ.101
4. म.द्रोण.प. अ.190
5. म.सभा. अ.48, श्लोक 19

कवियों ने उनके चरित्र को इन दुर्बलताओं से भी विमुक्त करके उन्हें पूर्णत: आदर्श रूप प्रदान करने का प्रयास किया है तो कतिपय कवियों ने उनकी इन दुर्बलताओं का विस्तार से वर्णन किया है । 'जयभारत' में गुप्तजी ने उनकी इन दुर्बलताओं को मिटाने का प्रयत्न ही किया है । गुप्तजी ने युधिष्ठिर के असत्य भाषण का समाधान इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

> नरक झलका में, सोचा युधिष्ठिर ने
> दुर्गति से मेरी सबकी सुगति हो[1] ।

लेकिन "रश्मिरथी" में कवि ने उनके चरित्र की दुर्बलताओं का विशद चित्र खींचा है । उनकी कायरता पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं -

> "भागे वे रण को छोड़, कर्ण ने / झपट दौड़ कर गहा ग्रीव
> कौतुक से बोला, "महाराज" / तुम तो निकले कोमल अतीव
> हाँ, भीरु नहीं, कोमल कह कर / ही जान बचाए देता हूँ[2] ।

द्रोणवध के प्रसंग में उन्हें असत्यवादी भी घोषित किया गया "अंगराज" तथा "सेनापति कर्ण" में भी अपने चरितनायक कर्ण के चरित्र को उजागर करने के प्रयास में युधिष्ठिर के चरित्र को पूर्ण रूप से गिराया गया है । "अंगराज" में आनन्द कुमार युधिष्ठिर को कामुक, कुचक्री, स्वार्थान्ध तथा कायर प्रमाणित करने में तनिक भी हिचकते नहीं[3] । श्री० लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी उन्हें स्वार्थी तथा वंचक सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है[4] ।

---

1. जयभारत - पृ०385-386
2. रश्मिरथी - पृ०165-166
3. अंगराज - भूमिका पृ०19-22
4. सेनापति कर्ण - पृ०7

इसी प्रकार 'अन्धायुग' के युधिष्ठिर का चरित्र भी दुर्बल रेखाओं से बंधा हुआ है। इच्छा रखते हुए भी भीम द्वारा युयुत्सु को अपमानित करने से न रोक पाना, कुटुम्ब पर अंकुश न ले पाना, प्रहरियों की कटूक्तियाँ आदि उनके दुर्बल व्यक्तित्व के द्योतक हैं। यहाँ पर युधिष्ठिर निर्बल व्यक्तित्व रखनेवाले नेतृत्व वर्ग के साथ-साथ पेशेवर राजनीतिक वर्ग के भी प्रतीक हैं। लेकिन कवि ने उनके चरित्र को सुधारने का प्रयास भी अवश्य किया है। आत्मग्लानि से पीड़ित, युद्ध के बाद युद्ध और विजय की निस्सारता उद्घोषित करनेवाले युधिष्ठिर का जो चित्र उन्होंने सौंपा है[1] वह अत्यंत अनुपम है। एक कदम आगे बढ़कर कुरुक्षेत्रकार ने युधिष्ठिर के चरित्र का सबसे उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है। यहाँ के युधिष्ठिर आत्मग्लानि से अत्यधिक विवश दिखाई पड़ते हैं। विजयी होने के बाद भी वे पराजितों के दुःख से आतुर हैं और पश्चात्ताप करने केलिए हिमालय-प्रस्थान केलिए लालायित होते हैं। इस प्रकार कवि ने उनके चरित्र का पूर्ण रूप से उत्थान किया है।

युधिष्ठिर के चरित्र का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कतिपय मानवीय दुर्बलताओं से युक्त होने पर भी युधिष्ठिर एक आदर्श चरित्र ही है। आज के युग की अनेक समस्याओं जैसे शोषण, प्रतिशोध आदि के सामने कवि ने युधिष्ठिर के त्यागपूर्ण और दयालु जीवन को उपस्थित करके लोगों का उद्धार करने का सफल प्रयास ही किया है। उनके चरित्र के माध्यम से कवि यही उद्घोषणा करना चाहते हैं कि त्याग, दया और क्षमा का महत्व शाश्वत है।

---

1. अंधायुग - पृ.106

अर्जुन

महाभारत के वीर चरित्रों में अर्जुन का नाम सबसे उल्लेखनीय माना जाता है । महाभारत में अनेक प्रसंगों पर उनका अद्वितीय वीरत्व उद्घोषित किया गया है । वीरता के अलावा महाभारतकार ने अर्जुन के चरित्र को अन्य मानवीय गुणों से भी विभूषित किया है । महाभारत के अर्जुन की महिमा तो यह है कि मंगलाचरण में ही वाचिक ढंग से नारायण के साथ इस नर को भी महत्वपूर्ण माना गया है[1] । आधुनिक काल में अर्जुन के चरित्र पर आधारित कोई स्वतंत्र काव्य कृति नहीं है, किन्तु महाभारत पर आधारित सभी काव्यों में इस वीर चरित्र का चरित्रांकन किया गया है । अधिकांश आधुनिक कवियों ने महाभारत के अनुकूल ही अर्जुन के चरित्र को खींचा है । सभी आधुनिक काव्य भी अर्जुन के शौर्य वीरत्व से तेजोमय है । लेकिन परीक्षा अर्जुन का मोह, एकलव्य, कर्णार्जुन युद्ध आदि प्रसंगों में खड़ीबोली काव्य के अर्जुन का चरित्र मानसिक द्वन्द्व तथा मानवीय दुर्बलता से युक्त रहता है । अर्जुन चरित्र की विशेषताओं का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

शौर्य वीरत्व

यह अर्जुन के चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है और महाभारत से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी यह अभिव्यक्त हुआ है । महाभारत में उनके चरित्र की असामान्य वीरता, पराक्रम तथा धनुर्धरत्व को प्रस्फुटित करनेवाले प्रमुख प्रसंग हैं - द्रुपद-पराजय,[2] लक्ष्य-वेध,[3] खांडवन-दाह,[4] किरातवेषधारी शंकर की पराजय,[5] चित्र गन्धर्व राजा की पराजय,[6] विराट-गोह

1· म·आदि·प·अ·1, श्लोक·1
2· वही अ·137
3· वही अ·187
4· वही अ·224
5· वही वन·प·अ·40
6· वही वन·प·अ·168-170

प्रसंग पर सारी कौरव सेना की पराजय,[1] भीष्म, भगदत्त, जयद्रथ तथा कर्ण जैसे योद्धाओं का वध। रंगभूमि प्रवेश में ही उनके अद्वितीय वीरत्व उद्घोषित किया गया है[2]। द्रुपद-पराजय के प्रसंग में अर्जुन अपनी अतुलनीय वीरता का प्रदर्शन करते हुए द्रुपद को बांधकर द्रोण को समर्पित करते हैं। लक्ष्यवेध-प्रसंग में मत्स्य भेदन में अकेले वे ही सफल होते हैं और द्रौपदी को पाने में समर्थ हो पाते हैं। जयद्रथ वध के प्रसंग में अर्जुन का शौर्य और वीरत्व अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचता है। कर्णार्जुन युद्ध में भी उनकी वीरता की सशक्त अभिव्यक्ति की गई है। द्रुपद-पराजय की घटना "जयभारत" में भी उठाई गई है जो महाभारत के अनुकूल ही है। लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने रंगभूमि प्रसंग में उनके वीर चरित्र में मानसिक द्वन्द्व का भी समावेश किया है। कर्ण के नायकत्व पर लिखे गए खड़ीबोली के सभी काव्यों में इस प्रसंग में अर्जुन की वीरता खतरे में पड़ जाती है। कर्ण की अतुलनीय धनुर्धरता के सामने उनके सिर झुकाना तक पड़ा, लेकिन वे आत्मसम्मान की रक्षा केलिए कर्ण की चुनौती स्वीकार करके लड़ने केलिए उद्यत होते हैं। "जयभारत" में वीरता की गर्वोक्ति करनेवाले कर्ण को द्वन्द्वयुद्ध केलिए ललकार कर वे अपने अद्वितीय वीरत्व की सुरक्षा करते हैं। इसी प्रकार जयद्रथ वध प्रसंग में अर्जुन चरित्र की धनुर्धरता तथा अटूट पराक्रम खुलकर अभिव्यक्त होता है। इस प्रसंग को लेकर गुप्तजी ने अर्जुन चरित्र की वीरता की खुलकर अभिव्यक्ति केलिए अलग खण्डकाव्य "जयद्रथ वध" की ही रचना की है। इसमें गुप्तजी ने अर्जुन के चरित्र की सत्य-निष्ठा तथा धर्मनिरपेक्षता दिखाकर नवीन रंग भी चढ़ाया है[4]। इसी प्रकार "एकलव्य" प्रसंग में भी अर्जुन चरित्र की वीरता निष्प्रभ दिखाई गई है। वहाँ अर्जुन की तुलना में

---

1. म॰विराट प॰अ॰66
2. म॰ आदि॰प॰ अ॰133
3. जयभारत - पृ॰66
4. जयद्रथवध - पृ॰83

निषादराजकुमार एकलव्य ही श्रेष्ठ धनुर्धर माने जाते हैं । इस प्रसंग में ~~अर्जुनका~~ अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण करके उनके चरित्र को ऊपर उठाने का प्रयास है । महाभारत के अर्जुन एकलव्य के अंगूठा काट लिये जाने के अवसर पर किसी मानसिक द्वन्द्व से पीड़ित नहीं है । असल में वे अत्यधिक प्रसन्न ही है । लेकिन "एकलव्य" काव्य में अर्जुन एकलव्य की साधना की प्रशंसा तथा निस्पृहता की स्तुति करने के साथ साथ अपने अहंकार पर भी अतीव दुःखी होते हैं । वे अपने चरित्र की दुर्बलता स्वयं स्वीकारते हुए कहते हैं -

"सत्य ही मैं आशाब्धि में रहा हूँ असफल
तभी तो मैं मानहीन होके यहाँ बैठा हूँ ।[1]

अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व की चरम स्थिति वहाँ व्यक्त होती है जहाँ वे एकलव्य की अनुपम धनुर्धरता देखकर आर्य जाति का मान नष्ट होने की शंका से व्यग्र होकर एकलव्य की दक्षिण भुजा काटने की कल्पना करते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी नीचता समझकर वे अपने को धिक्कारते हैं ।[2] एकलव्य में कवि ने अर्जुन के चरित्र पर कीचड़ फेंकने के साथ साथ कवि ने उन्हें ऊपर उठाने का परिश्रम भी अवश्य किया है । कवि ने सभी दोषों को व्यक्ति स्वभाव का दोष न बताकर राजवंशों का दोष प्रमाणित किया है । अर्जुन ने अंत में एकलव्य की गुरुभक्ति से प्रभावित होकर क्षमायाचना द्वारा अपने दोषों को धो दिया है -

"क्या करें, गुरुभक्ति सीखी आज तुमसे
मैं ने राजवंश की महत्वाकांक्षाओं से
गुरु को क्या हीनमाना, तुमने निषाद हो
गुरु का महत्व सिखाया इस विश्व को[3] ।"

---

1. एकलव्य - पृ॰264
2. वही - पृ॰266-267
3. वही - पृ॰297

"जयभारत" में भी एकलव्य प्रसंग में निषादकुमार एकलव्य के सामने अर्जुन चरित्र की वीरता और धनुर्धरता उतना उदीयमान नहीं है[1]। वहाँ पर कवि ने अर्जुन के पश्चाताप-दग्ध हृदय को दिखाने का प्रयत्न नहीं किया है जिससे अर्जुन का चरित्र सदा केलिए कलंकित हो जाता है।

अन्तिम युद्ध, कर्णार्जुन-युद्ध में भी अर्जुन का चरित्र मानसिक द्वन्द्व से पीड़ित है। कर्ण जैसे असामान्य वीर को सामने पाने पर वे अत्यंत भयभीत हो उठते हैं। लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने वहाँ पर अर्जुन का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके अर्जुन के चरित्र को उजागर करने का प्रयास किया है। "सेनापति कर्ण" में जब कर्ण का सामना करने का प्रश्न उपस्थित होता है, तब श्रीकृष्ण अर्जुन को बचाना चाहते हैं। लेकिन द्रौपदी द्वारा ललकारने पर उनकी वीरता फिर एकदम जाग उठती है[1]। उनके स्वाभिमान और द्वन्द्वपूर्ण मनस्थिति के उद्घाटन में कवि यहाँ पूर्णतः सफल हुए हैं। अर्जुन केशव की आज्ञाकारिता में भी अनायास अविश्वास व्यक्त करते हैं[2]। पत्नी से ऐसी ललकार सुनकर इनकी प्रतिक्रिया अत्यंत मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक हुई है और अर्जुन का मानवीय स्वभावपूर्ण रूप से अभिव्यक्त भी हुआ है। यहाँ पर महाभारत के चरित्र को कवि ने अपनी नई दृष्टि दी है और चरित्र का पुनःसृजन किया है। इस प्रकार के द्वन्द्व की स्थिति से जिस वीरत्व का चित्रण हुआ है वही सच्ची वीरता है। महाभारत के अर्जुन गर्व से अपनी वीरता का वर्णन करते हैं तो "सेनापति कर्ण" के अर्जुन सहज प्रकृति से अपने वीरत्व का वर्णन करते हैं। इसके विरुद्ध "अंगराज" में कवि ने अर्जुन चरित्र को हेय दिखाने का प्रयास ही किया है। यहाँ के अर्जुन तो कपटाचारी हैं, छली हैं और सच्चे वीर भी नहीं हैं। उनकी विजयप्राप्ति को छल या विधि का प्रभाव उद्घोषित किया गया है। अपने चरितनायक कर्ण चरित्र को उत्कर्षित करने केलिए उनके प्रतिद्वन्द्वी का अपकर्ष आवश्यक है तथा न्यायोचित भी है।

---

1. सेनापतिकर्ण - पृ. 164-165
2. वही - पृ. 165

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि महाभारतीय अर्जुन का असामान्य वीरचरित्र आधुनिक काव्यों में आकर उतना तेजदीप्त नहीं हुआ है । फिर भी कुछेक कवियों ने उनके साथ पूर्ण न्याय किया है ।

गुरुभक्ति आज्ञाकारिता एवं धर्मपरायणता

अर्जुन चरित्र की और एक उल्लेखनीय विशेषता उनकी गुरुभक्ति है । गुरु की आज्ञा का पालन करने में तथा उनकी इच्छापूर्ति करने में वे सदैव सतर्क रहे है और गुरु द्रोण के प्रिय शिष्य भी बन जाते हैं । महाभारत में गुरु द्रोण को ग्राह से मुक्त करने में तथा द्रोण के इच्छानुसार द्रुपद को बन्दी बनाने में[1] उनकी गुरु भक्ति स्पष्ट होती है । जयभारत तथा परवर्ती काव्यों में भी उनके चरित्र की गुरु भक्ति की सशक्त अभिव्यक्ति की गई है । एकलव्य प्रसंग में उनकी अनन्य गुरुभक्ति खतरे में पड जाती है । धनुर्वेद में एकलव्य की अनन्य दक्षता देखकर वे गुरु-निन्दा करने को तनिक भी हिचकते नहीं[2] । कुशल किशोरे रामकुमार वर्मा ने अर्जुन को चरित्र को बचाने का प्रयत्न किया ।

अर्जुन चरित्र की आज्ञाकारिता भी उनके आदर्शात्मक व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रमाण है । अपने अग्रज की तुलना में अत्यधिक वीर होने पर भी वे हमेशा अपने अग्रज के आज्ञाकारी हैं । महाभारत में अनेक जगहों पर इसकी अभिव्यक्ति देखी जाती है । द्रौपदी स्वयंवर में,[3] द्यूत सभा में[4] तथा चित्ररथ-युद्ध में[5] यह स्पष्ट रूप से झलकती है । द्रौपदी स्वयंवर में मत्स्यभेद द्वारा अर्जुन द्रौपदी को जीत लेते हैं, लेकिन माता की आज्ञा से, अग्रज के कहने पर उनके पंचपतीत्व का विरोध भी नहीं करते हैं । अपना प्रत्येक कार्य वे युधिष्ठिर पर समर्पित करते हैं । "जयभारत" में भी गुप्तजी ने अर्जुन की आज्ञाकारिता का इसी रूप में चित्रण किया है - "मैं कृष्णा को लाया पर हूँ, परिवेत्ता नहीं

1· म· आदि· प·अ· 137
2· वही - 131
3· वही - 187
4· म· सभा·प·
5· म· वन· प· अ·244-245

सुदेवर हूँ[1]।" अपने संपूर्ण जीवन में अर्जुन भगवान कृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। महाभारत युद्ध इसका स्पष्ट सबूत है। बन्धु-बान्धवों तथा गुरुजनों के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए उनकी धर्मपरायणता भिझकती है। लेकिन भगवान कृष्ण की आज्ञा के सामने उनको सिर झुकाना पड़ता है। 'जयभारत' में वे भीष्म वध के समय अतीव दुःखी बन जाते हैं। शरशय्या-शायी भीष्म से वे कहते हैं कि -

"तात तुम्हें मार के जीना अभिशाप ही है[2]।"

वे द्रोण वध से धृष्टद्युम्न को रोकते हैं और युधिष्ठिर को भी यह कहकर लज्जित करते हैं -

"हाय आर्य, यह क्या किया आपने ?
आपके निकट भी क्या राज्य बड़ा सत्य से[3]।"

सभी परवर्ती काव्यों में भी अटल गुरुभक्त, आज्ञाकारी एवं धर्मपरायण अर्जुन का चरित्र देदीप्यमान रहता है।

भावुकता

अभिमन्यु वध का प्रसंग अर्जुन के भावुक हृदय का उद्घाटन करने में सक्षम है। इस प्रसंग में उनके चरित्र के शौर्य के साथ साथ उनके दुःख क्षोभ और करुणा की भी मार्मिक व्यंजना की गई है। महाभारत में अर्जुन को चक्रव्यूह की रचना की सूचना मिलते ही अपने पुत्र के अनिष्ट की आशंका

1• जयभारत - पृ•120

2• वही - पृ•376

3• वही - पृ•387

होती है[1]। अत्यंत वीर होने पर भी उनका पितृत्व व्याकुल होने लगता है। वे व्याकुलता में स्वयं मृत्यु का वरण करने की अभिलाषा व्यक्त करते हैं। आधुनिक युग में इस प्रसंग पर आधारित काव्यों में जयद्रथवध, अभिमन्यु-वध आदि प्रमुख हैं। इन काव्यों में भी अर्जुन के भावुक हृदय के उद्घाटन में कवि पूर्णतः सफल हुए हैं[2]। अन्य काव्यों में यह घटना प्रासंगिक रूप से चित्रित की गयी है। अतः इनमें अर्जुन के इस गुण की विस्तृत अभिव्यक्ति नहीं की गई है।

<u>अर्जुन के चरित्र की नवीन विशेषताएं</u>

अर्जुन के परम्परागत रूप को सशक्त बनाने के साथ साथ खड़ीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को अत्यधिक आकर्षक एवं भव्य रूप प्रदान करने केलिए उस पर नवीन रंग चढ़ाया है। "जयभारत" के अर्जुन अनुपम धनुर्धर होने के साथ साथ प्रकृति के प्रति अत्यन्त आसक्त भी हैं। बारह वर्षों के अपने वनवास में वे प्राकृतिक सौन्दर्य को लूटने में तथा तीर्थयात्रा करने में समय व्यतीत करते हैं। वे अभिन्न्रय भिखारी होने के साथ साथ पत्नी पर विशेष अनुरक्त भी हैं। अपनी पत्नी की याद में वे इन्द्राणि रूप की प्रेमाभ्यर्थना को ठुकरा देते हैं। उनका आदर्शात्मक जीवन उपस्थित करने में कवि पूर्ण सफल हुए हैं। वे उर्वशी से कहते हैं कि स्वर्ग की हवा में उन्हें द्रौपदी की ठंडी सांस का अनुभव हो रहा है, नन्दन वन के प्रत्येक फूल उनकी व्यथा भरे मुख के रूप में उनकीओर देख रहा है[3]। 'सेनापति कर्ण' में भी अपनी पत्नी के साथ प्रेम केली में रत अर्जुन का चित्र खींचा गया है। वे अपनी पत्नी को प्रसन्न करने में लगे रहते हैं जब द्रौपदी बाहर जाना चाहती है उस समय अर्जुन की आतुरता देखिए -

---

1. म. द्रोण. प. अ72, श्लो.15
2. जयद्रथ वध - पृ.33
3. जयभारत - पृ.163

"प्राणेश्वरी !" द्रौपदी विलासी कहने लगा
बीती रात आधी यह देखो पुष्पशय्या जो
प्राणेश्वरी ! तुमको बुला रही है प्रेम से
सूनी जो करोगी इसे, सूनी क्या दिवावरी
होगी नहीं मेरे लिए ?"[1]

"नकुल" काव्य में अर्जुन की चारित्रिक विशेषताओं को विश्लेषित करने का अवसर नहीं मिल गया है, फिर भी कवि ने मानव महत्ता पर प्रकाश डालने इलिए अर्जुन के चरित्र को ही प्रस्तुत किया है । स्वर्ग में इन्द्र के द्वारा अर्जुन के स्वागत का जो विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है वह मानव की महत्ता ही उद्घोषित करता है । क्योंकि स्वर्ग में अर्जुनकिसी राज्य या राजा का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं । मात्र सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व ही करते हैं[2] ।

नरेन्द्र शर्मा के "द्रौपदी" काव्य में अर्जुन चरित्र की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की गई है -

"कुल पर पावक इन्द्र / इन्द्र का अभिमतत्व ही अर्जुन
आर्जव नर का आग्नेय / कहा द्रुपद ने शर का स्वर सुन[3] ।"

कुल मिलाकर सभी काव्यों में चित्रित अर्जुन के चरित्र का विश्लेषण, करने पर यह देखा जा सकता है कि दिव्य शक्ति संपन्न महाभारत के अर्जुन का चरित्र खड़ीबोली के कवियों की कुशल लेखनी से आदर्श मानव का चरित्र बन गया है । खड़ीबोली के कवियों ने मनोविश्लेषण द्वारा अर्जुन की कमियों को धोकर उन्हें आदर्श मानव के पद पर प्रतिष्ठित किया है तो कतिपय

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.60
2. नकुल - पृ.33
3. द्रौपदी-पृ. 2

कवियों ने दुर्बलताओं से युक्त अर्जुन के चरित्र को खींचकर उनके मानवत्व की पुष्टि की है । जो भी हो, महाभारतकार ने उन्हें जितनी महत्ता दी है उतनी महत्ता उन्हें देने केलिए खड़ीबोली के कवि तैयार नहीं है ।

दुर्योधन

धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन का महाभारत में अपना अलग अस्तित्व है । महाभारत में इनका गुण-दोष सम्मिश्रित चरित्र ही प्रस्तुत किया गया है; लेकिन ऊपरी अध्ययन से उनके अवगुण मात्र देखे गए हैं । महाभारतकार में पाण्डव पक्ष अत्यन्त प्रबल होने के कारण उन्होंने ऐसा किया होगा । दुर्योधन के चरित्र पर आधारित कोई भी स्वतंत्र काव्यकृति खड़ीबोली साहित्यमें नहीं है । लेकिन महाभारत पर आधारित सभी काव्यों में उनका चरित्र अभिव्यक्त हुआ है । दुर्योधन के चरित्र को लेकर खड़ीबोली के कवियों ने विभिन्न विचारधाराएं अपनाई हैं । जगदीश नारायण त्रिवेदी आदि ने मात्र उनके बुरे पक्ष की अभिव्यक्ति की है तो मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर आदि प्रमुख कवियों ने उन्हें सुयोधन बनाने का प्रयास किया है जबकि आनन्द कुमार तथा लक्ष्मीनारायणमिश्र ने तर्क द्वारा उनके अवगुणों को भी गुण प्रमाणित करने का प्रयास किया है । उनके चरित्र की मुख्य विशेषताओं पर आगे प्रकाश डाला जाएगा ।

पाण्डव विद्वेष

पाण्डव विद्वेष केलिए दुर्योधन का चरित्र महाभारत से ही मशहूर रहा है । महाभारत में यह अनेक जगहों पर अभिव्यक्त हुआ है । अकारण

हमेशा पाण्डवों को विशेषकर भीम को सताते रहते है। भीम को मृत्युमुख में डालते हुए उन्हें विष देना,[1] वारणावत प्रसंग,[2] द्यूतक्रीडा की योजना[3] बनाना और षड्यन्त्र से पाण्डवों को वनवासी बनाना और वनवासी पाण्डवों को और भी दुखी बनाने की असफल योजना बनाना,[4] ये सब उनके पाण्डव विद्वेष के परिचायक है। द्रौपदी चीर हरण प्रसंग पर उनकी दुष्टता और विद्वेष अपनी चरम कोटि पर देखी जाती है। युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ से प्राप्त अपार ऐश्वर्य को देखकर ईर्ष्यालु दुर्योधन उन्हें परास्त करने केलिए द्यूत की योजना बनाते है। युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवों के सामने ही द्रौपदी के चीर-हरण का उद्यम उनकी पैशाचिकता को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है।[5] "जयभारत"[6] दुर्योधन वध" आदि के कवियों ने भी उनकी दुष्टता और पाण्डव विद्वेष का खूब चित्रण करके उनके परम्परागत हीन चरित्र को सशक्त रूप में प्रकाशित किया है। इससे भी दुर्योधन का दर्प संतुष्ट नहीं होता है। राज्य ही नहीं, पाँच गाँवकी भिक्षा माँगनेवाले युधिष्ठिर की धर्मभावना को भी समझने केलिए वे तैयार नहीं हैं। श्रीकृष्ण की महात्मता का अंगीकार करने केलिए भी उनकी दुष्टबुद्धि असमर्थ होती है। युद्ध रोकने केलिए, संधि प्रस्ताव लेकर आनेवाले श्रीकृष्ण को भी वे बंदी बनाने की असफल योजना बनाते हैं।[7] युद्ध में अपनी विजय को सुनिश्चित बनाने केलिए श्रीकृष्ण से सहायता की याचना,[8] बलराम तथा श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न,[9] छल से पाण्डवों के मामा शल्य को अपना सारथी बनाना,[10] ये सब उनके दुर्बल पक्ष के द्योतक हैं। महाभारत में मृत्यु की अंतिम घडी तक वे अपनी कुप्रवृत्तियों पर गर्विष्ठ रहे हैं।

---

1. भाषा भारत - अ.127,129
2. वही आदि.प.अ.143 श्लो.1-16
3. म. सभा.प.अ.59
4. म.वनप. अ.238
5. म. सभा.प.अ.68
6. जयभारत - पृ.146-147
7. म.उद्यो.प.अ.128
8. म.उद्यो.प.अ.7
9. म.उद्यो.प.अ.7
10. म.उद्यो.प.अ.8

न्याय और धर्म को पहचानने के लिए वे तैयार नहीं होते हैं । भीम द्वारा उनकी जाँघ तोड़ा जाने पर वे इसके लिए श्रीकृष्ण को दोषी ठहराते हैं[1] । खड़ीबोली कवियों ने भी दुर्योधन चरित्र की दुष्टता और पाण्डव विद्वेष का हूबहू चित्रण करके उनके परम्परागत दुष्ट चरित्र को सशक्त बनाया है । दुर्योधन वध में दुर्योधन चरित्र की दुष्टता दिखाने में कवि महाभारत से भी एक कदम आगे है । महाभारत के दुर्योधन की अपेक्षा यहाँ के दुर्योधन अधिक नीच, दुष्ट, कायर, प्रपंची तथा कामुक हैं । द्यूत सभा में दुर्योधन की चेष्टाओं को देखिए -

"पुन पाण्डवों को देख दुर्योधन प्रसन्न अधीर था
स्थिर दृष्टि करके देखता वह द्रौपदी की ओर थे
रख हाथ बाईं जाँघ पर इंगित तुरंत उसने किया
आ "बैठ इस पर" मौन वाणि से यही था । कह दिया[2] ।

लेकिन इसके विरुद्ध "जयभारत" में कवि दुर्योधन की नीचता की मात्रा को कम करने के परिश्रम में लगे हुए हैं । 'जयभारत' में भी कवि ने स्थान स्थान पर दुर्योधन को दुष्ट, कपटी, वंचक आदि विशेषणों से विभूषित किया है, लेकिन उसके अनुकूल उनके कुकृत्यों का जोरदार वर्णन करने का परिश्रम नहीं किया है । शायद उनका उदारवादी दृष्टिकोण ही इसके पीछे कार्यरत होगा । 'जयभारत' के दुर्योधन शाश्वत पाण्डव विरोधी नहीं हैं । अश्वत्थामा द्वारा समूल पाण्डव विनाश की अभिलाषा प्रकट करने पर वे कहते हैं -

"किन्तु गुरु पुत्र एक पिण्डदाता छोड़ना,
जीवन का बैर रहे मृत्यु के भी साथ क्या ?"[3]

---

1. म० शल्यपर्व०अ०61
2. दुर्योधन वध - पृ०60
3. जयभारत - पृ०399

संस्कृति और संस्कारों के प्रति यह आदरभाव प्रकट करने वाले गुप्त जी के दुर्योधन परम्परागत चरित्र से बिलकुल भिन्न ही है। पराजित होने पर भी मृत्यु के पहले पांचाल सेना तथा द्रौपदी पुत्रों की हत्या के समाचार से महाभारत के दुर्योधन आनन्द का अनुभव करते है। लेकिन "जयभारत" के[1] दुर्योधन "हूँ" कहकर खिन्नता से इस समाचार से प्रतिकूल होते हैं। अंतिम वेला में गर्व भरी वाणी में श्रीकृष्ण को धिक्कारनेवाले महाभारत के दुर्योधन के स्थान पर गुप्त जी ने पश्चात्ताप-दग्ध दुर्योधन का चित्र ही खींचा है। समझौते का आह्वान करनेवाले कृपाचार्य से वे अपनी विवशता प्रकट करते हैं। पश्चात्ताप की अग्नि में जलनेवाले दुर्योधन का हृदय युधिष्ठिर की धर्मभावना को समझने में समर्थ बन जाता है -

"किन्तु जिन्हें मैं ने पाँच गाँव भी नहीं दिये
सन्धि करने केलिए कैसे कहूँ उनसे
मैं ने जो कराया यह इतना विनाश है
व्यर्थ कर दूँ क्या इसे ? आप ही बताइये
क्या मुख दिखाऊँगा मरों को मर कर मैं ?

इस प्रकार महाभारत के दुर्योधन को गुप्त जी ने सुयोधन बनाने का सफल प्रयत्न किया है। लेकिन लक्ष्मीनारायण मिश्र, आनन्द कुमार, दिनकर आदि कुछ प्रमुख कवियों ने उनकी दुष्टता की नई व्याख्या खोज निकाली है। जिस प्रकार महाभारतकार ने दुर्योधन की दुष्टता और पाण्डव विद्वेष केलिए उनके चरित्र के दर्प, ईर्ष्या और अहंमन्यता को दोषी ठहराया है तो इन क्रान्तिकारी आधुनिक कवियों ने उन्हें गर्वीला, ईर्ष्यालु बनानेवाली परिस्थितियों को दोषी ठहराया है। इन्होंने तर्क द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति-चरित्र को ऐसा ही आकार प्राप्त हो जाएगा। इन कवियों के अनुसार दुर्योधन के पाण्डव विद्वेष का

---

1. जयभारत - पृ.399

प्रमुख कारण पाण्डवों का जन्म ही है जिसका "रश्मिरथी"[1] सेनापति कर्ण[2] और "अंगराज" में स्पष्टीकरण हुआ है । पाण्डवों के जन्म की कथा को दुर्योधन अपने वंश का कलंक मानते हैं । उनके अनुसार पाण्डवों ने ही लोकधर्म तथा राजधर्म की उपेक्षा की है । दुर्योधन द्रोणवध के बाद कहते हैं -

"कुल का लोकधर्म और राजधर्म को
तोड़ने चले हैं जो है श्रुति के विधान को
औरस हो राजपुत्र वे ही राज्यपद के
होते अधिकारी यही श्रुति का विधान है[3] ।"

"अंगराज" में आनन्द कुमार ने तो "कुल का उत्तरदायित्व भी युधिष्ठिर पर डाल दिया है और दुर्योधन के चरित्र को निष्कलंक बनाने का परिश्रम किया है[4] । इसी प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी द्रौपदी के अपमान का मुख्य दोषी दुर्योधन को नहीं बताया है । द्रौपदी ने पहले दुर्योधन और कर्ण को भरी सभा में अपमानित किया है जिससे मानवीय दुर्बलताओं से युक्त दुर्योधन प्रतिकारोन्मुख हो गए हैं । इसलिए कवि के अनुसार द्रौपदी के अपमान का एकमात्र दोषी उन्हें घोषित करना अनुचित ही है[5] ।

वीरता एवं पराक्रम

दुष्ट और अत्याचारी होने पर भी महाभारत के दुर्योधन का चरित्र वीरता से तेजदीप्त है । राजा के योग्य राजसी गुण उनमें विद्यमान है अविचलता और पौरुष से वे ओतप्रोत हैं । वे आत्मविश्वासी वीर हैं और सन्धि-प्रस्ताव लेकर आनेवाले श्रीकृष्ण के सामने युद्ध का प्रस्ताव रखते हैं । क्योंकि

1· रश्मिरथी - पृ·8
2· सेनापति कर्ण - पृ·7
3· वही - पृ·8
4· अंगराज - पृ·74-75
5· सेनापति कर्ण - पृ·125

उनके मत में युद्ध ही मूल निर्णायक बन सकता है[1]। अपनी वीरता पर अटल विश्वास होने के कारण बार बार हारते हुए भी वे निराश नहीं होते। इसी प्रकार कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण आदि वीर सेनानि के युद्ध से विरत होने पर भी वे सन्धि-प्रस्ताव केलिए तैयार नहीं होते[2]। क्योंकि वीर सेनापति का कर्तव्य वे अच्छी तरह जानते हैं। अपनी वीरता और पराक्रम को अन्त तक निबाहते हुए वे वीरगति को प्राप्त करते हैं। यह कार्य निस्सन्देह श्लाघनीय ही है। उनका क्षत्रिय मन कायरता से बढ़कर मृत्यु का वरण करना चाहता है। अन्त तक पश्चात्ताप करने या नियति की शरण लेने केलिए महाभारत के वह वीर चरित्र तैयार नहीं रहे हैं। अपनी वीरोचित मृत्यु में वे आनन्द का अनुभव करते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि अपनी जैसी मृत्यु किसी भाग्यशाली की ही होगी[3]। उनकी वीरोचित मृत्यु की महिमा दिखाने में महाभारतकार तनिक भी हिचकते नहीं है। उनकी मृत्यु के समय उन पर सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होती है और अप्सराएं उनकी यश-गाथा गाने लगती हैं, जिससे श्रीकृष्ण आदि लज्जित हो जाते हैं।

गुप्तजी ने भी दुर्योधन चरित्र के इस परम्परागत रूप को अपनाने का प्रयास किया है। लेकिन उनके दुर्योधन का चरित्र वीरता और पौरुष से महाभारत के दुर्योधन से समता नहीं रख पाता। "पौरुष तो मेरा जन्मजात अधिकार है" तथा "जीने के समान मरना भी मैं जानता हूँ" जैसी वीरोचित उक्तियों से पूर्ण "जयभारत" के दुर्योधन की करनी पूर्णतः उसके अनुकूल नहीं है। महाभारत के दुर्योधन अपने स्वभाव-निर्वाह केलिए किसी के आशीर्वाद के इच्छुक नहीं हैं, किन्तु "जयभारत" के दुर्योधन कृपाचार्य से कहते हैं -

"आशीर्वाद चाहता हूँ, एक यही आपसे,
अन्त तक मान मान अपनी निभा सकूँ[4]।"

---

1. म० उद्यो०प०अ०127
2. म०ई०शल्य प०अ०5, श्लोक 3-47
3. म० शल्य प०अ०61 श्लो०50-53
4. जयभारत - पृ०399

वे कृपाचार्य के सन्धि-प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं और वीरोचित गरिमा से मृत्यु का वरण करने केलिए आतुर होते हैं । इसी प्रकार लक्ष्मीनारायणमिश्र के दुर्योधन का चरित्र वीरों का धर्म-पुरुषार्थ मानता है, कुटिलता नहीं । अधर्म युद्ध करनेवाले अर्जुन, धर्मसुत आदि पर अमर्ष प्रकट करते हुए वे वीरता और पौरुष का सच्चा रूप प्रकट करने केलिए लालयित होते हैं-

"वंचना है सारी, शस्त्रधारी शस्त्रधर से ⁄
जानता है एक धर्म नीति एक रण में
जानता हूँ मैं भी यही, शस्त्र के प्रहार से
मारूँ मरूँ वंचना न शोभा वीर जन की[1] ।

इसी प्रकार मिश्र जी ने दुर्योधन को पूर्ण रूप से आदर्शात्मक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है । उनके दुर्योधन राज्यलोभ से नहीं लोक-नीति की रक्षा केलिए युद्ध की आवश्यकता समझकर युद्ध केलिए लालयित हैं । इस पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं -

कूदा था स्वयं मैं इस विग्रह समुद्र में
लोकनीति रक्षा करने को, बाहुबल से
पार मैं करूँगा इसे या कि मैं डूब मरूँगा
चिन्ता नहीं डूबना तो अखिल जगत है[2] ।

निस्सन्देह कह सकते हैं कि मृत्यु के प्रति इतना महान विचार कोई परम वीर और महान व्यक्ति ही प्रकट कर सकते हैं । यह बात पूर्णतः महाभारत से नवीन दिखाई पड़ती है ।

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.42
2. वही - पृ.31-32

भावुकता

खड़ीबोली के कवियों ने दुर्योधन के परम्परागत गुणों को सशक्त बनाने के साथ-साथ अन्य अनेक मानवीय गुणों से भी उनके चरित्र को परिपुष्ट करके उनको एक आदर्श मानव का पद प्रदान करने का परिश्रम किया है। गुप्तजी तथा मिश्रजी के दुर्योधन अत्यंत भावुक प्रकृति के हैं। मिश्रजी के दुर्योधन के अनुसार वीरता और पराक्रम में अद्वितीय भीष्म का शरशय्याशायी होना तथा द्रोण की मृत्यु आदि मात्र भाग्य का खेल है। पितृवध से आहत अश्वत्थामा को सान्त्वना देते हुए वे कहते हैं कि भाग्यचक्र प्रबल होता है, पुरुषार्थ द्वारा उसे परिवर्तित करने का प्रयास विफल हो जाता है[1]। गुप्तजी ने एक पग आगे बढ़कर भावुकता में अपना सारा विद्वेष, क्रोधआदि का विस्मरण करके, पश्चात्ताप-विवश दुर्योधन का चित्र खींचा है। अपनी भावुकता में वे युधिष्ठिर को न्यायी घोषित करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं[2]। इस क्रान्तिकारी विचारधारा से पूर्ण रूप से सहमत न होने पर भी इसे पूर्णतः अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह तो लोकधर्म है कि हर बात को व्यक्ति अपने व्यक्तित्व और युग या समाज की आवश्यकतानुसार व्याख्या करेगा। उस महाभारतीय परिस्थिति की बात ही ले तो दुर्योधन दुष्ट ही है।

खड़ीबोली के काव्यों में चित्रित दुर्योधन के चरित्र को पौराणिक संदर्भ में परखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दुर्योधन का चरित्र बहुत अधिक परिवर्तन लिए हुए है। गुप्तजी उनके दोषों को परिमार्जित करके उन्हें सुयोधन बनाने में सफल हुए हैं तो खड़ीबोली के कवियों ने मनोवैज्ञानिकता तथा तर्कों के आधार पर उनके अवगुणों को गुणसिद्ध किया है खड़ीबोली के

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.31-31
2. जयभारत - पृ.389

कवियों ने परम्परागत गुणों को सशक्त बनाने के साथ साथ भावुकता, भ्रातृप्रेम आदि नवीन गुणों से भी उनके चरित्र को विभूषित किया है और उन्हें एक आदर्शमानव का रूप प्रदान किया है । आज के दुर्योधन महाभारत के दुर्योधन के जैसे ईर्ष्यालु, दम्भी या तामसी नहीं है । [redacted]

द्रौपदी

पंचपाण्डवों की पत्नी द्रौपदी महाभारत की एक प्रमुख स्त्री पात्र है । वे द्रुपद की बेटी हैं और उनका जन्म अलौकिकता लिए हुए है[1] । महाभारत में द्रौपदी का व्यक्तित्व, असाधारण है । वे अपने अलौकिक गुणों से लौकिक पद से कहीं ऊपर उठी हुई हैं । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को अधिक मानवीय बनाने का परिश्रम किया है । "जयभारत" "द्रौपदी" "कौन्तेय कथा, "रश्मिरथी", "पांचाली", "सेनापति कर्ण", त्रिपथगा" आदि आधुनिक काव्यों में भी द्रौपदी का चरित्र अलौकिकता की रेखाओं से संवारे पर भी युगानुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन देखा जाता है । कविवर नरेन्द्र शर्मा ने "द्रौपदी" में द्रौपदी के व्यक्तित्व को योगिनी शक्ति तथा पंचाग्नि-शक्ति की साकार प्रतिमा माना है[2] । उनकी द्रौपदी प्रेरणादायिनी और नारी शक्ति की दीप्त प्रतीक है[3] । भगवतीचरण वर्मा ने भी द्रौपदी को शक्ति का प्रतीक मानकर उनका चरित्र चित्रण किया है । उनमें अवतार के अंश को मानकर कवि ने उनकी दिव्यता को यथावत् सुरक्षित रखा है[4] । महाभारत से लेकर सभी परवर्ती काव्यों में भी उनका सीमातीत सौन्दर्य, बौद्धिकता तथा दूरदर्शिता झलक जाती है । उनके सीमातीत सौन्दर्य से आकृष्ट होकर अनेक राजकुमार उन्हें पाने का असफल प्रयत्न करते हैं । द्यूत सभा में उनकी युक्ति और बौद्धिकता से पूर्ण प्रश्न जाल के सामने भीष्म, द्रोण जैसे पण्डितों को भी सिर झुकाना पड़ा है । धृतराष्ट्र से वर याचना के समय उनके चरित्र की दूरदर्शिता ही अभिव्यक्त होती है[5] । द्रौपदी चरित्र की प्रमुख विशेषताओं पर आगे प्रकाश डाला जाएगा ।

1· म·आदि प·166/46,47
2· द्रौपदी – पृ·4
3· द्रौपदी भूमिका – पृ·13
4· त्रिपथगा – पृ·62
5· म·सभा·प·अ·71,श्लो·28-32

<u>अटल पातिव्रत</u>

महाभारत की द्रौपदी की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनका अटल पातिव्रत है । खड़ीबोली के कवियों ने भी द्रौपदी के इस गुण के साथ न्याय किया है । आनन्दकुमार के अलावा सभी कवियों ने द्रौपदी के चरित्र की पतिपरायणता को अत्यंत सम्मान और आदर के साथ उपस्थित किया है । गुप्तजी ने द्रौपदी चरित्र के इस परम्परागत रूप को अत्यंत सफलता से अंकित किया है । "जयभारत" में अनेक जगहों पर उनका यह गुण अभिव्यक्त हुआ है । लक्ष्यभेद के बाद जब वे पांचों भाइयों में बाँटी जाती हैं तब कवि ने उनके चरित्र का यथार्थ रूप अंकित करके उनकी मानसिक दशा का यथार्थ वर्णन करके उन्हें दोषविमुक्त स्थापित किया है । गुप्तजी कहते है -

"पीली सी पड़ी वधू विकला / तब रक्त धर्म बन वह निकला
वह संभल गई गिरती गिरती / तब भी अथाह में थी तिरती ।"[1]

इन पंक्तियों में ही उनकी सच्चरित्रता की यथार्थ झांकी मिल जाती है । व्यासजी के कथन, कुन्ती के अनुरोध एवं युधिष्ठिर की इच्छा के अनुसार वे पंचपत्नी बन जाती हैं क्योंकि ये उनके पूर्वजन्म का संस्कार मात्र है[2]। अनेक बार अपमानित होने पर भी वे हमेशा पतिसेवा में निरत रहती है । वन के घोर कष्टों को देखते वक्त भी वे नारी के प्रमुख धर्म-पतिसेवा, में निरन्तर व्यापृत हैं । इस पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं - "भव्य भावों को भरती है । धर्म अपना आचरती है[3]।" द्रौपदी का यह गुण वन में जयद्रथ

1· जयभारत - पृ·120

2· वही - पृ·121

3· वनवैभव - पृ·8

द्वारा सताने पर सुन्दर रूप में अभिव्यक्त होता है । कुत्सित आचरण करने केलिए उत्सुक जयद्रथ के सामने अपनी एकनिष्ठ स्वामिभक्ति को उद्घोषित करके वे उन्हें तिरस्कार कर देती हैं[1] । सैरन्ध्री के रूप में जब द्रौपदी वन में सताई जाती हैं तब यह पतिपरायणता और एक रूप में अभिव्यक्त होती है -

"मेरे पति हैं पाँच देव प्रच्छन्न निवासी
तन-मन-धन से सदा उन्हीं की हूँ मैं दासी[2] ।"

पंचपत्नीत्व को ग्रहण करते हुए भी उनकी एकनिष्ठ स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर कुन्ती ने उनके सतीत्व की उद्घोषणा यों की है -

"हो चाहे पंचपुरुष भार्या / तू आर्याओं की भी आर्या[3] ।"

इस प्रकार यह देखा जाता है कि "जयभारत" में आधन्त द्रौपदी का चरित्र पातिव्रत्य की कसौटी पर खरा उतरता है । श्री• नरेन्द्र शर्मा ने द्रौपदी को अग्नि-कुमारी मानकर उन्हें सती साध्वी का पद प्रदान किया है[4] । "सेनापति कर्ण" में मिश्रजी ने उनके पंचपत्नीत्व केलिए दानवी राजनीति को दोषी ठहराया है । यहाँ की द्रौपदी अपने विवाह को दुःखद राजनीति का परिणाम मानती है[5] । इन सबके विरुद्ध "कौरव" ही एक ऐसा काव्य है जिसमें द्रौपदी के सतीत्व की भर्त्सना की गई है । आनन्द कुमार ने बताया है कि उनके कामोद्दीपन के कारण द्रौपदी को पंचपति प्राप्त कर प्रसन्नता हुई है[6]

1• जयभारत - पृ•225
2• वही - पृ•245
3• वही - पृ•122
4• द्रौपदी - पृ•40-41
5• सेनापति कर्ण - पृ•61
6• कौरव - पृ•68

आत्मत्याग और आत्मबलिदान की भावना से ओतप्रोत सती साध्वी द्रौपदी के चरित्र को लेकर इसप्रकार की अमानुषिक बातें करना कवि की विशिष्ट मानसिकता का परिचायक है ।

धैर्य एवं प्रतिहिंसा

ये महाभारतीय द्रौपदी की दो उल्लेखनीय विशेषताएं हैं । अपने जीवन की असाधारण परिस्थितियों ने उनके चरित्र को धैर्य एवं प्रतिहिंसा का खजाना बना दिया । खड़ीबोली के सभी काव्यों में भी उनके ये परम्परागत गुण अभिव्यंजित रहे हैं । युधिष्ठिर की धर्मभावना स्वीकारने केलिए वे तैयार नहीं रही । वे युधिष्ठिर को पुरुषार्थ की शिक्षा देने में तथा उनके न्याय और धर्म पर आक्षेप करने में भी तनिक भी हिचकती नहीं है।[1] उनके चरित्र के इस असाधारण धैर्य और दर्प ने भरी सभा में कर्ण का अपमान करने केलिए उन्हें प्रेरित किया है[2]। भरी सभा में कौरवों द्वारा अपमानित होने पर वे नागिन बन जाती हैं, प्रतिशोध की ज्वाला में धधकने लगती है । इसका प्रतिशोध लेने केलिए, कौरवों के साथ युद्ध करने केलिए वे श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों को बारबार प्रेरणा प्रदान करती है । "जयभारत" में भी गुप्तजी ने प्रतिहिंसा की ज्वाला में धधकनेवाली द्रौपदी का सुन्दर चित्र खींचा है । अपने इस प्रतिहिंसात्मक व्यक्तित्व की ओर इशारा करते हुए वे कामी कीचक को निरुत्तर कर देती है -

"मैं अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी
तुम दानव केलिए चण्डिका बनी रहूँगी[3] ।"

"सेनापति कर्ण" में उनके चरित्र की प्रतिहिंसात्मक भावना युद्ध में लोहा लेने तक की आकांक्षा प्रकट करती है -

---

1. म.वन.प. 30/18
2. म.आदि प. अ.186/ श्लोक.23
3. जयभारत - पृ.266

"कौरवों की कीर्ति की पताका बना लोक में
झूमता रहा जो, उसे काटकर भूमि में
डालना ही होगा, देव दैत्य रण विजयी
अर्जुन का साहस जो छूटे तब अबला
जाकर मढ़ी में अकेले कालरिपु में[1]।"

भगवतीचरण वर्मा उन्हें युग की प्रतिहिंसा का प्रतीक ही मानते हैं[2]। उनकी द्रौपदी का चरित्र प्रतिशोध की ज्वाला में धधक रहा है।

दया और पश्चात्ताप

खड़ीबोली के कवियों ने द्रौपदी के चरित्र को आदर्शात्मक रूप देने के प्रयास में उनकी प्रतिहिंसात्मक भावना से बढ़कर उनके चरित्र की दया एवं सहनशीलता को प्रकाशित करने का परिश्रम किया है। इसका सबसे उज्ज्वल रूप रांगेय राघव की "पांचाली" काव्य में देखा जाता है। पांचाली काव्य की द्रौपदी पुरुषार्थ का समर्थन करने पर भी अनाचार एवं अत्याचारके नाश केलिए अपमान सहने केलिए भी तैयार है[3]। इस काव्य में कवि ने स्पष्टवादी एवं प्रतिशोध लेने केलिए पतियों को प्रेरणा देनेवाली द्रौपदी के चरित्र का सुधार करके उन्हें अत्यंत विचारशील प्रस्तुत किया है[4]। महाभारत की द्रौपदी में प्रत्येक स्थल पर प्रतिशोध की भावना है, किन्तु "पांचाली" में उनके प्रतिशोध की भावना के साथ उनके हृदय की निर्मलता एवं निर्विकारता भी स्पष्ट की गई है। वे युधिष्ठिर के शांत व्यक्तित्व पर मुग्ध रही हैं। उनका विचारशील मन युधिष्ठिर को पहचानने केलिए तैयार होता है। वे अनुभव करती हैं कि

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.763 [illegible]
2. त्रिपथगा - पृ.68
3. पांचाली - पृ.6
4. वही - पृ.66

युधिष्ठिर अपने आप में दुःखी हैं और त्रस्त व्यक्ति को बार बार संघर्ष केलिए प्रेरित करना वे अनुचित मानती हैं[1]। "जयभारत" में भी अधर्म और अत्याचार के विरुद्ध वे सहज ही प्रतिकूल होती है; लेकिन दूसरे क्षण वे पश्चात्ताप विवश हो जाती हैं। कीचक-वध के बाद वे सदय हो उठती हैं। वे कहती हैं -

"देख भीम का भीम कर्म भीमाकृति भारी
स्वयं द्रौपदी सहम गई भयवश सुकुमारी[2]।"

द्रौपदी का यह रूप महाभारत से बिलकुल नवीन है। उसी प्रकार उनकी तीव्र प्रतिहिंसा कौरवों का विनाश करने में तो सफल हुई है; लेकिन इस महान संहार के बाद उनका स्त्री हृदय जाग उठता है और वे पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगती है[3]। "जयभारत" की द्रौपदी एक पग आगे बढ़कर क्रूर और अमानुषिक हत्या करनेवाले अश्वत्थामा के साथ क्षमा करने केलिए लालायित है। अश्वत्थामा को दंड देने के प्रसंग में वे अपने पतियों को मानवता का स्मरण रखने का उपदेश देती है[4]। इसीप्रकार भगवतीचरण वर्मा की द्रौपदी भी अपने को युद्ध का मूल कारण समझकर पश्चात्ताप विवश हो जाती है[5]। वर्माजी ने द्रौपदी के पश्चात्ताप में उनके अन्तर्दाह को चित्रित किया है[6]।

द्रौपदी चरित्र के दया एवं पश्चात्तापके ये गुण खड़ीबोली कवि की देन हैं। क्योंकि यही नारी का वास्तविक रूप है। द्रौपदी चरित्र के माध्यम से शाश्वत नारीत्व के उद्घाटन में खड़ीबोली के कवि पूर्णतः सफल हुए आधुनिक कवियों ने और भी मनोरम स्त्री सुलभ गुणों से द्रौपदी चरित्र को विभूषित किया है। गुप्त जी ने उनके प्रिया रूप का उद्घाटन किया है।

---

1. पांचाली - पृ.30   2. जयभारत - पृ.277

3. म. स्त्री प.अ. 15 श्लो.33-37

4. जयभारत - पृ.415   5. त्रिपथगा - पृ.93

6. त्रिपथगा - पृ.112,122

अपने पतियों के साथ मधुर मर्यादित मीठे वार्तालाप में संलग्न द्रौपदी का रूप गुप्तजी की मनोरम कल्पना का सुन्दर निदर्शन है[1]।

प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति

"द्रौपदी" में नरेन्द्र शर्मा ने द्रौपदी के चरित्र की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की है। इस काव्य की भूमिका में ही कवि ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि इस काव्य के लिखने का उनका उद्देश्य पुरानी कहानी को मात्र दुहराना नहीं है। उन्होंने द्रौपदी को पांच महातत्वों को संश्लिष्ट और तेजोमय कर देनेवाली जीवनी शक्ति माना है। द्रौपदी-स्वयंवर के पहले जो पाण्डव-क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण-वेश में भिक्षाटन करते थे वे द्रौपदी के संयोग से स्वधर्म और पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर लेते हैं। उनके अनुसार यज्ञकुण्ड से उत्पन्न ऊर्ध्वगामिनी अग्निशिखा सी जीवनी शक्ति द्रौपदी ने पांच महा तत्वों को संश्लिष्ट कर, उन्हें उद्योगी नर का रूप दिया है -

"द्रौपदी जीवनीशक्ति / सौंपदी गई पांच तत्वों को
था कहा नियति ने पार्थ / करो अब प्राप्त लुप्ततत्वों को।
xx xx xx xx
भूतल पर भिक्षुक बने / जन्म हो जिसका भूति के घर ?
हो उदय दीप्ति से युक्त / पंच तत्वों का दिया कलेवर।"[2]

इस प्रकार कवि ने द्रौपदी चरित्र के माध्यम से भारतीय नारी के तेज-बल का गुणगान किया है। नारी की दहनशक्ति, सहनशक्ति एवं दहन सहन शक्ति की ओर संकेत किया गया है। द्रौपदी चरित्र की महत्ता पर

---

1. जयभारत - पृ. 186 से 189
2. द्रौपदी - पृ. 1

उनकी वास्तविक भूमिका पर प्रकाश डालते हुए नरेन्द्र शर्मा बताते हैं -
"धर्म निस्सन्देह सर्वोपरि महातत्व है । किन्तु शक्तिप्रेरित सक्रिया के बिना धर्म भी दैन्य और निर्वासन ही भोगता है । धर्मराज का राजधर्म शक्ति के बिना कैसे सार्थक होता ? इसलिए धर्मराज केलिए द्रौपदी का बड़ा महत्व है । द्रौपदी भारतीय नारीतेज की ज्वलन्त ज्योति-शिखा है । द्रौपदी एक असामान्य प्रतीक है । उन्हें सामान्य अर्थ में किसी लोकप्रिय उपन्यास की कथानायिका नहीं समझना चाहिए । द्रौपदी को पांच पतियों की पत्नी के रूप में हंसी ठठ्ठा की चीज़ समझ लेना अर्थ का अनर्थ करना है"[1]।

द्रौपदी के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जाता है कि द्रौपदी का चरित्र अपने ढंग का अलग है । ऊपरी दृष्टि से देखने पर वे मात्र प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति हैं । उनके पातिव्रत्य पर भी पंचपतीत्व का आरोप लगाया जा सकता है । लेकिन गहराई में बैठकर देखने पर ही उनका वास्तविक महत्व और शक्ति को आंका जा सकता है । पंचपत्नीत्व को धारण करते हुए भी वे एकनिष्ठ स्वामिभक्ति में पूर्णतः खरी उतरती हैं । यह द्रौपदी जैसा महान चरित्र ही निभा सकता है । इसके अलावा खड़ीबोली के कवि ने परम्परागत प्रतिहिंसा की मूर्ति को मानवीय एवं स्त्री सुलभ दया, सहनशीलता, पश्चात्ताप आदि मनोरम गुणों से भी विभूषित किया है । इन सबसे बढ़कर नरेन्द्र शर्मा ने उनकी अतुल्य शक्ति को आंकने का सफल प्रयास किया है । द्रौपदी के चरित्र के माध्यम से स्त्री और उनकी शक्ति को उद्घाटित करने में कवि पूर्ण सफल हुए हैं ।

---

1. द्रौपदी - भूमिका - पृ.13

षष्ठ अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित महाभारत के पात्र-२

षष्ठ अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित महाभारत के पात्र-2

पिछले अध्याय में खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित कर्ण, दुर्योधन, युधिष्ठिर आदि महाभारत के कुछ प्रमुख पात्रों का विवेचन हो चुका । प्रस्तुत अध्याय में महाभारत के अन्य पात्रों का विवेचन किया जा रहा है ।

भीम

महाभारत में भीम का चरित्र अपने ढंग का अलग है । वे ही अकेले पाण्डव हैं जिनका चरित्र आदर्श की श्रृंखलाओं को तोड़कर यथार्थ चरित्र के रूप में शोभित होता है । अपनी असामान्य शारीरिक शक्ति के कारण वे संपूर्ण महाभारत में विख्यात है । उनका चरित्र वीरता से परिपुष्ट है । इसके अलावा उनका व्यक्तित्व स्वाभिमान, गर्व , सहनशीलता, दयालुता आदि मानवीय गुणों से सुशोभित है । खड़ीबोली के महाभारताश्रित काव्यों में विशेषकर "बकसंहार", 'हिडिम्बा', 'दुर्योधन वध' "सेनापति कर्ण," 'जयभारत,' 'नकुल" आदि काव्यों में भीम की सब चारित्रिक विशेषताएं अभिव्यक्त हुई है ।

महाभारत में भीम चरित्र से संबंधित प्रमुख घटनाएं हैं - बालक्रीडा, रंगभूमि, लाक्षागृह और वनवास, विराट पर्व, युद्ध तथा अन्तत: दुर्योधन वध । धृतराष्ट्र पुत्रों को तंग करने की प्रवृत्ति उनकी एक प्रमुख चारित्रिक विशेषता है जो शैशव में ही अभिव्यक्त हुई है । महाभारतकार तथा जयभारतकार ने विशेष रूप से इसकी अभिव्यक्ति भी की है । भीम के चरित्र की विशेषताओं का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

धैर्य तथा वीरता

भीम के चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनकी असामान्य वीरता तथा धैर्य है । बालक्रीडा से लेकर दुर्योधन-वध तक यह अनेक जगहों पर प्रस्फुटित हुआ है । उनका असामान्य धैर्य तथा वीरता के कारण ही वे हिडिम्ब[1], जरासंध[2], बक[3], किर्मीर[4], जटासुर[5], मणिमान[6] तथा कीचक[7] आदि असुरों का वध करने में सफल हुए । खड़ीबोली के कवियों ने भी उनकी इस चारित्रिक विशेषता पर प्रकाश डाला है । लेकिन महाभारत की तुलना में उनमें ओज की कमी देखी जाती है । किन्तु सेनापति कर्ण के भीम आत्मतेज से देदीप्यमान है । उनकी शक्ति तथा पराक्रम महाभारत के अनुकूल ही है । वे किसी भय या प्रलोभन के मारे युद्ध से विमुख होना नहीं चाहते हैं । प्रतिपक्ष में कर्ण को देखकर श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्धभूमि से रोका जाने पर भीम चरित्र का आत्मतेज अत्युत्कर्ष पर प्रस्फुटित होता है । यहाँ भीम के वीरत्व और मानसिक द्वन्द्व का स्पष्ट चित्र खींचा गया है -

---

1. म.आदि.प.अ.153
2. म.सभा.प.अ. 24
3. म.आदि.प.अ.162
4. म.वन.प.अ. 11
5. म.वन.प.अ.157
6. म.वन.प.अ.160
7. म.विराट.प.अ.22

भीमसेन विक्रमी / आया इतने में वहाँ रोषपूर्ण आँखें थीं
लाल लाल दहक रही थीं अंगारे सी[1]।"

वे स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं कि युद्ध से विमुख होने का कार्य कायरों का है[2]।

खड़ीबोली के काव्यों में सिर्फ "सेनापति कर्ण" में मिश्रजी ने भीम के निडर और क्षात्रतेज दीप्त व्यक्तित्व के साथ न्याय किया है। उनका क्षात्र तेज नारी की महत्ता भी अच्छी तरह जानता है। वे अपनी पत्नी के मान की रक्षा में हमेशा सजग हैं। जब कभी अपनी नारी का मान खतरे में पड़ जाता है तब वे प्रतिद्वन्द्वी से प्रतिकार करते हैं। द्यूत सभा में दुःशासन तथा दुर्योधन द्वारा द्रौपदी के अपमान पर वे दुःशासन का वक्षःस्थल फाड़ने[3] और दुर्योधन की जांघ तोड़ने[4] की प्रतिज्ञा करते हैं और इसकी पूर्ति भी कर लेते हैं। वनवास के अवसर पर द्रौपदी के साथ दुराचार करने के लिए उत्सुक जयद्रथ को इस अनैतिक आचरण का कुफल यहीं चखने को देते हैं[5]। कीचक द्वारा अपमानित द्रौपदी के आग्रह की पूर्ति कीचक वध[6] द्वारा यही निभाते हैं। खड़ीबोली के कवियों ने विशेषकर गुप्तजी ने भीम के इस रूप का यथावत् चित्र खींचा है।

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.55
2. वही - पृ.55
3. म.सभा. प अ.68 श्लोक.53
4. म. सभा. अ.71 श्लोक 14
5. म.विराट.अ.22.म.वन.प.अ.271
6. म.विराट.अ.22

दया सद्भावना

उद्दण्ड वीर होते हुए भी भीम का हृदय दया एवं सद्भावना से परिपुष्ट है । वे पूर्ण रूप से अत्याचार और शोषण के विरोधी हैं । एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण परिवार की विवशता एवं निस्सहायावस्था देखकर उन्होंने अत्याचारी बक राक्षस का वध करके ब्राह्मण परिवार की रक्षा की[1] । गुप्तजी ने भी भीम चरित्र के इस मौलिक गुण को अक्षुण्ण रखा है । इसके लिए उन्होंने अलग खण्डकाव्य "बक संहार" की भी रचना की है ।

गर्व या औदत्य

परम्परागत भीम चरित्र की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं उनके चरित्र का अर्व या औद्धत्य भीमाकृति और सीमातीत बल के साथ उनमें गर्वऔरऔदत्य भी अधिक मात्रा में प्रकट ह देखा जाता है । शत्रु का अपमान करना एवं खिल्ली उड़ाना उनके चरित्र का एक अभिन्न अंग बन गया है । अपने विरुद्ध दुराचार करनेवाले किसी को भी छोड़ने केलिए वे तैयार नहीं हैं । रंगभूमि में धीरता और औदत्य के साथ प्रवेश करनेवाले कर्ण का अपमान करने में वे तनिक भी हिचकते नहीं । कर्ण की युद्धतत्परता पर हँसी उड़ाते हुए भीम कहते हैं -

"न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम् ।
कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ।"[2]

इसी प्रकार गन्धर्वराजा द्वारा कुरुकुल के पकड़े जाने पर उनका गर्व भरा मानस कल्पनातीत खुशी से खिल उठता है । खड़ीबोली के काव्यों में

---

1. म. आदि. प. अ. 162
2. वही - पृ.136 श्लोक 6

विशेषकर जयभारत के भीम के चरित्र में औद्धत्य की मात्रा कम देखी जाती है। महाभारत के भीम जिन-जिन अवसरों पर वे अपनी वीर गर्वोक्तियों द्वारा पाठक का हृदय उद्वेलित करते हैं, उन-उन अवसरों पर खड़ीबोली के भीम व्यंग्य बाणों से काम चलाते हैं। रंगभूमि प्रसंग में कर्ण को निस्तेज बनाने केलिए, निम्न घोषित करने केलिए भीम जिस गर्वोक्ति का प्रयोग करते हैं वह कर्ण चरित्र पर आधारित खड़ीबोली काव्यों में अभिव्यक्त हुई है[1]। इसी प्रकार वन में श्रीकृष्ण सात्यकि आदि की उपस्थिति में चर्चा छिड़ी है कि दुर्योधन से प्रतिशोध कैसे लिया जाय। इस समय "जयभारत" के भीम किसी पाप के कारण आक्रमण न होकर केवल क्षमाधार हो गए हैं।

उनके चरित्र का गर्व उन्हें बड़ा क्रोधी एवं प्रतिशोध की मूर्ति बना देता है। महाभारत में अनेक जगहों पर उनका क्रोध अभिव्यंजित है। द्रुपद को बंदी बनाने के बाद भी पांचाल सेना पर टूट पड़ना,[2] द्यूत प्रसंग में युधिष्ठिर की भुजाओं को जलाने केलिए उद्यत होना[3] आदि इसके अच्छे सबूत हैं। युद्ध प्रसंग में दुर्योधन-वध में उनका क्रोध तीव्र रूप में व्यक्त होता है। महाभारत के भीम इस अवसर पर आदर्श की रक्षा को अव्यावहारिक मानते हैं। कर्ण चरित्र पर आधारित खड़ीबोली काव्यों में भीम को छली एवं दंभी घोषित किया गया है। जयभारतकार इस अवसर पर भीम के चरित्र को आदर्शात्मक रूप देने के प्रयत्न में लगे हैं। "जयभारत" के भीम अपनी विवशता स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

"मैं ने कहा स्पष्ट था / तोड़ूँगा गदा को जांघ में इस जघन्य की
शुद्ध योद्धाओं के साथ युद्ध के नियम हैं / कापुरुष क्रूर यह ....[4]।"

---

1. रश्मिरथी - पृ.7, जयभारत - पृ.64
2. म.आदि.प.अ.137
3. म.सभा.प.अ.68, श्लोक.6
4. जयभारत - पृ.405

इसके द्वारा कवि भीम के पक्ष को पुष्ट करते हैं ।

नवीन रूप

खड़ीबोली के कवियों ने भीम के चरित्र के परम्परागत गुणों को परिपुष्ट करने के साथ साथ अन्य अनेक मानवीय गुणों से भी उन्हें विभूषित किया है । गुप्तजी ने भीम के गरिष्ठ, पराक्रमी रूप के उद्घाटन के साथ साथ सरस कोमल प्रेमी रूप का भी उद्घाटन किया है । राक्षसी होने पर भी धीर गंभीर भीम हिडिम्बा पर मुग्ध होते हैं। हिडिम्बा को प्रेयसी मानकर वे उसके लिए अपने प्राणों का परित्याग करने केलिए प्रस्तुत हैं । हिडिम्ब-वध के बाद वे हिडिम्बा को अभयदान देते हैं । "जयभारत" में भीम के चरित्र को मानवीय गुणों से परिपुष्ट करने के प्रयास में उनके क्षात्र तेज में कुछ कमी देखी जाती है । लेकिन इसके विरुद्ध मिश्र जी ने भीम के चरित्र को मानवीय गुणों से देदीप्यमान बनाने के साथ साथ उनके क्षात्र तेज को भी सुरक्षित रखा है । मिश्र जी ने भीम के पितृत्व का जो उद्घाटन किया है[1] वह अत्यंत अनुपम है । कुल के विचार से भीम ने अपने बेटे घटोत्कच को अपने से अलग कर दिया । लेकिन अतिघोर महाभारत युद्ध में अपने बेटे को भेजने में भीम हिचकते हैं । उनका मानसिक द्वन्द्व देखिए -

सुधीजन ज गत के
क्या कहेंगे सोचो तुम्हीं / स्वार्थ साधना में जो
भेजे काल रण में हिडिम्बा के तनय को ।
यौवन के मद में बनाया जिसे प्रेयसी *था फिर*
आ फिर छोड़ दिया कुल के विचार से
xx xx xx
होती है कहो क्या नहीं वेदना प्रसव की
दानवी को, यदि पुत्र मोह नहीं होता है[2] ।

1• सेनापति कर्ण - पृ•21।   2• सेनापति कर्ण - पृ•21।

भीम के हृदय का यह व्यथित रूप कवि की मौलिक सूझ है और महाभारत से बिल्कुल नवीन भी है ।

इस प्रकार खड़ीबोली के कवियों ने नवीन मानवीय गुणों के समावेश द्वारा क्षात्रतेजदीप्त भीम के चरित्र को कोमल एवं मानवीय बनाने का प्रयास किया है ।

अश्वत्थामा

महाभारत के अश्वत्थामा का चरित्र-[1]

महाभारत में चिरंजीवी अश्वत्थामा के चरित्र का अपना अलग अस्तित्व है । जिस विशेष प्रसंग में उनका उल्लेख किया गया है, उस प्रसंग की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है । आचार्य द्रोण का इकलौता बेटा होने के कारण वे द्रोण के विशेष स्नेह के पात्र हैं । पराक्रम, साहस तथा ब्रह्मतेज में वे अपने पिता के समान प्रख्यात है । महाभारत युद्ध में उनकी असामान्य वीरता दृष्टिगोचर होती है । अठारह वर्ष के घमासान युद्ध में उन्होंने पाण्डव पक्ष के अनेक वीरों को पराजित किया है । एक बार उन्होंने कौरव पक्ष के सेनापति के पद पर सैन्य-संचालन भी किया है । लेकिन अन्य महाभारतीय चरित्रों के समान इस चरित्र का भी एक कलंकित पक्ष है । पराक्रमी योद्धा होते भी उन्होंने रात में सोए हुए पांचालों 'सोमकों' तथा द्रौपदी पुत्रों की हत्या कर दी है[2] । इससे भी उनकी बर्बरता शान्त नहीं होती । ब्रह्मशिरास्त्र लेकर वे उत्तरा के गर्भस्थ शिशु को मार डालने का परिश्रम करते हैं जिससे श्रीकृष्ण द्वारा वे शापग्रस्त हो जाते हैं[3] । श्रीकृष्ण ने उन्हें शाप दिया है कि कोढ़ी होकर करीब तीन हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर भटकोगे ।

1· अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः कृपः
परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः

2· म·सौ·प·अ·8 3· वही - पृ·15

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अश्वत्थामा का चरित्र

अश्वत्थामा चरित्र के परिचायक स्वतंत्र काव्य खड़ीबोली हिन्दी में नहीं है, लेकिन धर्मवीर भारती के अंधायुग में कृष्ण के साथ साथ अश्वत्थामा को भी विशेष स्थान मिल गया है। खड़ीबोली के कवियों ने महाभारतीय अश्वत्थामा के शौर्य तथा पराक्रम का चित्रण महाभारत के अनुरूप ही किया है, साथ ही इस चरित्र को ऊपर उठाने के प्रयास में उसकी कलंक-कालिमा को सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करके उन्हें उससे बचाने का सफल प्रयत्न किया है। "जयभारत" में गुप्तजी तो अश्वत्थामा के नृशंस कार्य का चित्रण करते हैं। लेकिन यहाँ अश्वत्थामा उस परिस्थिति का स्पष्ट अंकन करते हैं जिससे प्रेरित होकर वे इस क्रूर कर्म केलिए तैयार होते हैं। कवि यहाँ यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि पिता की अमानुषिक क्रूर हत्या से वे अन्धे बन जाते हैं, उनका विवेक खो बैठते हैं और पाप-पुण्य के विवेचन में असमर्थ होकर उनके द्वारा यह नृशंस कार्य होता है।[1] 'सेनापति कर्ण' में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी अश्वत्थामा के चरित्र का सुधार किया है। मिश्रजी अश्वत्थामा चरित्र को निर्दोष स्थापित करने के प्रयास में द्रौपदी-पुत्रों के अस्तित्व पर भी सन्देह प्रकट करते हैं और उनके अनुसार द्रौपदी-पुत्रों की हत्या की बात तो मात्र कल्पित कथा है।[2] अपने तर्क की पुष्टि केलिए उन्होंने पहले ही असन्तप्ता द्रौपदी की हार्दिक वेदना का चित्र खींचा है।[3] इसी प्रकार मिश्रजी अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मशिरास्त्र के प्रयोग से उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की हत्या करने के प्रयास को भी अनुचित नहीं मानते क्योंकि उनके अनुसार धर्मराजा का लोकधर्म जब समर में छूट गया तब अश्वत्थामा द्वारा लोकधर्म परित्याग का कुछ महत्व नहीं है।[4] इसी प्रकार कवि ने अश्वत्थामा द्वारा धृष्टद्युम्न-वध की भी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की

---

1. जयभारत - पृ.414
2. सेनापति कर्ण - पृ.63-64
3. सेनापति कर्ण - पृ.61-62
4. वही - पृ.37

अपने पिता की अमानुषिक क्रूर हत्या से उनका मन प्रतिशोध की आग में धधक उठता है । इस मानसिक क्षेत्र की पृष्ठभूमि में वे अपने पिता के घातक के वध की बार बार प्रतिज्ञा करते हैं । कवि अश्वत्थामा की साधना को अन्य प्रतिज्ञ वीरों की साधना के अनुरूप देखते हैं और हत्या के दोष से उनको मुक्त करते हैं[1]। एक पग आगे बढ़कर धर्मवीर भारती के अश्वत्थामा कवि की सुन्दर मनोवैज्ञानिक सृष्टि है । कवि ने अश्वत्थामा को इस अमानुषिक घृणित आचरण करने केलिए प्रेरित करनेवाली परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है । कवि ने क्रूरता और अधर्म से विक्षुब्ध उनके मानस का सुन्दर चित्र खींचा है । धर्मराजा युधिष्ठिर ने अर्द्धसत्य द्वारा उनके अपराजेय दिल का वध कर डाला । युधिष्ठिर का यह अर्द्धसत्य उनके मन में एक ग्रन्थि छोड़ देता है और उनके समस्त कार्य इस मनोग्रन्थि से परिचालित होते हैं[2]। इस अर्द्धसत्य ने उनकी सभी शुभ और कोमल भावनाओं की हत्या कर दी है और वे पशु बन जाते हैं । ऐसी स्थिति में अपने पिता के घातक से प्रतिशोध लेने की तीव्र एषणा से वे जलने लगते हैं । यह कार्य असंभावित होने पर वे तीव्र आत्मग्लानि से पीड़ित होकर स्वयं अपने को घृणित और निन्दित मानते हैं ।

> "मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा / कायर अश्वत्थामा /
> शेष हूँ अभी तक / जैसे रोगी मुर्दे के / मुख में शेष रहता है /
> गन्दा कफ बासी थूक / शेष हूँ अभी तक मैं[3]।"

इससे उनकी रुग्ण मनोदशा पूर्ण रूप से उद्घाटित होती है । धर्माधर्म की विवेचना करने में वे असफल हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में कौए का उल्लू द्वारा वध देखकर वे अपना पथ निर्दिष्ट कर लेते हैं । वे कृपाचार्य से कहते हैं -

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.37
2. अंधायुग - पृ.34
3. वही - पृ.37
4.

"मातुल / सत्य मिल गया / बर्बर अश्वत्थामा को /[1]

इसी स्थिति में वे पदाघातों से धृष्टद्युम्न को चूर-चूर करना चाहते हैं, उत्तरा को कुचलकर उसमें गर्भित पाण्डव कुल भविष्य को समाप्त करना चाहते हैं । पिता की अमानुषिक क्रूर हत्या से वे मानसिक रोगी बन जाते हैं । उनके सामने कोई नीति या नियम नहीं, उनके सामने मात्र एक ही नीति है - वध । वे कहते हैं -

"वध मेरे लिए नहीं रही नीति / वह है अब मेरेलिए मनोग्रन्थि
जिसको पा जाऊं / मरोडूं मैं[2] ।

इस प्रकार कवि ने यहाँ अश्वत्थामा की मन:स्थिति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या द्वारा उन्हें कलंक कालिमा से बचाने का चतुरय प्रयास किया है ।

"मानव-मूल्य और साहित्य" में धर्मवीर भारती ने लिखा है कि अश्वत्थामा एक ओर पूंजीवाद के दुष्परिणामों से आक्रान्त हुए - हिंसक पाशविकता का प्रतीक होते दूसरी ओर ज्यां पाल सार्त्र के नास्तिक अस्तित्ववाद का भी । सार्त्र ने स्थायी मानव मूल्यों को आमूल अस्वीकृत कर व्यक्ति की अबाध किन्तु अस्वाभाविक और अमर्यादित स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया है । वह मनुष्य को बिलकुल स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता मानता है । जिसकी कोई प्रभु नहीं, कोई पूर्व निश्चित मानवीय स्वभाव नहीं-वह परम स्वतंत्र है, बल और दिशा से भी मुक्त केवल स्वतंत्र सत्ता । अपनी इस स्थिति में सार्त्र एक तीव्र संहारकारी अनास्था मात्र है, एक विराटकाय विध्वंसकारी संशय जो सारी स्थापित मर्यादाओं के स्वके मूल्य को ही नहीं मानता[2] ।

1· अंधायुग - पृ·7।
2· वही - पृ·40-41
3· मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारत - पृ·128

उनके अनुसार अश्वत्थामा मरणोन्मुख संस्कृति का भी पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रख्यात फ्रेंच अस्तित्ववादी नाटककार गैब्रील मार्सेल इसकी व्याख्या बहुत ही स्पष्ट शब्दों में करते हैं - 'हम आज कहते हैं कि हमारी संस्कृति मरणोन्मुख है। मरणोन्मुख संस्कृति से मतलब यह होता है कि हमारी संस्कृति का आंतरिक मूल्य कुछ नहीं रहा। मनुष्य में आन्तरिक रुग्णता आ गई है। क्या यह आंतरिक रुग्णता केवल एक ही शिविर या एक व्यवस्था की संस्कृति में है, नहीं ? हमारी वर्तमान स्थिति में दोनों ओर की सत्ताएं प्रगति की शत्रु हैं। अतः वे अनभिज्ञता जानबूझकर मनुष्य की आंतरिक वैचारिकता को रुग्ण और कुण्ठित बना रही हैं। वैयक्तिक आंतरिकता के विरुद्ध इस गुप्त, कीटाणु युद्ध के तरीके बड़े ही नृशंस तथा विचित्र हैं। व्यक्ति में भय का संचार किया जाता है, घृणा और हिंसा के भावावेश को लाया जाता है, सुक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक साधनों को उसे इतना जर्जर कर दिया जाता है कि वह अपनी वैयक्तिकता पर अधिकार खो बैठता है, जिन कर्मों को नहीं करता, उनका अपराधी अपने को मानकर झूठे बयान पर स्वेच्छारहित भावावेशों, बाह्य हिपनाटिक प्रभावों और ऐन्द्रजालिक अन्तर्विरोधों से परिचालित मानव यन्त्र मात्र रह जाता है। भय-संचार, की इस टैक्निक का पूर्णतम विकास पूंजीवादी देशों में अणु बम के रूप में हुआ है और साम्यवादी देशों में चित्त पारतन्त्र्य के रूप में'[1]।

धर्मवीर भारती द्वारा चित्रित अश्वत्थामा का यह रूप परम्परागत चरित्र से बिल्कुल भिन्न है। महाभारत के अश्वत्थामा शौर्य और पराक्रमी होने पर भी कलंक कालिमा से प्रक्षिप्त मात्र घृणा के पात्र हैं। खड़ीबोली के कवियों ने उनके क्रूर कर्म के पीछे के सही परिप्रेक्ष्य का चित्रण करके अपने नृशंस कर्म के कलंक से उन्हें बचाने का परिश्रम किया है। इस कार्य में धर्मवीर भारती ने ही सबसे अधिक योगदान दिया है। उनके अश्वत्थामा बिलकुल

---

1. मानवमूल्य और साहित्य - पृ.125-126

आधुनिक मानव के प्रतीक ही हैं । आज तो ऐसी परिस्थितियाँ ही उपस्थित हैं जो मनुष्य को पंगु बना देती हैं । पौराणिक पात्र अश्वत्थामा के माध्यम से आज के परिप्रेक्ष्य और उससे पीड़ित आधुनिक मानव की रुग्ण मानसिक दशा पर प्रकाश डालना ही कवि का लक्ष्य प्रतीत हो जाता है । कवि यहाँ अश्वत्थामा के चरित्र के उद्घाटन द्वारा आज के परिवेश को सुधारने का संकेत ही दे देते हैं जिसे समझकर मानव को उसकी ओर कदम उठाना चाहिए ।

द्रोण

आचार्य द्रोण महाभारत के एक यशस्वी पात्र हैं । वे धनुर्वेद के आचार्य हैं और इस विद्या में अद्वितीय भी हैं । पूरा महाभारत युद्ध इसका सुन्दर निदर्शन है । पिता भरद्वाज मुनि के समान वे शास्त्रास्त्रों में बचपन से ही प्रवीण हैं । कुशल शास्त्रवेत्ता होकर भी धन के अभाव में पारिवारिक बोझ वहन करने में वे सर्वथा असमर्थ ही देखे जाते हैं । धनोपार्जन के प्रयास में उन्हें अपने साथी राजा द्रुपद से अपमानित होना पड़ता है । महाभारत में द्रोण चरित्र की असामान्य वीरता, उनका अदम्य साहस तथा उनके धनुर्वेद ज्ञान ने उन्हें महान बनाने में सहायता दी है । खड़ीबोली के कवियों ने उनके चरित्र को और भी उदात्त बनाने का प्रयास किया है । आधुनिक युग में उनके चरित्र की प्रमुखता बतानेवाले प्रमुख काव्य हैं - "द्रोण", "एकलव्य", "जयभारत" आदि । खड़ीबोली के अन्य काव्यों में भी युद्ध के प्रसंग में उनका चरित्र अभिव्यक्त हुआ है । उनके चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

आचार्य द्रोण

द्रोण के चरित्र की असामान्य धनुर्वेद दक्षता से प्रभावित होकर भीष्म ने उन्हें कौरव पाण्डवों के आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित किया है[1] ।

---

1. म॰ आदि॰प॰अ॰130-131

वे कुशल अध्यापक होने के कारण नाना देशों के राजकुमार उनके यहाँ विद्यार्जन केलिए आते जाते हैं । लेकिन महाभारत में द्रोण चरित्र का आचार्य का रूप पंकिल है । वे अपने शिष्यों के बीच पक्षपात या विवेचन करते हैं । इसके अलावा वे अपने गुरु का रूप भूलकर अपने पुत्र को विशेषनिपुण बनाने का स्थान स्थान पर परिश्रम करते रहते हैं । इन सबसे बढ़कर निषाद पुत्र एकलव्य के साथ वे जो कठोर और निर्मम व्यवहार करते हैं, वह किसी भी परिस्थिति में भी क्षम्य नहीं है । निषाद होने के नाते एकलव्य को द्रोण द्वारा अपने शिष्य पद से ठुकराना उतना अनुचित व्यवहार नहीं माना जा सकता है क्योंकि तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति ऐसी है । लेकिन अपने अनन्य भक्त एकलव्य के साथ "अंगुष्ठो दक्षिणो दीयतामिति"[1] कहकर उन्होंने जो विश्वासघात का कार्य किया है वह सदा केलिए उनके चरित्र को कलंक कालिमा में डुबाने केलिए पर्याप्त है । इसका लक्ष्य या उद्देश्य कुछ भी हो, उसकी कठोरता में कमी नहीं आ सकती । खड़ीबोली के कवियों में डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने द्रोण के आचार्य रूप को अकलंक बनाने का प्रयास किया है । यहाँ के द्रोण निष्पक्षी हैं, वे अपने शिष्यों को कुशल धन्वी बनाने के साथ-साथ उन्हें चरित्र संपुष्ट आदर्श मानव बनाने में भी सचेष्ट रहते हैं ।[2] यहाँ के द्रोण भी परिस्थिति से प्रेरित होकर एकलव्य को ठुकराने केलिए विवश होते हैं । लेकिन उनकी मनोदशा महाभारत के द्रोण से बिलकुल भिन्न है । वे अत्यंत विकल और व्यथित हो जाते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि वे गुरुकुल के गुरु नहीं, राजकुल के राजगुरु हैं ।[3] इस अस्वतंत्र शिक्षानीति के प्रति उनके मन में जो अमर्ष और दुःख है वह वे एकलव्य के सामने स्पष्ट कर देते हैं -

"गुरुकुल स्वामी नहीं, राजकुल सेवी हो
मैं ने विद्या बेची स्वर्ण वेतन के लोभ से

---

1. म॰आदि॰प॰अ॰131 / 56
2. एकलव्य - पृ॰60-61
3. वही - पृ॰125-126

आर्य भीष्म के समक्ष गुरु हूँ कुमारों का
उनके लिए ही मात्र शूद्रों का विरोधी हूँ।[1]"

वे महाभारत के समान एकलव्य के साथ कोई भी निर्मम व्यवहार नहीं करते। एकलव्य की गुरुभक्ति तथा उनकी असाधारण दक्षता पर वे मुग्ध है[2]। यहाँ द्रोण समय को शुद्र बताकर यह स्पष्ट करते हैं कि शुद्र-समय शक्तिशाली बनकर अपने दाहिने अंगूठे से वेगपूर्वक निन्दा के तीर छोड़ते रहे हैं। द्रोण के इस कथन से ही एकलव्य को अपने दाहिने अंगूठे को काटने की प्रेरणा मिलती है[3]। द्रोण एकलव्य की गुरुदक्षिणा से संतुष्ट हो जाते हैं दुःख से उन्हें आलिंगन पाश में आबद्ध कर लेते हैं तथा भावविह्वल होकर बोल उठते हैं -

"एकलव्य हे / तुम सिद्ध हो, हे शिष्य ! गुरु द्रोण क्षुद्र हैं
हाँ, तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है[4]।"

अनुत्यापित रूप से घटित होने पर भी एकलव्य की जननी से क्षमायाचना करने में भी द्रोण तनिक भी झिझकते नहीं। इसप्रकार इस काव्य में द्रोण चरित्र का आचार्य रूप पूर्णतः अंकित है। यह शर्माजी की लेखनी की कुशलता ही है जो पूर्ण रूप से सराहनीय भी है। इसी प्रकार जयभारत के द्रोण का चरित्र भी आचार्य की कसौटी पर खरा उतरता है। एकलव्य देखते हैं कि अपनी दक्षता से ईर्ष्यालु होकर अर्जुन गुरु का अपमान करते हैं। एकलव्य यह सह नहीं सकते। इसलिए वे अपनी दक्षता को समाप्त करके गुरु को अपमान की ज्वाला से बचाने केलिए अपना दाहिना अंगूठा काटकर गुरुदक्षिणा के रूप में देते हैं। गुरु द्रोण का व्यथित हृदय तब कुछ बोल तक नहीं पाता। वे लज्जित हो जाते हैं[5]। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि

---

1. एकलव्य - पृ.293-
2. एकलव्य - पृ.292,287
3. वही - पृ.294
4. वही - पृ.296
5. जयभारत - पृ.56

खड़ीबोली के कवि द्रोण चरित्र को आदर्श आचार्य के रूप में उपस्थित करने में पूर्णत: सफल हुए हैं ।

वीरता

द्रोण चरित्र की असामान्य वीरता और अद्वितीय धनुर्धरता ही उन्हें महाभारत का यशस्वी पात्र बना देते हैं । महाभारत युद्ध में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति देखी जाती है । द्रोण को अपने पौरुष पर अडिग विश्वास है[1] । श्रीकृष्ण भी उन्हें अपराजेय योद्धा मानते हैं । द्रोण के जीवित रहते पाण्डव को विजय की आशा तक नहीं है, क्योंकि वे यह बात असंभव्य ही मानते हैं । उनकी व्यूह रचना चातुरी से कौरव औरपाण्डव दोनों दल मुग्ध हैं । महाभारत के द्रोण अभिमन्यु की हत्या केलिए चक्र व्यूह की रचना करते हैं[2] । और जयद्रथ को बचाने केलिए कठिन चक्रशकटव्यूह का निर्माण करते हैं[3] । ये युद्ध में अपनी अनुपम दक्षता दिखाते हैं, लेकिन विश्वासघात द्वारा मारे जाते हैं[4] । महाभारत पर आधारित खड़ीबोली के सभी काव्यों में भी द्रोण का चरित्र वीरता और पराक्रम से तेजोदीप्त है । कतिपय कवियों ने उनके चरित्र को पूर्ण आदर्श रूप देने केलिए अभिमन्यु-वध का लांछन भी उन पर लगाया नहीं है । "द्रोण" काव्य के द्रोणअभिमन्यु के पराक्रम के प्रशंसक हैं । वे अभिमन्यु-वध में सक्रिय सहयोग नहीं देते हैं । पराक्रमी अभिमन्यु से आहत और भयभीत दुर्योधन जब द्रोण से उनकी दुर्बलता का विवरण करते हैं तब वे उन पर व्यंग्य कसते हुए अधर्म युद्ध की बात करते हैं जैसे -

"सेना महारथी सातों मिलकर उसको /
रथहीन और अस्त्रहीन भी कर दो

---

1. म.भीष्म प. 43
2. म.द्रोण प.अ.34। श्लोक 13
3. वही अ.87
4. वही - पृ.192

फिर जैसे चाहो पुण्य कमाओ, हाँ, है भी तो यह धर्मयुद्ध
अब क्या है ?[1]"

इस काव्य में द्रोण के इस कथन से प्रभावित होकर अप्रत्याशित रूप से अभिमन्यु - वध हो जाता है । 'जयभारत' में भी गुप्तजी ने द्रोण के चरित्र को पूर्ण रूप से कलंकित नहीं किया है । 'जयभारत' में द्रोण द्वारा व्यूहरचना होती है, लेकिन इसके अतिरिक्त उनके क्रूर और पैशाचिक कृत्य का वर्णन गुप्तजी ने नहीं किया है[2]। किन्तु इसके विरुद्ध जयद्रथ-वध के इस प्रसंग में द्रोण का चरित्र पूर्ण रूप से लांछित हो गया है । इस काव्य के द्रोण अभिमन्यु वध में सक्रिय सहयोग देते हैं और अभिमन्यु उनकी पाशविकता और कायरता की खिल्ली उड़ाते हैं[3]। गुप्तजी ने उनके चरित्र को उत्कर्षित करने के प्रयास में उनकी आत्मग्लानि का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे द्रोण का चरित्र लांछन से मुक्त हो जाता है[4]। इस काव्य में उनके अनुपमेय साहस और पराक्रम भी पूर्णतः व्यक्त हुआ है । अर्जुन, युधिष्ठिर, सात्यकि जैसे पाण्डव पक्ष के प्रमुख वीरों के साथ उनका विस्तृत युद्ध वर्णन प्रस्तुत किया गया है जो अत्यन्त अनुपम है । इनमें से कोई भी उन्हें पराजित न कर सकता है और वे सब उनकी अद्वितीय धनुर्धरता को उद्घोषित करने केलिए बाध्य हो जाते हैं ।

ब्राह्मणत्व का अभाव

महाभारतीय द्रोण ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रियोचित गरिमासे तेजदीप्त है । उनकी असाधारण परिस्थितियों ने उन्हें क्षात्रधर्म स्वीकार करने केलिए विवश किया है । द्रुपद-पराजय की घटना में तथा महाभारतीय युद्ध में उनका क्षात्र तेज ही अधिक झलकता है । लेकिन बीसवीं सदी के काव्यों के द्रोण ब्राह्मणत्व को छोड़कर क्षत्रियत्व स्वीकार करने से असंतुष्ट दिखते हैं ।

---

1. द्रोण - पृ.74 2. जयभारत - पृ.379-380
3. जयद्रथ वध - पृ.19 4. वही - पृ.68-69

"द्रोण" काव्य में वे बार-बार अपने मन को समझाते हैं कि वे ब्राह्मण हैं, वे जो कर रहे हैं वह अनुचित है । उनका अन्तर्द्वन्द्व देखिए -

"पर विश्व के संसार को मैं क्या करूँ /
इस युद्ध में भी हो रहे बलवान हैं
इस युद्ध में भी धर्म का भय है मुझे
इस पाप में भी शीश पर आगवान है[1] ।"

"जयभारत" के द्रोण भी क्षात्र धर्म को स्वीकार करने में ग्लानि का अनुभव करते हैं ।

चारित्रिक कमी

द्रोण की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि सत्य, धर्म, शक्ति आदि मानवीय मूल्यों के समर्थक होने पर भी वे इसे प्रवृत्तिपथ में नहीं ला पाये हैं । उन्होंने पाण्डव-कौरव युद्ध को रोकना चाहा, लेकिन वे इसमें असफल हो जाते हैं । वे श्रीकृष्ण के शान्ति - सन्देश को सफल बनाने केलिए बार-बार दुर्योधन को समझाते हैं,[2] लेकिन इस कार्य में भी उन्हें सफलता नहीं मिलती इसीप्रकार वे अच्छी तरह जानते हैं कि सत्य और न्याय पाण्डवों के साथ है, लेकिन सेवावृत्ति की विवशता के कारण उन्हें कौरवपक्षी होना पड़ता है[3] । इसी ने उन्हें दुर्योधन के अनेक दुष्कर्मों का भी मौन सहमति देने केलिए प्रेरित किया है । सबसे बड़ी दु:खद घटना तो यह है कि इन्हीं के सामने ही द्रौपदी को विवस्त्रा बनाने का प्रयास किया गया है और वे इसके मूक दर्शक बने रहते हैं[4] । चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में इस अत्याचार और अन्याय को भी उन्हें मौन सहमति देनी पड़ी है । खड़ीबोली के कवियों ने भी द्रोण-चरित्र

---

1. द्रोण - पृ.60 2. म.उद्यो.प.अ.126

3. म.भीष्म.प.अ.43 4. म.सभा.प.अ.48

दुर्बलता का जीता जागता चित्र खींचा है । 'द्रोण' काव्य के द्रोण भी मनसा या वाचा दुर्योधन की दुष्प्रवृत्ति का समर्थन नहीं करते । लेकिन अपनी सेवावृत्ति की विवशता ने उन्हें दुर्योधन के अनुकूल आचरण करने केलिए प्रेरित किया है । गुप्त जी ने भी चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में अधर्म के पक्ष-धर कौरवों केलिए लड़नेवाले द्रोण का चित्र खींच लिया है । लेकिन 'जयद्रथ-वध' में अपने पाप कर्मों से पश्चात्ताप विवश, प्राण देकर भी प्रायश्चित्त करने केलिए आकुल द्रोण के चरित्र का उद्घाटन करके कवि ने उनके चरित्र को उजागर किया है[1] ।

द्रोण चरित्र का विवेचन करने पर यह देखा जा सकता है कि अत्यंत तेज, पराक्रम तथा धनुर्वेद में दक्ष होने पर भी चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में वे समाज के सामने किसी विशेष आदर्श उपस्थित करने में असफल ही है । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने महाभारत के द्रोण के चरित्र को उत्कर्षित करने का जो सफल प्रयास किया है वह स्तुत्य ही है ।

भीष्म

कौरव-पाण्डवों के पितामह भीष्म महाभारत का एक स्थिर आदर्श चरित्र है । अपनी दो भीषण प्रतिज्ञाओं के कारण ही उनका नाम भीष्म बन जाता है और इन दो गंभीर प्रतिज्ञाओं ने ही उन्हें इतना यशस्वी भी बना दिया है । महाभारत में भीष्म की चारित्रिक विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया गया है । लेकिन खड़ीबोली हिन्दी काव्य में उनके चरित्र पर आधारित कोई स्वतंत्र काव्यकृति तो नहीं है । फिर भी महाभारत पर आधारित खड़ीबोली के अधिकांश काव्यों में भी उनका चरित्र अभिव्यक्त किया गया है । खड़ीबोली के कवियों ने उनके परम्परागत गुणों को सशक्त

---

1. जयद्रथ वध - पृ.68-69

बनाने के साथ साथ युगानुकूल कुछ नवीन गुणों से भी उन्हें विभूषित किया है। लेकिन कतिपय आधुनिक कवियों ने उनके दोषों का उचित समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तो कुछ नवीन कलाकारों ने उनके आदर्शवादी स्थिर-चरित्र में भी मानसिक द्वन्द्वों के स्रोतों को भी खोज निकाला है। उनके चरित्र का विशद विश्लेषण किया जाएगा।

आदर्श पितृभक्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य

अपनी सीमातीत पितृभक्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य केलिए भीष्म का चरित्र मशहूर है। इन दोनों ने उन्हें विश्वव्यापी व्यक्तित्व प्रदान किया है। पिता के भौतिक सुखभोग केलिए वे राज्य तथा सुखभोग का परित्याग करके विश्व के सामने उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करते हैं[1]। विविध भाँति प्रलोभित होने पर भी वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहते हैं[2]। पिता की मृत्यु के बाद वे उनके पुत्रों को गद्दी पर बिठाकर राज्य संचालन का कार्य करते हैं। उन राजकुमारों की भी मृत्यु होने पर कुल रक्षा केलिए भी वे प्रण भंग करने केलिए तैयार नहीं होते। प्रण-रक्षा के सामने वे माता के अनुरोध को भी तुच्छ मानते हैं। धर्मपालन में उनकी समता रखनेवाले अकेले पूज्य परम आदरणीय श्रीराम जी मात्र हैं। खड़ीबोली के कवि विशेषकर गुप्तजी ने उनके चरित्र की बड़ी महानता के साथ पूर्ण न्याय किया है। वे पितृ भक्ति से प्रेरित होकर उनके भावी भ्राता केलिए राज्य ठुकरा देते हैं[3]।

भीष्म के इस महान त्याग और महानता की उद्घोषणा करते हुए दिनकर जी कहते हैं कि धर्म के नाम पर राज्य तथा स्नेह के कारण प्राण तक को त्यागने की महानता अकेले वे ही कर सकते हैं -

---

1. म॰ आदि॰ प॰ अ॰100
2. वही - म॰ अ॰104
3. जयभारत - पृ॰ 35

"किया विसर्जित मुकुट धर्म -हित, और स्नेह के कारण प्राण
पुरुष विक्रमी कौन दूसरा, हुआ जगत में भीष्म समान[1] ।"

"सेनापति कर्ण" में मिश्रजी ने भीष्म के ब्रह्मचर्य व्रती, नीतिज्ञ रूप का भव्य चित्र खींचा है । इस काव्य में मिश्रजी एक पग आगे बढ़कर भीष्म के ब्रह्मचर्य व्रत को शंकर के कुसुमायुध जीत के समकक्ष उद्घोषित करते हैं । उनके अनुसार अजेय कुसुमायुध को जीतने में शंकर के बाद मात्र भीष्म ही सफल रहे हैं, । अन्य देवता तथा दैत्य भी इस कार्य में विफल रहे हैं[2]। अन्य इस काव्य में कवि कामदेव के प्रसंग को उठाकर भीष्म के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति कराने में सफल हुए हैं । कामदेव अपने सारे प्रयत्नों के बाद शरशय्याशायी भीष्म मन में अम्बा की चिन्ता जगाने में सफल हुए हैं । भीष्म का मानसिक द्वन्द्व देखिए -

न पीड़ा दो /
अम्बा अब विवश पड़ा हूं शरशय्या में
छोड़ी रूप माधुरी तुम्हारी कुल रक्षा के
हेतु से निवारणकिया जो धर्म सृष्टि का
पा रहा उसी का भोग, मृत्यु की भी मुख में
गति अबोध नहीं, मृत्युंजय होना भी
चाहता नहीं हूं, किस लालसा सा जग में
जीवन की कामना करूंगा ? अनुराग से
हीन तो रहेगा नहीं अचल सुमेरु भी
जलती अकेली समिधा भी नहीं कुंड में[3] ।

---

1. कुरुक्षेत्र - पृ.36
2. सेनापति कर्ण - पृ.22
3. वही - पृ.107

अटल और अखण्ड भीष्म के व्यक्तित्व को इस प्रकार के कुसुम कोमल मानवीय संवेदनाओं से सज्जित करना कवि की कुशल लेखनी का निदर्शन है । उनके अखण्ड व्यक्तित्व पर खड़ीबोली के कोई भी कवि शङ्कालु नहीं, सब उनके त्याग और कठोर व्यक्तित्व को मानने केलिए तैयार हैं ।

वीरता

परम्परागत भीष्मचरित्र का और एक उल्लेखनीय गुण है वीरता । वीरता और पराक्रम से तेजदीप्त भीष्म के व्यक्तित्व पर कौरव और पाण्डव दोनों दल मुग्ध हैं । महाभारत में काशीराज कन्या हरण, परशुराम के साथ युद्ध प्रसंग[2] तथा अंतिम युद्ध में भी उनका क्षात्र तेज गंभीर रूप में झलकता है[3] । युद्धक्षेत्र में भीष्म विकराल रूपधारण कर लेते हैं । उन्हें पराजित करना असंभाव्य जानकर ही युधिष्ठिर आदि उन्हीं से उनके वध की युक्ति पूछते हैं । उनके अतुल्य पराक्रम ने श्रीकृष्ण को भी प्रणाम करने केलिए प्रेरित किया है । लेकिन महाभारत की द्यूत क्री सभा में उनका क्षात्र तेज खतरे में पड जाता है । क्योंकि उन्हीं के सामने ही द्रौपदी को विवस्त्रा करने का परिश्रम किया जाता है[4] उनके परम पूजनीय और क्षात्रतेजोद्दीप्त व्यक्तित्व को यह पूर्ण रूप से लांछित करता है । इसी प्रकार सत्य और न्याय पाण्डवों के साथ होने पर भी भीष्म के द्वारा अन्यायी के पक्षधर होने केलिए महाभारतकार ने उचित समाधान नहीं खोज निकाला है । लेकिन खड़ीबोली के काव्यों में उनकी अनुचित करनी केलिए उचित समाधान ढूंढ निकाला गया है । "कुरुक्षेत्र" में आत्मग्लानि से व्यथित, चिन्तामग्न भीष्म का चरित्र कवि ने उतारा है । नारी अपनी लज्जा की रक्षा केलिए नर से निराश होकर सुर को पुकारने लगी है । इससे अपमानित, अपने जीवन को धिक्कारनेवाले आत्मग्लानि पूर्ण "कुरुक्षेत्र" के भीष्म का व्यक्तित्व देखिए -

-----

1· म·आदि·प·अ·102 2· म·उद्यो·प·अ·178-185

3· म·भीष्म·प·अ· 43-119 4· म·सभा·प·अ·48

"और रहा जीवित मैं, धरणी फटी न दिग्गज डोला
गिरा न कोई वज्र, न अम्बर गरज क्रोध में बोला ।"[1]

इसी प्रकार महाभारत - युद्ध में भीष्म के दुर्योधन के पक्षधर होने केलिए भी दिनकरजी ने उचित समाधान ढूंढ निकाला है । "कुरुक्षेत्र" के भीष्म को अपनी वृद्धावस्था के कारण, दुर्योधन के यहाँ रहने केलिए मजबूर होने के कारणअत्याचार और अन्याय का भागीदार भी होना पड़ा है । इसी प्रकार गुप्तजी ने भी भीष्म के आत्मगौरव तथाउच्च शील को सुरक्षित रखने का समुचित प्रयासकिया है । गुप्तजी ने द्रौपदी के अपमान को भीष्म के अभाव में चित्रित किया है । विदुर से सारा समाचार जानने पर वे घबड़ा जाते हैं और दुःखी बन जाते हैं । वे पश्चात्ताप विवश हो जाते हैं और पश्चात्ताप की तीव्रता में अपना जीवन ही युधिष्ठिर के यहाँ धरोहर रख देते हैं[2] ।

इस प्रकार गुप्तजी ने भीष्म का पूर्ण रूप से आदर्शात्मक चित्र उपस्थित करने में सफल हुए हैं । इसके विरुद्ध ~~वाल्मीकि रामायण~~ लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने "सेनापति कर्ण" में कर्ण तथा भीष्म के चरित्र को ~~आदर्शात्मक रूप~~ देने केलिए द्रौपदी के अपमान को तर्क द्वारा न्याय सिद्ध करने का प्रयास किया है कवि द्रौपदी के अपमान केलिए उन्हें ही दोषी बताते हैं[3] । क्योंकि उन्होंने पहले भरी सभा में नर का अपमान किया है और नर उस समय उसका बदला चुका रहा है । मिश्र जी के अनुसार इसलिए ही भीष्म, द्रोण जैसे महापण्डित भी अवाक् रह गये हैं[4] । इसका न्यायान्याय जो भी हो, यह बात तो स्पष्ट है कि खड़ीबोली के अधिकांश कवि भीष्म के चरित्र की महानता, उनके आत्मतेज तथा पाण्डित्य का स्वीकार करने केलिए तैयार हैं ।

---

1. कुरुक्षेत्र - पृ.45
2. जयभारत - पृ.131
3. सेनापति कर्ण - पृ.125
4. वही - पृ.126

नवीनताएँ

खड़ीबोली के कवियों ने भीष्म-चरित्र के परम्परागत गुणों को सशक्त बनाने के साथ कुछ नवीन विशेषताओं से उन्हें विभूषित करके पूर्ण आदर्शात्मक रूप प्रदान किया है। 'जयभारत' में उनके वज्रकठोर व्यक्तित्व को कोमल बनाने का परिश्रम किया गया है। यहाँ के भीष्म द्रोण जैसे आचार्य के प्रति भी पूज्य भाव रखते हैं। वे द्रुपद के अपमान का प्रतिशोध लेने केलिए स्वयं तैयार हो जाते हैं। एकलव्य के भीष्म कुशल राजनीतिज्ञ हैं।[1] बाण-विद्या में दक्ष अनार्य जाति से वे सदा शंकित हैं। वे आर्यजाति के विकास केलिए राजकुमारों को अनुपम धनुर्धर बनाने के अभिलाषी हैं। इसके लिए वे अद्वितीय धनुर्धर द्रोणाचार्य को कुमारों की शिक्षा देने केलिए नियुक्त करते हैं। इन सबसे बढ़कर 'कुरुक्षेत्र' तथा 'सेनापति कर्ण' के भीष्म पूर्णरूप से मानवतावाद के समर्थक हैं। भीष्म के चरित्र की महानता वहाँ व्यक्त होती है जब वे शरशय्या शायी होकर युद्ध पर विचार करते हैं। समरभूमि में प्राण त्याग देने केलिए मजबूर वीरजनों के प्रति "सेनापति कर्ण" के भीष्म के मन में सहानुभूति है। वे स्पष्ट रूप से अपने विचार व्यक्त करते हैं कि कुन्ती एक पुत्र के रक्षार्थ आई हैं, किन्तु रण में मारे जानेवाले वीर भी किसी ममत्व के आधार हैं, जब उनकी चिन्ता नहीं की जाती तो हम अपनी चिन्ता क्यों करें? पूर्ण रूप से प्रखर मानवता की व्याख्या करनेवाले भीष्म का यह रूप अत्यंत अनुपम है।[2] 'कुरुक्षेत्र' में आने पर भीष्म मानवतावाद की स्थापना केलिए साम्यवाद की आवश्यकता पर जोर देते हैं। "कुरुक्षेत्र" के भीष्म पूर्ण रूप से कवि दिनकर जी को ही मुखरित करते हैं। यहाँ भीष्म भाग्यवाद का विरोध करते हुए कर्मवाद के समर्थक हैं। उनके अनुसार सत्य और न्याय की स्थापना केलिए, अधिकार की रक्षा केलिए तथा मानवता के कुचले जाने पर युद्ध अनिवार्य ही है। असल में भीष्म युद्ध के पक्षपाती नहीं हैं, किन्तु वे युद्ध की नियति के

---

1. एकलव्य - पृ. 29-30
2. सेनापति कर्ण - पृ. 122

बारे में कहना चाहते हैं कि व्यक्ति के संदर्भ में जो मूल्य हैं वे ही समाज के सन्दर्भ में दोष बन जाते हैं । वे यह भी कहना चाहते हैं कि समाज में जब तक विषमताएं हैं, जब तक दो वर्गों के सुखों और सुविधाओं में आकाश-पाताल का अंतर है तब तक युद्ध की संभावना मिटाई नहीं जा सकती । भीष्म के माध्यम से कवि ने आज के समाज के वैषम्य, विसंगति और भयानक विषमता को उद्घाटित करने का जो सफल प्रयासकिया है वह अत्यंत समीचीन लगता है ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि खड़ीबोली के कवि ने भीष्म-चरित्र के साथ पूर्ण न्याय तो किया है । उन्होंने पूर्ण रूप से उनके चरित्र को एक आदर्शात्मक अभिव्यक्ति ही प्रदान की है । आज की विषम परिस्थितियों से जनजीवन को उठाने केलिए साम्यवाद, मानवतावाद जैसे महानसिद्धान्तों की आवश्यकता की अभिव्यक्ति कवि इनके माध्यम से कराने में पूर्णतः सफल हुए हैं ।

एकलव्य

यद्यपि एकलव्य का चरित्र महाभारत में मात्र एक प्रासंगिक कथा में अभिव्यंजित हुआ है तो भी वे महाभारत के एक यशस्वी पात्र है । महाभारत में केवल तीस श्लोकों के अंतर्गत ही उनकी कथा प्रस्तुत की गई है । फिर भी प्रमुख पात्रों से भी महान आदर्श उपस्थित करने में वे सक्षम रहे हैं । उनके चरित्र के इसी उदात्त और आदर्श पक्ष ने खड़ीबोली हिन्दी साहित्य के कवियों को काव्यरचना की प्रेरणा प्रदान की है । उनकी चारित्रिक उज्वलता से आकृष्ट होकर डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने उनके नायकत्व पर "एकलव्य" की रचना की है । एकलव्य की महानता को उद्घोषित करते हुए डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने जो कहा है वह सबकेलिए प्रेरणादायी है । कवि का कथन है - "एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण केलिए भी आदर्श है । वह अनार्य नहीं है, आर्य है क्योंकि उसमें शील का प्राधान्य है ।"[1]

---

1. एकलव्य - आमुख - पृ॰6

उनके नायकत्व पर अन्य अनेक कवियों ने भी काव्य लिखे हैं । लेकिन विवेच्य काल में केवल यही एक काव्य है जिसपर एकलव्य की चारित्रिक उज्वलता पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है । "जयभारत" जैसे संपूर्ण महाभारत-कथा पर आधारित काव्यों में भी उनकी चारित्रिक उज्वलता पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है । एकलव्य के चरित्र की मुख्य विशेषताएं हैं - धनुर्वेद के प्रति तीव्र एवं सच्ची जिज्ञासा, साधक के रूप में साधना की गंभीर अनुभूति, गुरुभक्ति तथा उच्च शीलाचरण । महाभारत में एकलव्य चरित्र के इन सारे गुणों का संकेत मात्र दिया गया है । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने इन संकेतों के आधार पर मनोवैज्ञानिकता के सहारे एकलव्य चरित्र का जीता जागता चित्र खींचा है । इसका विशद विवेचन आगे किया जाएगा ।

धनुर्वेद शिक्षा

एकलव्य चरित्र की मुख्य विशेषता धनुर्वेद के प्रति उनकी अनन्य संलग्नता है । निषादपुत्र होने पर भी अत्यंत सुसंस्कृत एकलव्य गुरु द्रोण की धनुर्विद्या देखते ही उनके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं । धनुर्वेदार्जन की तीव्र एषणा से वे जलने लगते हैं । वे गुरु से शिक्षा की भीख मांगते हैं, लेकिन मात्र निषाद होने के नाते वे अस्वीकृत हो जाते हैं । अस्वीकृति होने पर भी उनकी तीव्र जिज्ञासा शान्त नहीं होती । महाभारत में एकलव्य मौन रूप से गुरु की अस्वीकृति को स्वीकारते हैं[1] । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने गुरु और शिष्य के बीच के संवाद के माध्यम से उनकी तीव्र जिज्ञासा को प्रकट करने का सफल प्रयास किया है । "जयभारत" के एकलव्य परम निर्भीक भाव से गुरु की अस्वीकृति को अनौचित्य घोषित करते हुए कहते हैं कि कला को बांध रखने का

---

1. महा० भ० आदि० प० अ० 131

उनका यह प्रयास बिलकुल अनुचित है और उन्हें इस प्रयास में सफलता भी नहीं मिल सकती।[1] "एकलव्य" काव्य में भी धनुर्वेद के प्रति सच्ची जिज्ञासा से प्रेरित होकर एकलव्य तर्कों द्वारा अपने पक्ष का समर्थन करने का प्रयास करते हैं। वे गुरु के सामने धनुर्वेद ज्ञान की प्राप्ति केलिए अपने आपको समर्पित करने तक की आतुरता प्रकट करते हैं।[2] निषादपुत्र होते हुए भी वे धनुर्वेद के ज्ञान को हिंसा केलिए नहीं रक्षा केलिए करने के इच्छुक है। जब वे गुरु से कहते हैं कि वे आचार्य के पास अपने आपको शिष्य बनाने केलिए नहीं बल्कि द्रोण को गुरु का गौरवपूर्ण पद देने केलिए ही आए है, तब उनकी जिज्ञासा की गहराई आंकी जा सकती है -

> "आप गुरु होंगे, शिष्य मैं हूं चिरकाल से
> वाणी आपकी है शुभ्र डमरु निनाद - सी
> और मैं हूं अन्त्य वर्ण कुछ प्रत्याहार का।[3]"

उनकी तीव्र इच्छा के सामने गुरु द्रोण भी चौंक जाते हैं और यहां तक कह रहे हैं "एकलव्य यह वीरता का बीज है।

जिसमें सफलता प्रच्छन्न बनी बैठी है / कैसे मैं सकूंगा रोक[4]।"

साधना

एकलव्य-चरित्र को इतनी महत्ता प्रदान करनेवाली दूसरी कड़ी उनकी अनुपम साधना है। महाभारत में उनकी साधना तथा सिद्धि की बात दो श्लोकों में ही स्पष्ट कर दी गई है।[5] लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने

---

1. जयभारत - पृ.53
2. एकलव्य - पृ.120,122,123,124
3. वही - पृ.124
4. वही - पृ.125
5. म.आदि.प.अ.131, श्लोक.34,35

विस्तार से उनकी साधना तथा सिद्धि का चित्र खींचा है । "जयभारत" के एकलव्य आत्म-शयन भी भूलकर साधना में नित्य रत है कि वे केवल कुत्ते के मुंह में बाण मारने में ही नहीं, अपितु गुरुमूर्ति पर चढ़नेवाले कीड़े को भी बिना चोट लगाये नीचे गिराने में भी सक्षम बन जाते हैं । "एकलव्य" काव्य के एकलव्य अपनी साधना में आत्मविस्मृत होकर नित्य शत-शत लक्ष्यों का संधान करते हैं । अन्तर्दृष्टि से अभिप्रेरित होकर वे नए नए धनुषों और बाणों का निर्माण करते हैं[1] । उनके मन में तत्कालीन युग के उच्च-नीचत्व की भावना, वर्ण वैषम्य की भावना के प्रति कठोर क्षोभ और निन्दा है । वे अपनी कठोर साधना द्वारा इन सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन करके दानव को मानव बनाने केलिए आतुर हैं[2] । अपनी कठिन साधना से वे अनुपम धन्वी बन जाते हैं और अर्जुन तक को इसकी उद्घोषणा करना पड़ा है । उनकी साधना के मर्म को समझने में असमर्थ होने पर भी अर्जुन उनकी अद्वितीयता की उद्घोषणा करते हैं[3] । द्रोण एकलव्य की साधना तथा सिद्धि पर इतना मुग्ध हैं कि उनका उद्गार देखिए -

"साधु एकलव्य ! तुम साधना के स्वामी हो
जानते नहीं हो, ज्ञान आ गया हैकितना
किन्तु जानता हूँ धनुर्वेद, कहता हूँ मैं-
तुम सा कुशल धन्वी दूसरा नहीं[4] ।"

द्रोण के इस कथन से एकलव्य की दक्षता का पूर्ण रूप व्यक्त होता है ।

---

1. एकलव्य - पृ.208
2. वही - पृ.198
3. वही - पृ.254,264,265,268
4. वही - पृ.287

गुरुभक्ति

एकलव्य चरित्र का सबसे उल्लेखनीय गुण उनकी अटूट गुरुभक्ति है। महाभारत में गुरु द्वारा दाहिने अंगूठे की गुरुदक्षिणा मांगी जाने पर वे झिझके बिना सहर्ष उन्हें दे देते हैं। इस प्रकार के महान कार्य एकलव्य जैसे उच्च आदर्शवाले व्यक्ति ही कर सकते हैं। महाभारत में गुरु ने उनके साथ पूर्ण रूप से अत्याचार किया है, गुरुदक्षिणा के नाम पर उनके साथ विश्वासघात किया है और वहाँ एकलव्य वचनबद्ध भी हो चुके हैं। 'जयभारत' ~~में गुप्तजी के एकलव्य वचनबद्ध भी हो चुके हैं~~। 'जयभारत' में गुप्तजी के एकलव्य अपना दाहिना अंगूठा देने केलिए बाध्य नहीं है। गुरु को कलंक कालिमा से बचाने केलिए वे द्रोण के बिना पूछे ही अपना दाहिना अंगूठा काट कर देते हैं[1]। लेकिन इन सबसे बढ़कर डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने एकलव्य के शिष्यत्व को आदर्श की चरम सीमा पर चित्रित किया है। वे आदर्श गुरुभक्त हैं और किसी भी परिस्थिति में गुरु निन्दा सुनने केलिए तैयार नहीं। गुरु निन्दा करनेवाले अर्जुन को डाँटते हुए वे कहते हैं -

'सावधान, आर्य ! गुरु निन्दा एक क्षण भी
सुन न सकूँगा आपके वाचाल मुख से[2]।'

अपने गुरु को संकट से बचाने केलिए, अर्जुन को अद्वितीय बनाने के उनके प्रण की पूर्ति केलिए वे गुरु के द्वारा बिना मांगे ही अपना दाहिना अंगूठा प्रदान करते हैं। अपने गुरु को कलंक से बचाने केलिए, कठोर साधना की सिद्धि को पल भर में समाप्त करने केलिए वे तनिक भी हिचकते नहीं।

---

1. जयभारत - पृ॰56
2. एकलव्य - पृ॰254

यह कैसा महान त्याग है, बलिदान है ? द्रोण भी उनकी महानता पर मुग्ध होकर उनकी गुरुता की तुलना में अपनी लघुता को उद्घोषित करते हैं -

> "एकलव्य हे / तुम सिद्ध हो, हे शिष्य, गुरु द्रोण क्षुद्र हे
> हाँ, तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है[1] ।"

यहाँ के एकलव्य गुरुदक्षिणा की कसौटी पर पूर्णतः खरे उतरते हैं और भविष्य के शिष्यों केलिए पूर्णतः आदर्श बन जाते हैं -

> "गुरु भक्ति ऐसी जो भविष्य के भाल पर
> तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट के[2] ।"

ये आदर्श शिष्य गुरुदक्षिणा चुकाकर गुरु से उऋण होने की आतुरता नहीं व्यक्त करते, क्योंकि वे अपने पुण्य में भी गुरु का भागी बनाना चाहते हैं । अपनी अभिलाषा की अभिव्यक्ति वे सुन्दर वाणी में स्पष्ट करते हैं[3] । उनके महान आदर्श के सामने सब शिष्यों को उनके सामने नतमस्तक होना ही पड़ता है ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि एकलव्य चरित्र की सारी महानता को आत्मसात करने में खड़ीबोली के कवि पूर्णतः सफल हुए हैं । महाभारत में केवल संकेतों में चित्रित एकलव्य के मौन बलिदान को इतना विस्तृत और आदर्शात्मक रूप प्रदान करना खड़ीबोली के कवि की कुशल लेखनी का निदर्शन ही है । वे एकलव्य के चरित्र के द्वारा आधुनिक जीवन में गुरु शिष्य के बीच स्नेह और आदर के क्षीण तंतु को दृढ करना चाहते हैं । एकलव्य की साधना किसी भी शिष्य केलिए अनुकरणीय हो सकती है । एकलव्य के चरित्र के माध्यम से

---

1. एकलव्य - पृ.296
2. वही - पृ.297
3. वही - पृ.299

डॉ॰ वर्मा ने दूषित राजनीति, शिक्षा की अव्यवस्था, छुआछूत की भावना जैसी युगीन समस्याओं की ओर संकेत किया है । वे जन्मगत उच्चता के भाव को समाप्त करके मानव मात्र की समानता को उद्घोषित करते हैं । महाभारत का यही संदेश कवि एकलव्य के माध्यम से आधुनिक युग को देना चाहते हैं कि

जन्मना जायते द्विजः कर्मणा जायते शूद्रः
जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः ।"

धृतराष्ट्र

महाभारत में धृतराष्ट्र के चरित्र का अपना अलग अस्तित्व है । महाभारतीय संग्राम के मूल दुर्योधनादि के पिता तथा विशाल राज्य के राजा थे ही उनके महत्व के निदान हैं । धृतराष्ट्र के चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनका अन्धा पुत्रस्नेह और और पाण्डव विरोध है । महाभारत में धृतराष्ट्र का चरित्र विभिन्न रूप लिए हुए है । युद्ध के पूर्व धृतराष्ट्र को पुत्रप्रेमान्ध और पाण्डव विरोधी देखा जाता है तो युद्ध के अवसर पर विदुर नीति के कारण विह्वल शोकसंतप्त । युद्ध के बाद वे युधिष्ठिराश्रित होकर संयमी और वनवासी बन जाते हैं ।

पाण्डव विद्वेषी

धृतराष्ट्र कुशल नीतिज्ञ या राजा से बढ़कर पुत्रप्रेमान्ध पिता हैं । इसलिए स्वाभाविकतया वे पाण्डवों के विद्वेषी भी हैं । वे ऊपर से पाण्डव हितचिन्तक प्रमाणित करने का असफल प्रयास करते हैं । महाभारत में,

स्त्रीपर्व में कवि ने इसका वर्णन किया है[1]। पाण्डवों को वारणावत भेजना[2] तथा द्यूत की आज्ञा देना[3] तथा द्यूत के समय "क्या जीत मिला[4]?" प्रश्न करके प्रसन्न होना आदि उनके पाण्डव विद्वेष का सुन्दर संकेत है। यह पाण्डव विरोध तब अपने चरम उत्कर्ष पर देखा जाता है जब वे भीम सोचकर भीम की लोहमूर्ति को आलिंगन-पाश में चूर्ण-विचूर्ण करने केलिए उद्यत होते हैं[5]। खड़ीबोली हिन्दी साहित्य में धृतराष्ट्र चरित्र पर आधारित कोई स्वतंत्र काव्यकृति नहीं मिलती लेकिन महाभारत पर आधारित सभी आधुनिक काव्यों में भी उनका चरित्र किंचित मात्रा में व्यंजित हुआ है। इन काव्यों में भी उनका चरित्र पाण्डव-विद्वेष तथा राज्यलोलुपता से हीन रहा है। खड़ीबोली के कवियों ने भी धृतराष्ट्र के चरित्र की हीन मनोवृत्ति का सशक्त अंकन किया है[6]। लेकिन गुप्तजी ने धृतराष्ट्र के चरित्र का उद्धार करने का अवश्य प्रयत्न किया है। उनके धृतराष्ट्र शारीरिक और वैयक्तिक रूप से विवश होने के कारण पापकर्म केलिए बाध्य हो जाते हैं। जन्म से अन्धे होने के कारण वे दुर्योधनादि के अधीन हैं और दुर्योधनादि उन्हें भय दिखलाकर अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हैं। उनकी इस विवशता की अभिव्यक्ति कवि ने घोषयात्रा के प्रस्ताव तथा द्यूत प्रसंग में अवश्य की है। घोषयात्रा का प्रस्ताव ये "हूँ" करके सुनते हैं और "आह" करके उसकी स्वीकृति दे देते हैं[7]। "जयभारत" के द्यूतप्रसंग में अपने अन्धे ममत्व से वे स्वयं लज्जित हो जाते हैं[8]। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के दौत्य में वे अपने पुत्र की क्रूर करनी केलिए क्षमा याचना करते हुए झुककर अपनी विवशता तथा दुर्बलता को स्वीकारते हैं -

---

1. म॰स्त्री॰प॰अ॰12,13
2. म॰ आदि॰ प॰अ॰141
3. म॰सभा॰प॰अ॰58
4. म॰सभा॰प॰अ॰65 श्लो॰43
5. म॰स्त्री॰प॰अ॰12,श्लो॰17
6. जयभारत - पृ॰69
7. वही - पृ॰193
8. वही - पृ॰149

"हाँ, माँ ने ही मूँदी जहाँ आँखें श्रद्धाधान में
क्या अधिक मोह दौर्बल्य यह उसकी मूढ़ संतान में।[1]"

यहाँ कवि ने पिता के वास्तविक कर्तव्य करने में असफल मात्र पुत्रप्रेमान्ध पिता का चित्र ही खींचा है। इस असफलता के लिए कवि ने उनकी विशेष परिस्थिति उनके अन्धेपन को दोषी ठहराया है। "अन्धायुग" में भी कवि धर्मवीर भारती ने धृतराष्ट्र की अंधी ममता और उनके अन्धे पुत्र स्नेह पर प्रकाश डाला है। वे अपने पुत्रों के प्रति ममता के बंधन में आबद्ध होने के कारण वास्तविक "सत्य और नीति को परखने में असमर्थ हो जाते हैं। इसकी स्वीकृति करते हुए वे स्वयं कहते हैं -

"मैं ने अपनी वैयक्तिक संवेदन से जो जाना था /
केवल उतना ही था मेरे लिए वस्तुजगत / मेरी सब
वृत्तियाँ उसीसे परिचित थीं।
मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म, बिल्कुल मेरा
ही वैयक्तिक था
उसमें नैतिकता का कोई बाह्य मापदण्ड था ही नहीं।
कौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे / वे ही थे अंतिम सत्य /
मेरी ममता ही वहाँ नीति थी / मर्यादा थी[2]।"

भीष्म, द्रोण तथा श्रीकृष्ण आदि उन्हें इसके प्रति चेतावनी देते हैं,[3] लेकिन उनकी अन्तर्मुखी संवेदनशीलता सामाजिक मर्यादाओं को समझने में असमर्थ रही है। "अन्धायुग" में कवि ने धृतराष्ट्र को पाण्डव विरोधी से

1· जयभारत - पृ·333

2· अन्धायुग - पृ·97-98

3· वही - पृ·17

बढ़कर राज्यलोभी दिखाने का परिश्रम किया है । महाभारत के कटु पाण्डव विद्वेषी धृतराष्ट्र युद्ध के बाद भीम को चूर्ण विचूर्ण करने में असफल होने पर पश्चात्ताप विवश होकर पाण्डवों को पुत्रवत स्वीकार कर लेते हैं । किन्तु यहाँ के धृतराष्ट्र पराजित होने पर भी राज्यासक्ति से विमुख नहीं रहे हैं । वे युयुत्सु को सान्त्वना देते हुए कहते हैं -

> "वत्स, तुम मेरी आयु लेकर भी जीवित हो /
> तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर / सब राजपाट तुमको ही
> सौंप दें ।"[1]

यहाँ कवि ने धृतराष्ट्र के माध्यम से आज के युग के अन्धत्व के साथ साथ "अन्धे शासक का यथार्थ चित्र भी खींचा है । धृतराष्ट्र यहाँ युग के अन्धत्व के साथ साथ अन्धे शासक के प्रतीक रहे हैं । क्योंकि जिस प्रकार धृतराष्ट्र ने अन्धे होने पर भी पूरे राष्ट्र पर अपना शासनचक्र चलाया है, ममता के अन्धेपन में आबद्ध होकर सत्य और न्याय के नीति और मर्यादा के विश्लेषण में वे असमर्थ बने हैं, उसी प्रकार आज के विश्वयुगीन मानव भी अन्धे होकर विवेक और मर्यादा को खोकर मानवता को कुचलने केलिए सिद्धान्तों का कुचक्र चला रहे हैं । यहाँ कवि ने प्रतीक के माध्यम से लोगों को अपने युग और समाज की वास्तविक स्थिति से अवगत कराने का जो प्रयत्न किया है वह अनुपम है ।

अभिमन्यु

अर्जुन का बेटा अभिमन्यु पराक्रम तथा उत्साह में अपने पिता तथा मामा श्रीकृष्ण के समतुल्य ही है । महाभारत में यद्यपि उनका चरित्र

---

1. अन्धायुग - पृ.95

थोड़े समय केलिए ही अभिव्यंजित किया गया है तो भी उनके अतुलनीय पराक्रम तथा साहस ने उन्हें अमर बना दिया है । महाभारत में अभिमन्यु चरित्र से संबन्धित प्रमुख कथाप्रसंग है - अभिमन्यु द्वारा चक्रव्यूह भेदन । खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अनेक कवियों ने भी उनकी वीरता, धैर्य आदि से आकृष्ट होकर उनके चरित्र के आधार पर स्वतंत्र काव्यकृतियाँ निर्मित की है । उनमें प्रमुख है - पं॰रामचन्द्र शुक्ल सरस का "अभिमन्युवध" तथा श्री कमलाप्रसाद वर्मा का अभिमन्यु का आत्मदान । इसके अलावा गुप्त जी ने जयभारत तथा जयद्रथ वध में भी अभिमन्यु की वीरता तथा पराक्रम की अमिट छाप छोड़ी है । अभिमन्यु के चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण नीचे किया जाएगा ।

वीरता तथा साहस

अभिमन्यु के चरित्र की वीरता तथा साहस ने ही उन्हें इतनी अमरता प्रदान की है और महाभारत से लेकर खड़ीबोली के अधिकतर काव्यों में इनकी सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है । अर्जुन की अनुपस्थिति में आचार्य द्रोण द्वारा निर्मित चक्रव्यूह भेदन में ही उनकी वीरता का चरमोत्कर्ष व्यंजित होता है । सोलह वर्षीय अभिमन्यु की वीरता तथा साहस के सामने कर्ण जैसे पराक्रमी भी त्रस्त हो जाते हैं । कर्ण उनके बाणों से विद्ध होकर मात्र मानरक्षा केलिए ही युद्धभूमि में खड़े रहते हैं[1] ।" कौरव पक्षी होने पर भी द्रोण अभिमन्यु के अद्भुत पराक्रम से पुलकित हो उठते हैं[2] । गुप्तजी ने अभिमन्यु की वीरता को महाभारत से एक पग आगे ही चित्रित किया है । महाभारत में द्रोण द्वारा निर्मित चक्रव्यूह की कठोरता जानने पर अर्जुन की अनुपस्थिति में युधिष्ठिर अत्यंत चिन्तित हो जाते हैं और युद्ध कला में प्रवीण अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को युद्ध भेज जाने की प्रेरणा देते हैं । लेकिन जयद्रथवध में अभिमन्यु

---

1. म॰द्रोण प॰ 48/25
2. वही अ॰49

साहसी और पराक्रमी होने के साथ कर्तव्यनिरत भी हैं । वे युधिष्ठिर को चिंतित देखकर स्वयं युद्ध हेतु जाने केलिए उद्यत होते हैं । वे युधिष्ठिर को धीरज बंधाते हुए कहते हैं -

है तात तजिए सोच को है काम ही क्या क्लेश का
मैं द्वार उद्घाटित करूंगा व्यूह बीच प्रवेश का[1] ।

इसी प्रकार अभिमन्यु को युद्धविरत करने केलिए लालायित अपने सारथी के उपदेश भी उन्हें मान्य नहीं रहे हैं । वे धैर्ययुक्त वाणी में उन्हें समझाते हैं -

मैं सत्य कहता हूँ, सखे, सुकुमार मत मानो मुझे
यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे
है और की तो बात ही क्या गर्व मैं करता नहीं
मामा तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं[2] ।

महाभारत में अभिमन्यु के रणकौशल का विस्तृत वर्णन किया गया है श्रीकृष्ण उनकी महानता की ओर संकेत करते हुए महाभारतकार कहते हैं -

"क्षात्रधर्मपुरस्कृत्य गत: शूर: सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविन:[3] ।"

---

1. जयद्रथवध - पृ.7
2. वही - पृ.8
3. म.द्रोण प. अ.77 श्लो.21

महाभारत में अभिमन्यु का दर्पदीप्त व्यक्तित्व झलक जाता है। वे अन्याय और अत्याचार करनेवाले सप्तमहारथियों को धिक्कारते हैं। अधर्म युद्ध का आचरण करनेवाले कौरवदल के वीर सेनानियों को इसका संकेत वे पग-पग पर दे देते हैं।[1] द्रोणाचार्य से वे पूछते हैं कि क्या वीरों का यही धर्म है? इसके विरुद्ध जयभारत के अभिमन्यु अधर्म के सामने भी अचंचल रहे हैं। वे अत्यंत प्रसन्न मन से उन अत्याचारी कौरवों का सामना करते हैं।[2] यहाँ पर कवि ने अभिमन्यु के चरित्र को और भी उत्कर्षित करने का सफल प्रयास किया है जबकि "जयद्रथवध" के अभिमन्यु का चरित्र महाभारत के अनुकूल आचरण ही कर रहा है। वे दुःशासन को नराधम तथा नारकी जैसे घृणित शब्दों से संबोधन करते हैं और उसके वध से माता-पिता के ऋण से उऋण होने की अपनी अतिशय आतुरता व्यक्त करते हैं।[3] इसी प्रकार अभिमन्यु वध में पं० रामचन्द्र शुक्ल सरस ने अभिमन्यु के परम्परागत रूप को सशक्त बनाने का सक्रिय योगदान दिया है[4] जब कि पं० रघुनंदन लाल के "अभिमन्यु-वध" के अभिमन्यु का चरित्र महाभारत के अभिमन्यु चरित्र की तुलना में इतना ओजस्वी नहीं रहा है। इसके विरुद्ध "अभिमन्यु का आत्मदान" में श्री० कमलाप्रसाद शर्मा ने अभिमन्यु चरित्र के परम्परागत रूप को सशक्त बनाने के साथ साथ उसके अनुपम त्याग, मान तथा अधिकार-रक्षक रूप की विशेष उद्घोषणा की है। युद्ध भूमि में जाने के पहले वे विवश और विह्वल माँ तथा पत्नी को त्याग तथा अधिकार रक्षा की आवश्यकता समझाकर धीरज बंधाते हैं।[5] कर्म-पथ पर प्राणों की बाजी लगाने केलिए आतुर यहाँ के अभिमन्यु का चरित्र बिलकुल श्लाघनीय ही है। इसी प्रकार "द्रोण" काव्य में भी अभिमन्यु के चरित्र की अदम्य वीरता और साहस को अपने चरम उत्कर्ष पर देखा जा सकता है।

---

1. म॰द्रो॰प॰अ॰49
2. जयभारत - पृ॰379-380
3. जयद्रथवध - पृ॰15
4. अभिमन्युवध - पद 11
5. अभिमन्यु का आत्मदान - छठा सर्ग

प्रेमी रूप

महाभारत से बिलकुल भिन्न खड़ीबोली के काव्यों में विशेषकर "जयद्रथवध" तथा "अभिमन्यु का आत्मदान" में, अभिमन्यु के वीर साहसी तथा पराक्रमी रूप को उद्घाटित करने के साथ साथ उनके प्रेम परिपूर्ण संवेदनशील हृदय का भी उद्घाटन किया गया है । "जयद्रथवध" में उत्तरा से विदाई के अवसर पर प्रेम और कर्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व में उलझे हुए अभिमन्यु के चरित्र का जो चित्र खींचा गया है वह अत्यंत अनुपम है ।

"हा ! हा ! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही[1] ।"

"अभिमन्यु का आत्मदान में भी कवि ने उनके संवेदनशील प्रेमपरिपूर्ण हृदय को प्रकाशित करने का परिश्रम किया है ।

अभिमन्यु के चरित्र का विश्लेषण करने से यह देखा जा सकता है कि महाभारत से लेकर चक्रव्यूह रचना से संबन्धित खड़ीबोली के सभी परवर्ती काव्यों में अभिमन्यु के परम्परागत रूप के साथ पूर्ण रूप से न्याय किया गया है अभिमन्यु के चरित्र के द्वारा कवि कर्तव्य परायणता का वह महान संदेश प्रदान करते हैं जो आलसी और निष्क्रिय आधुनिक जनजीवन को उत्प्रेरित करने केलिए बहुत लागू प्रतीत हो जाता है । इन्द्रधनुष जैसा उनका जीवन आधुनिक मानव केलिए अनुकरणीय है ।

युयुत्सु

धृतराष्ट्र की वैश्य वैश्यजाति की पत्नी से उत्पन्न पुत्र युयुत्सु का चरित्र महाभारत का एक आदर्श चरित्र है । ~~सत्य और न्याय के पक्षधर है कि~~

1· जयद्रथवध - पृ·9,10,11

सत्य और न्याय के पक्षधर

युयुत्सु हमेशा सत्य और न्याय के पक्षधर रहे हैं। बचपन से ही वे क्रूर दुर्योधन से घृणा करते हैं और उनके गूढ तन्त्रों का संकेत पाण्डवों को देते रहे हैं। दुर्योधन ने जब एक बार पाण्डवों के भोजन को विषाक्त बनाया, तब युयुत्सु ने ही इसकी जानकारी पाण्डवों को दी[1]। उनके चरित्र की सर्वाधिक महत्ता तब व्यक्त होती है जब कुरुक्षेत्र युद्ध में भी उन्होंने पाण्डवों का साथ दिया।[2] युद्ध के बाद युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की सेवा का भार इन्हीं को सौंप दिया[3]। खडीबोली हिन्दी काव्यों में "जयभारत" तथा "अंधायुग" में युयुत्सु के चरित्र पर नवीन दृष्टि से विचार किया गया है। "जयभारत" के युयुत्सु औरस पुत्र होने के कारण पिता के प्रेम से वंचित हैं। इसलिए वे बचपन से ही कौरव पक्ष से विरोध करते हैं और अपने अधिकार की रक्षा करने केलिए अत्यधिक आतुर रहे हैं। उनका विचार है -

"जो छल कर राज नहीं सकता, मैं उसको मान नहीं सकता।"[4]

युधिष्ठिर द्वारा उनका स्वागत होता है और वे उन्हें धार्मिक न्यायप्रिय घोषित करते हैं। इस प्रकार यहाँ के युयुत्सु के चरित्र में न्याय और सत्य के पक्षधर होने के साथ अधिकार रक्षा की अदम्य आतुरता, साहस तथा दृढनिश्चय भी देखा जाता है। लेकिन "अंधायुग" के युयुत्सु का चरित्र सबसे दयनीय रूप धारण कर लेता है। कवि ने एक ओर उन्हें सत्य का कर्मकलश लेकर अन्याय के विरुद्ध हथियार उठानेवाले कर्तव्यशील योद्धा की संज्ञा से अलंकृत किया है तो दूसरी ओर उन्हें सत्य का आश्रय लेने के कारण अपराधी मान उनकी नियति को अत्यंत दारुण बना दिया है। अंत में जब पाण्डव भी उनका अपमान करने लगे तब वे अत्यधिक वेदना से कराह उठते हैं -

1· म· आदि प· अ·128 श्लो·37,38
2· म· सभा प· 68/18-24
3· म· महाप्रस्थान प·
4· जयभारत - पृ·349

"मेरा अपराध सिर्फ इतना है / सत्य पर रहा मैं दृढ
मैं भी हूँ कौरव / पर सत्य बड़ा है कौरव पक्ष से ।[1]"

कौरव और पाण्डव पक्ष के अतिरिक्त माता की उपेक्षा उसके लिए बिलकुल असहनीय रही है । ऐसी स्थिति में सत्य के प्रति भी अनास्था प्रकट करनेवाले अत्यंत विवश युयुत्सु की दर्द भरी वाणी देखिए -

"अच्छा था यदि मैं / कर लेता समझौता असत्य से[2] ।"

आस्था के प्रति अनास्था का सबसे जीवन्त चित्र ही यहाँ पर उपस्थित करते हैं । जयदेव तनेजा का मत यह है कि निश्चित परिपाटी से पृथक होकर अपना पथ आप निर्धारित करनेवाले इस चरित्र में आज के मानव की पीड़ा और यातना साकार हो उठी है[3] ।

"अन्धायुग" के युयुत्सु का चरित्र सत्य की त्रासदी का जीता जा प्रतीक है । उसकी आस्था सत्य की ज्योति का आलिंगन करना चाहती है इसलिए वे पाण्डवों को सत्य का पक्षधर समझकर उन्हीं का पक्ष लेते हैं । जीवन में सत्य को सर्वोपरि मानकर चलनेवाले युयुत्सु को उसका दण्ड उपेक्षा में मिलता है और उसकी आस्था के मानदण्ड श्रीकृष्ण शापग्रस्त हो जाते हैं सब प्रकार की उपेक्षा और अपमान से ऊबकर वे आत्महत्या के क्रोड में विश्राम लेते हैं । उसकी निराशा तथा अनास्था की इतनी चरम परिणति महाभा और किसी आधुनिक काव्य में भी नहीं देखी जाती । यहाँ वे निर्भय सत्य का प्रतीक हैं और उसकी दुर्बलता सत्य की दुर्बलता है । भारती ने युयुत्सु के सं जीवन की व्याख्या बहुत ही सटीक प्रतीकात्मक चित्र द्वारा प्रस्तुत की है

1· अन्धायुग - पृ·53

2· वही - पृ·56

3· समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि - जयदेव तनेजा - पृ·

"मैं उस पहिए की तरह हूँ / जो पूरे युद्ध के दौरान रथ में लगा रहा
पर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी में लगा था
और मैं अपनी ही धुरी से उतर गया"।

महाभारत के आदर्श चरित्र युयुत्सु के साथ सबसे अधिक न्याय कवि भारती ने किया है। युयुत्सु के माध्यम से आज के युग के सत्य और न्याय का पक्ष लेनेवाले आज के मानव की पीड़ा और यातना का वास्तविक चित्र उतारने में कवि पूर्णतः सफल हुए हैं। और किसी ने भी इस ओर हाथ तक न लगाया है। यह भारतीजी की मनोरम कल्पना मात्र है। गुप्तजी ने अधिकार रक्षा केलिए लालायित दृढनिश्चयी युयुत्सु का चित्र ही उतारा है।

कुन्ती

महाराजा पाण्डु की पत्नी एवं पंचपाण्डवों की माता कुन्ती महाभारत की एक आदर्श नारीपात्र हैं। महाभारत में उनके संपूर्ण चरित्र का उद्घाटन किया गया है। महाभारत की कुन्ती का चरित्र अत्यंत तेजस्विता से ओतप्रोत होने पर भी अनुपम त्याग केलिए मशहूर है। उनका जीवन कष्टमय रहा है। अत्यंत वीर एवं पराक्रमी पुत्रों से धन्य होने पर भी वे अपना अधिकांश जीवन वन में ही बिताती हैं। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने अधिकार केलिए लड़ने का उपदेश दिया है। लेकिन विजय के उपरांत वे भौतिक ऐश्वर्य को त्याग कर गान्धारी एवं धृतराष्ट्र के साथ त्यागी का जीवन बिता देती हैं। महात्मता का यह कार्य कुन्ती जैसा महान चरित्र ही निभा सकता है। आलोच्य हिन्दी काव्य में कुन्ती चरित्र पर आधारित पृथक काव्य का अभाव है किन्तु कर्ण चरित्र पर आधारित काव्यों में कर्ण-कुन्ती-संवाद द्वारा कवियों ने उनके

---

1. अन्धायुग

चरित्रोद्घाटन का प्रयास किया है । खड़ीबोली के कवियों ने कुन्ती के चरित्र का पर्याप्त परिष्कार किया है । उन्होंने कुन्ती चरित्र के ममतामये मातृत्व का उद्घाटन करने में ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है । कुन्ती चरित्र का विवेचन आगे किया जाएगा ।

आदर्श पत्नी

वे एक कर्तव्यशील धर्मपत्नी हैं । वे अपने शापग्रस्त वनवासी पति की अनुगामिनी हैं और उनकी जीवन रक्षा केलिए सतत अग्रसर रही है । कुन्ती आदर्श पत्नी होकर सर्वप्रथम वंश-रक्षा के प्रश्न को बुद्धिपूर्वक सुलझाती है । इसीसे उनके चरित्र में विलक्षणता का आरोप लगाया जाता है । लेकिन वास्तविकता तो यह है कि कुन्ती पाण्डु के प्रस्ताव को लोकभय के कारणअस्वीकार करती है । बडे अन्तर्द्वन्द्व के बाद, विवश होकर वे इस प्रस्ताव को मान लेती है[1] जिससे उनके चरित्र की पवित्रता और सच्चरित्रता प्रकट हो जाती है । कुन्ती अपनी सपत्नी के साथ भी आदर्शपूर्वक व्यवहार करती है । माद्री जब पाण्डु के साथ सती हो जाती है तब वे उनके पुत्र नकुल और सहदेव के लालन पालन का भार अपने कंधों पर ही लेती है । सहदेव तो उनके लिए अपने सभी पुत्रों में लाडला है । पाण्डवों के वनवास के अवसर पर वे सहदेव को अपने साथ रखना चाहती हैं[2] । गुप्तजी ने भी कुन्ती के इसी रूप पर यथावत् प्रकाश डाला है[3] । किसी भी अन्य आधुनिक कवि ने कुन्ती के पत्नी रूप पर प्रकाश न डाला है ।

---

1. म॰आदि प॰119,120,121
2. म॰ सभा॰प॰ अ॰79, श्लोक 28
3. जयभारत - पृ॰41-42

वीर क्षत्राणी

कुन्ती का व्यक्तित्व अद्वितीय उत्साह एवं वीरता से परिपूर्ण है। उनका यह रूप उद्योग पर्व के विदुलोपाख्यान की प्रस्तावना में स्पष्ट होता है। वे अपने वीर पुत्रों पर गर्व का अनुभव करती है। लेकिन युधिष्ठिर की शांति-नीति से वे व्यथित हो जाती है वे अपने पुत्रों को कायरता को छोड़कर अधिकार की रक्षा करने का उपदेश देती हैं[1]। वे भगवान कृष्ण के द्वारा तेजस्वी जीवन बिताने का संदेश देती हैं। गुप्तजी ने भी कुन्ती की अद्वितीय गरिमा को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लिया है। आत्मगरिमा से परिपुष्ट उनका संदेश देखिए -

जीवन का यह प्रण मरण से भी न रुकेगा।
मानी का सिर कटे, कभी भय से न झुकेगा[2]।"

खड़ीबोली के अन्य कवियों ने कुन्ती के मातृ गौरव पर प्रकाश डालने का समय नहीं खोज निकाला है।

परोपकार

यह कुन्ती चरित्र की और एक उल्लेखनीय विशेषता है। उनका हृदय दया और ममता की खान है। वनवास के अवसर पर ब्राह्मण परिवार की दीन-हीन अवस्था देखकर उनकी रक्षा केलिए अपने पुत्र तक को बलि देने केलिए वे उद्यत होती हैं। महाभारत के इस प्रसंग में कुन्ती का चरित्र सरस

---

1. म.उद्यो.प. अ. 137
2. जयभारत - पृ.335

माधवी के रूप में चित्रित न करके पुत्र की रक्षा के प्रति अत्यन्त आश्वस्त स्त्री की तेजस्विता के रूप में चित्रित किया गया है।[1] युधिष्ठिर के प्रश्न का वे धैर्यपूर्वक सामना करती हैं। वहाँ उनका व्यक्तित्व अटल है, मन स्थिर है। गुप्त जी ने कुन्ती के इस परंपरागत रूप को सशक्त बनाने के साथ उन्हें और भी मनोरम आकार दिया है। गुप्तजी की कुन्ती परोपकार एवं शिष्टाचार की भावना से प्रेरित होकर पुत्र को भेज देने की प्रतिज्ञा करती है,[2] लेकिन मन ही मन वे व्यथित हो जाती हैं - 'बाहर अटल थी किन्तु भीतर हत हुई'[3] जो उनके आहत मातृत्व की साक्षी देने में सक्षम हैं। कवि कहते हैं -

> 'कर्तव्य कुन्ती कर चुकी / वह विप्रपदा हर स्त्री
> वात्सल्यस्वरूप अब भी उसी विचलित रही
> जो थी शिला सी निश्चला / अब रुँध गया उसका गला
> वह देर तक जलमग्न सी लेटी रही[4]।'

यह सहज मातृहृदय की कल्पना महाभारतकार केलिए बिलकुल अपरिचित है।

मातृत्व

कुन्ती के वात्सल्यमय मातृहृदय का उद्घाटन करने में महाभारत से लेकर सभी परवर्ती कवि भी सफल हुए हैं। कुन्ती-कर्ण-संवाद के माध्यम से इसकी सशक्त अभिव्यक्ति कराई गई है। सामाजिक मर्यादा के आवरण में पड़कर वे अपने सीमन्त ~~केलिए~~ लेकिन कानीन पुत्र कर्ण के परित्याग केलिए क्षुब्ध

---

1. म.आदि प.160/14-16
2. जयभारत - पृ.98
3. वही - पृ.99
4. बकसंहार - पृ.34

होती है । नवजात शिशु के परित्याग के अवसर पर उनके मातृहृदय की व्यथा और विवशता दिखाने में महाभारत के कवि पूर्ण सफल हुए हैं[1] । कर्ण के कारण उनका मातृत्व अनेक जगहों पर आहत होता है । सामाजिक भय से आक्रान्त होने के कारण स्नेह की वाणी को मूक रखने केलिए वे बाध्य हो जाती हैं । लेकिन मातृत्व की शक्ति को रोकना असंभव ही है । रंगभूमि में अपनी प्रतिछाया लिए कर्ण को देखकर वे मूर्छित हो जाती है[2] । इसके बाद अपने पुत्र कर्ण को महाभारत युद्ध के विपक्षी दल में देखकर उनका मातृहृदय व्यथा से तरंगायित हो उठता है । नीति और अनीति भूलकर, मान और अपमान की बात छोड़कर वे कर्ण को वास्तविकता का ज्ञान दिलाकर युद्धविरत करने का परिश्रम करती हैं[3] । महाभारत की कुन्ती अपनी व्यथा को उन्मुक्त रूप से नहीं खोल पाती । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने उनके साथ पूर्ण न्याय करके उनकी व्यथा का, उनके मन के अंतर्द्वन्द्व का सहज चित्र खींचा है । महाभारत में कुन्ती राजनैतिक स्तर पर कर्ण को समझाने का जो प्रयत्न करती है[4] वह उसे नारी के शाश्वत मातृत्व केलिए आघात पहुँचाता है । लक्ष्यपूर्ति में असफल होने पर भी उनका मातृत्व पाँच पुत्रों की भिक्षा लेने में तनिक भी हिचकता नहीं है । गुप्तजी ने कर्ण-कुन्ती प्रसंग में कुन्ती के मातृत्व का भव्य एवं आकर्षक रूप खींचा है । "जय-भारत" की कुन्ती रंगभूमि में ही कर्ण के पुत्रत्व का अंगीकार करने केलिए लालायित है, लेकिन मूर्छित होने के कारण वे इस कार्य में असफल होती है[5] । वे अत्यंत गंभीर, बुद्धिमती, संवेदनशील, ममतामयी माँ के रूप में कर्ण के पास जाती है और कर्ण को निरुत्तर बनाने में सक्षम हो जाती है । "रश्मिरथी" में दिनकर ने कुन्ती की मानसिक व्यथा का चित्र अत्यंत मार्मिक वाणी में खींचा है । अनजाने गलती से आजीवन आँसू बहाने केलिए बाध्यस्थ ममतामयी

---

1. म•आदि•प•अ•110
2. वही - अ•134 , जयभारत - पृ• 63
3. म•उद्यो•प•अ•144-145
4. म•उद्यो•प•144/17-19
5. जयभारत - पृ•63

माँ कुन्ती की व्यथा खोलने में कवि पूर्ण सफल हुए हैं । जब कर्ण के व्यंग्य बाणों को वे नतमस्तक हो स्वीकार करती हैं तब उनका ममतामय मातृत्व ही अतिश्रेष्ठ रूप में मुखर हो उठता है[1] । यहाँ सारे वैभव से युक्त कुरुक्षेत्र की रानी नहीं, आत्मग्लानि से पीड़ित दीन हीन असहाय माँ अपने पुत्र पर ममता भरे चुम्बनों की वर्षा करने आई है[2] । दिनकर जी ने उनकी चरित्र शुद्धि केलिए भावनामय आवेग के साथ कुन्ती की व्यथा चित्रित की है । उनका यह कार्य पूर्णतः श्लाघनीय ही है । कवि यहाँ नीति के जाल से अलग हुए माँ और पुत्र का अभिनव मिलन कराने में सक्षम हुए हैं जिसके द्वारा उन्होंने नारी के शाश्वत मूल्यों का चित्रण करने में भी पूर्ण सफलता पाई है । "सेनापति कर्ण" में उनके मातृत्व को इतना त्रस्त दिखाया गया है कि वे पहले भीष्म के सामने कर्ण को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करती हैं । यहाँ भी कुन्ती की आकुलता की मनोरम व्यंजना की गई है[3] । यहाँ एक पग आगे बढ़कर कुन्ती यह घोषणा भी करती है कि अर्जुन से बढ़कर कर्ण ही उनके लाड़ले है[4] । यहाँ तक आने पर ये ममतामयी माँ समाज के सामने अपने मातृत्व को उद्घोषित करने की शक्ति संचित करती है जहाँ पर वे पूर्ण रूप में महाभारत से भिन्न चित्र उपस्थित करती हैं । महाभारत की कुन्ती अपनी व्यथा तक को खोलने में असमर्थ है ।

लेकिन "अंगराज" में आनन्द कुमार ने तथा "त्रिपथगा" में भगवतीचरण वर्मा ने कुन्ती के चरित्र के साथ न्याय नहीं किया है । प्रबल पाण्डव-विरोध के कारण ही शायद उन्होंने कुन्ती के स्नेह और मातृत्व को लाछन की दृष्टि से ही देखा है । "आत्मज को छलने, आकृति से जग को छलती थीं जैसे मर्माहत वाक्यांशों से उन्होंने उनके मातृत्व पर लांछन लगाया है ।

---

1. रश्मिरथी - पृ. 87, 88, 89
2. वही - पृ. 87
3. सेनापति कर्ण - पृ. 118
4. वही - पृ. 119

कुल मिलाकर सभी काव्यों में चित्रित कुन्ती चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि महाभारत का यह स्थिर आदर्श चरित्र भी खड़ीबोली के काव्यों में बहुत परिवर्तित हो गया है । महाभारत के वृहत आकार में उनके चरित्र के उद्घाटन केलिए कई अवसर प्राप्त हैं । किन्तु उनके चरित्र की भावुकता महाभारत की तुलना में परवर्ती काव्यों में अधिक देखी जाती है । आधुनिक कवि कुन्तीके ऐसे चरित्र की सृष्टि करना चाहते हैं जो समाज की जड़ मान्यताओं को दूर करने केलिए लालायित है । अतः उन्होंने महाभारत के स्थिर व्यक्तित्व पात्र का भी परिष्कार किया है । खड़ीबोली के कवियों ने कुन्ती के द्वारा किए गए नवजात शिशु के परित्याग के अपराध के मूल में समाज की जड़ता को भी दर्शित किया है जो ममतामयी माँ को भी पुत्र-परित्याग केलिए बाध्य कर देती है । इस प्रकार इन कवियों ने कुन्ती के चरित्र को दोषविमुक्त करने में विशेष सफलता अर्जित की है । इस दिशा में सर्वप्रमुख कार्य दिनकर जी ने किया है । उन्होंने कुन्ती के चरित्र के माध्यम से समाज के द्वारा पीड़ित नारियों में आत्मबल जागरित करने का परिश्रम किया है और तद्वारा वे नारी जागरण के सन्देशवाहक भी बन गए हैं ।

गान्धारी

गान्धारी महाभारत की एक आदर्श स्त्री पात्र है । गान्धार राजा की बेटी गान्धारी का परिणय अन्धे धृतराष्ट्र के साथ होता है । पति अन्धे होने पर भी गान्धारी ने जिस पातिव्रत और पतिपरायणता का आदर्श उपस्थित किया है वह सब केलिए अनुकरणीय भी है । पातिव्रत्य के साथ साथ उनका आदर्श चरित्र न्यायप्रियता नीतिप्रियता, धर्म तथा ममता की खान भी है । यद्यपि खड़ीबोली के कवियों ने उनके आदर्श चरित्र पर स्वतंत्र काव्यकृति का निर्माण नहीं किया है, तो भी महाभारत के अन्य प्रसंगों पर

आधारित काव्यों जैसे "जयभारत, द्रौपदी" तथा 'अंधायुग' में उनके आदर्श चरित्र का अंकन किया गया है जिसका विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

पातिव्रत

गान्धारी चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनका अटल पातिव्रत है । अपने पति को अन्धा जानकर वे स्वयं अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लेती है तथा पति के अनुकूल रहने का निश्चय करती है[1] । उनकी पति परायणता इतनी उच्च कोटि की है कि वे दूसरे पुरुष का नाम तक नहीं लेती[2] । उनका तप और त्याग संसार केलिए एक अपूर्व वस्तु है । युद्ध से त्रस्त क्षमा-याचना करने केलिए आनेवाले युधिष्ठिर के दीप्तिमान नखों को काला कर देना तथा श्रीकृष्ण को शापग्रस्त बनाना उनके पातिव्रत तेज के परिचायक ही है खड़ीबोली के कवियों ने भी गान्धारी के चरित्र को पातिव्रत तेज से परिपुष्ट करके महाभारत के अनुकूल आचरण किया है ।

निर्भीकता, न्यायप्रियता और नीतिप्रियता

ये गान्धारी के चरित्र के अनुपम गुण हैं । गान्धारी अपने पुत्र दुर्योधन की करनी से अतीव दुःखी है । वे निर्भीकता से धर्माधर्म का विवेचन करती है और अपने पुत्र तक को अधर्म मार्ग से चलने पर उनको अपने पापकर्मों से अवगत कराने का परिश्रम करती हैं । वे दुर्योधन से पाण्डवों के साथ सन्धि करने का तथा पाण्डवों को अपना न्यायोचित राज्य देने का अनुरोध भी करती हैं[3] । उनकी न्यायप्रियता तथा निर्भीकता तब अपनी चरम कोटि पर देखी जाती है जब द्यूत के समय वे धृतराष्ट्र को समझाती हैं कि वे नासमझ लोगों के चक्कर में पड़कर अपने वंश के विनाश का कारण न बनें[4] ।

1· म· आदि· 109/13-15
2· वही - 109/19
3· म· उद्योग प·अ·69/9-10
4· म· सभा प·75/1-10, जयभारत पृ·148-149

इसी प्रकार युद्ध में अधर्म का आचरण करनेवाले पाण्डवों के प्रति भी उनका मन स्वच्छ नहीं है । श्रीकृष्ण को शापग्रस्त बनाने केलिए भी उनकी धर्मपरायणता तनिक भी झिझकती नहीं है[1] । लेकिन दूसरे ही क्षण उनकी अलौकिकता और उनके महान उद्देश्य को पहचानकर वे उनसे क्षमायाचना भी करती है[2] । वे भीम से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि यदि भीम धर्म का आचरण करता तथा उनके एक पुत्र को भी छोड देता तो उन्हें अपने पुत्रों की मृत्यु का दुःख नहीं होता । कितना महान है उनका धर्म ! देखिए -

> शेषेऽयवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि
> न मे दुःखं भवेदेतद् यदि त्वं धर्ममाचरे[3] ।

उनके विशाल हृदय की अभिव्यक्ति में यहाँ कवि पूर्ण सफल हुए हैं । "जयभारत", "अंधराज", "अन्धायुग" आदि की गान्धारी का चरित्र भी इन गुणों से देदीप्यमान है ।

ममता

यद्यपि गान्धारी का चरित्र धर्माधर्म का विवेचन करता है तो भी उनका हृदय पुत्रप्रेम से परिपुष्ट है । वे अच्छी तरह जानती हैं कि अपने पुत्र कुमार्ग पर ही चलते हैं और उन्हें सत्पथ पर लाने केलिए परिश्रम भी करती है[4] । लेकिन अपने सब कार्य व्यर्थ होने पर, अपने पुत्र के अपमान तथा मृत्यु के घाट उतारने पर वे अतीव दुःखी हो जाती है । सब अनिष्टों के पीछे का हाथ श्रीकृष्ण का मानकर वे उन्हें शाप देने केलिए भी झिझकती नहीं है[5] ।

---

1. म•स्त्री•प•अ• 25
2. म•स्त्री•प•25 जयभारत - पृ•428
3. म•स्त्री प•15/23, वही
4. म•उद्यो•प•
5. म•स्त्री•प•अ•25

लेकिन दूसरे ही क्षण होश में आकर वे उनसे क्षमायाचना भी करती हैं । गुप्तजी ने गान्धारी के चरित्र को अधिक उदात्त बनाने का परिश्रम किया है । उनकी गान्धारी श्रीकृष्ण पर शापवचन की वर्षा नहीं करतीं, वे श्रीकृष्ण को वंश विनाश की वेदना की तीव्रता समझाते हुए इतना ही कहती हैं -

"कुरुकुल सरीखा वृष्णि कुल भी यदि परस्पर नष्ट हो
तो पूछती हूँ, क्या तुमको न इससे कष्ट हो[1] ।"

यह भी अनुचित समझकर जब वे श्रीकृष्ण से क्षमायाचना करती हैं तब उनका निर्मल और पवित्र चरित्र और भी उदात्त हो जाता है । "द्रौपदी" काव्य के इस प्रसंग में गान्धारी को स्थितप्रज्ञा बताया गया है और श्रीकृष्ण को उनका शाप अवश्य स्वीकार करना पड़ा है । क्योंकि पातिव्रत से तेजोदीप्त, पुत्रवध से शोकातुर, त्याग की प्रतिमूर्ति उस नारी की अवज्ञा करना असंभव कार्य ही है -

"सहनशील नारी की कोई करता नहीं अवज्ञा
गान्धारी का शाप शीश पर लिया देवकी सुत ने
महाकोप में कुपित हुई जब गान्धारी स्थितप्रज्ञा[2] ।"

"अंधायुग" में भी कवि ने गान्धारी के चरित्र के कोमल नारीत्व एवं ममतामयी मातृत्व का मर्मस्पर्शी परिचय दिया है । कृष्ण के प्रति आक्रोश व्यक्त करना, जगत के आडम्बर के प्रति घृणा प्रकट करना, क्रूर नरपशु अश्वत्थामा को दयालु मानना आदि ऐसे प्रसंग है जिनसे गान्धारी के चरित्र की हृदयहीनता ध्वनित होती है[3] । लेकिन कवि ने उनकी हृदयविहीनता का उचित समाधान ढूँढ निकाला है । उनके अनुसार जिस माता के सारे पुत्र युद्ध में मारे गए हैं,

---

1. जयभारत - पृ.418
2. द्रौपदी - पृ.43
3. अंधायुग

उनके मन को संतुलित बनाए रखना आसान कार्य नहीं है । अपने सारे पुत्रों के मारे जाने पर भी उनमें स्त्रियोचित ममता, दया आदि का अंत नहीं होता । श्रीकृष्ण को शाप देने के समय वे जितनी भावुक होती हैं उतनी ही भावुकता में वे उनसे क्षमायाचना भी करती हैं[1] । गान्धारी के मातृत्व का चरम विकास कवि ने उस समय दिखाया है जब वे कौरव पक्ष की पराजय का समाचार सुनकर उद्वत रह जाती हैं और अपने ही पुत्र युयुत्सु के प्रति तीखा व्यंग्य करती हुई कहती हैं -

"बेटा, भुजाएं ये तुम्हारी / पराक्रम भरी
थकी तो नहीं / अपने बन्धुजनों का / वध करते करते[2] ।"

यहां पर उनके चरित्र के ममतामयी मातृत्व का उद्घाटन करने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुए हैं ।

गान्धारी चरित्र का विश्लेषण करने से यह देखा जा सकता है कि महाभारत की गान्धारी के आदर्श चरित्र के साथ खड़ीबोली के कवियों ने भी पूर्ण रूप से न्याय किया है और उनके आदर्श चरित्र की समुचित उपस्थिति करके जनमन को धन्य बनाने का सक्रिय योगदान दिया है ।

हिडिम्बा

राक्षसी होने पर भी हिडिम्बा की चरित्र सृष्टि महाभारत में भीमसेन की प्रेयसी पत्नी के रूप में हुई है । महाभारत में पाण्डवों के वनवास के समय भीम का साक्षात्कार हिडिम्बा से हो रहा है । महाभारत की हिडिम्बा का चरित्र अपने यथार्थवादी रूप में मानो राक्षसी रूप में दिखाया

1. प्रेमसखी - पृ.48
1. अंधायुग - पृ.19
2. वही - पृ.55

गया है, उसमें उनका काम-मुग्धा रूप ही अधिक झलक जाता है[1]। वे अपने भाई के प्रत्येक कुकर्म की सहायता करती है। मनुज-वध केलिए मनुज की खोज करने के हिडिम्ब के आदेश को वे अत्यंत प्रसन्न मन से स्वीकारती है,[2] लेकिन भीम को देखते ही उनकी कामवासना जाग उठती है और वे उनपर मुग्ध हो जाती है। मैथिलीशरण गुप्त तथा लक्ष्मीनारायणमिश्र जैसे खड़ी बोली के कवियों ने उनके चरित्र का सुधार किया है। गुप्तजी ने इस दानवी को आर्यत्व के पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है तो मिश्रजी ने उनके द्वारा परित्यक्ता नारी की मानसिक व्यथा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। उनके चरित्र का विश्लेषण आगे किया जाएगा।

महाभारत की हिडिम्बा राक्षसी होने के कारण जीवन की उनकी एकमात्र अभिलाषा अपनी काम वासना की पूर्ति है। वे भीमको देखते ही स्वयं विवाह का प्रस्ताव रखती हैं[3]। लेकिन गुप्तजी ने हिडिम्बा के चरित्र को आर्यत्व का पद प्रदान किया है। अपने भाई के मारे जाने के बाद ही वे अत्यंत कुलीन आर्य नारी की भाँति भीम के समक्ष अपने हृदय को रख देती हैं। वे अपने प्रिय भीम के मुख से "देवी", "वनदेवी" आदि विशेषता सुनकर अपने को सम्मानित मानती हैं[4]। वे महाभारत से भिन्न अपने राक्षसत्व का त्याग करके आर्यत्व पद की स्वीकृति की कामना करती हैं -

> "यदि तुम आर्य हो तो दो हमें भी आर्यता / अपनी ही इच्छा
> में कैसी कृतकार्यता[5]।"

---

1. म.आदि. न.अ.152
2. वही - 151/14-17
3. वही - 151/27-28
4. जयभारत - पृ.81

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने हिडिम्बा के चरित्र को अत्यंत पवित्र आदर्श नारी का पद ही प्रदान किया है । उनकी हिडिम्बा अत्यंत कोमल किन्तु पातिव्रत धर्म की प्रतीक तथा त्यागमयी मूर्ति है । भीम द्वारा परित्यक्ता होने पर भी उनके मन में भीम के प्रति कोई भी दुर्भावना नहीं है । भीम के प्रख्यात कुल को कलंकित न करने केलिए वे अपनी प्रणय कथा को मुखर नहीं होने देती । वे इतनी पतिपरायणा है कि कौरव-पाण्डव युद्ध के समाचार से वे अतीव दुःख हो जाती हैं और अपने इकलौते बेटे को पितृकुल की रक्षा के अर्थ भेजने केलिए लालायित है। लेकिन माता के प्रति अत्याचार और अन्याय करनेवाले पिता के प्रति पुत्र के मन में रोष ही रोष है और वे पितृकुल के अमंगल की कामना करते है । तब वे अपने पुत्रको फटकारती हैं और स्वयं युद्ध क्षेत्र जाने की आतुरता प्रकट करती हैं । यहाँ पर हिडिम्बा के चरित्र की पतिभक्ति, शौर्य तथा सहनशीलता अपनी चरम कोटि पर झलकती है । अंत में वे अपने पतिकुल की रक्षा केलिए अपने एकमात्र बेटे को आहुति देती है । उनका यह समर्पण महान है और यहाँ पर वे मानवी से बढ़कर देवी का आचरण ही करती है । द्रौपदी उनके इस अनुपम बलिदान की मुक्तकर प्रशंसा करती है[1] । उनका यह चरित्र सबके लिए अनुकरणीय ही है । दानवी को मानवी से बढ़कर देवी की पदोन्नति देनेवाले मिश्र जी की कलम की कुशलता भी यहाँ पूर्ण रूप से व्यंजित हुई है ।

उत्तरा

महाभारत में वीर अभिमन्यु की पत्नी, विराट-पुत्री उत्तरा का चरित्र अभिव्यक्त हुआ है । यौवन की देहली पर पग रखते ही षोडश वर्षीय अपने वीर पति अभिमन्यु की मृत्यु से वैधव्य के क्रूर पाशों से आबद्ध नववधू उत्तरा के हृदय विदारक रूप की अभिव्यक्ति महाभारतकार ने अत्यंत कुशलता से की है । खड़ीबोली के कवियों ने विशेषकर गुप्तजी ने अपने

---

1. जयभारत - पृ.204

"जयद्रथवध" में महाभारत के अनुकूल उत्तरा का हृदय विदारक कारुणिक चित्र उपस्थित करने के साथ उत्तरा के चरित्र का विकास करने का भी सफल प्रयास किया है । "जयद्रथवध" में उत्तरा का पत्नी-रूप और क्षत्राणी रूप भी अत्यन्त तेजस्वी रूप में देखा जा सकता है । पं॰ रामचन्द्र शुक्ल "सरस" के 'अभिमन्यु-वध" में भी उत्तरा के पत्नी रूप और क्षत्राणी-रूप की ओर इशारा किया गया है, लेकिन पं॰ रघुनन्दन लाल मिश्र के "अभिमन्यु-वध" तथा श्री कमलाप्रसाद वर्मा के "अभिमन्यु का आत्मदान" में उत्तरा के चरित्र का परंपरागत रूप मात्र अभिव्यक्त हुआ है । इसका विवेचन आगे किया जाएगा ।

करुणा की मूर्ति उत्तरा

द्रोण द्वारा रचित चक्रव्यूह में पाण्डुवंशप्रदीप कोमलवर्षी वीर अभिमन्यु मारा गया । बलवेगयुक्त, विद्याविशारद, सौन्दर्यप्रतिम अपने प्राणवल्लभ विख्यात वीर अभिमन्यु का देहान्त सुनकर नववधू उत्तरा मूर्छित हो जाती है[1] । उनके हृदयद्रावक करुण विलापों द्वारा महाभारतकार ने उनके वैधव्यवह्निदग्ध, पतिशोक विह्वल रूप की मार्मिक व्यंजना की है । उत्तरा क्रूर कर्म करनेवाले कौरवदल के उन सभी महावीरों को धिक्कारती है जिन्होंने उन्हें इस उम्र में विधवा बनादिया है[2] । गुप्तजी ने उत्तरा के शोकविह्वल हृदय का और भी मार्मिक चित्र उपस्थित किया है । 'जयद्रथवध' की उत्तरा मृत पति के निर्जीव शरीर अपनी गोद में रखती हुई बहुभाँति विलाप करती है[3] । पति के बिना वे जीना नहीं चाहती है और सहमरण केलिए भी उद्यत हो जाती है[4] । रामचन्द्र शुक्ल "सरस" ने भी "अभिमन्यु-वध" में शोक विह्वल उत्तरा के हृदय का मार्मिक चित्र खींचा है । लेकिन इस कदम में गुप्तजी ही सर्वाधिक सफल निकले हैं । उन्होंने अपनी करुणाप्रिय लेखनी से उत्तरा विलाप का खूब कारुणिक चित्र बनाया है ।

1· म·द्रोण·अ·78 श्लो·37,39

2· म·स्त्री·अ·20,श्लो·18

3· जयद्रथ वध – पृ·21–26

पत्नी रूप

"जयद्रथ वध" में ही उत्तरा का पत्नी रूप प्रथम बार प्रकाश में आता है।[1] भारतीय संस्कृति के दाम्पत्यविषयक आदर्श को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने केलिए गुप्तजी ने खूब परिश्रम किया है। युधिष्ठिर से अनुग्रह लेकर अभिमन्यु अपनी नववधू उत्तरा से विदा लेने केलिए शिविर में चले गये। उन्होंने उत्तरा से सारा हाल कह दिया। अपशकुन देखने के कारण उत्तरा ने अपने प्रिय पति को उस दिन के युद्ध से विमुख बनाना चाहा। लेकिन वीर धर्म के पालन पर उन्होंने कोई प्रतिबन्ध न लगाया क्योंकि वे वीर क्षत्राणी अपने कर्तव्य को पूर्ण जानती थीं।[2] फिर भी उनकी करुण चीत्कार किए बिना नहीं रहीं। धैर्य खोती हुई उत्तरा को सान्त्वना देने केलिए उन्हें क्षत्रिय कोटी वीर के कर्तव्य को भलीभाँति समझाते हुए शीघ्र ही रण से लौटने का वादा करके अभिमन्यु चल पड़ा।[3] यहाँ भारतीय संस्कृति के दाम्पत्य विषयक आदर्श-पत्नी रूप को उपस्थित करने में कवि पूर्ण रूप से सफल निकले हैं। पं॰रामचन्द्र शुक्ल सरस ने भी "अभिमन्यु वध" में उत्तरा के पत्नी रूप का चित्र अत्यन्त आकर्षक रूप में खींचा है। खड़ीबोली के अन्य काव्यों में उतरा के चरित्र केलिए विशेष महत्ता नहीं दी गई है।

उत्तरा के चरित्र-में विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि खड़ीबोली के कवियों ने उत्तरा के चरित्र का विकास करने का खूब परिश्रम किया है। इस ओर सर्वाधिक श्रेय गुप्तजी को है। उनके उत्तरा के चरित्र के शोक विह्वल और प्रिया रूप अत्यन्त आकर्षक बन गए हैं।

1· जयद्रथ वध - पृ॰ 9

2· वही - पृ॰ 9

3· वही - पृ॰11

निष्कर्ष

महाभारत पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पौराणिक पात्रों को महाभारत के संदर्भ में परखने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिकांश पौराणिक पात्र परिवर्तन के शिकार हो गए हैं। इस परिवर्तन में तीन चरण देखे जा सकते हैं। प्रथम चरण के गुप्तजी जैसे पुनरुत्थानवादी कवियों ने पौराणिक पात्रों के परम्परागत गुण को सशक्त बनाने के साथ दोषविमुक्त करके उन्हें आदर्शात्मक रूप देने का परिश्रम किया है। दर्प, धृष्टता आदि केलिए मशहूर कर्ण, दुर्योधन, भीम, अश्वत्थामा, द्रौपदी आदि के चरित्रों के अवगुणों की मात्रा को कम करके उन्हें आदर्श रूप प्रदान किया है तो युधिष्ठिर, अर्जुन, द्रोण, भीष्म, एकलव्य, जैसे आदर्श चरित्रों की भी मानवोचित दुर्बलताओं को धोकर उन्हें पूर्ण आदर्श रूप प्रदान किया है। हिडिम्बा जैसी दानवी का भी उन्होंने उद्धार करके आदर्श मानवी का पद प्रदान किया है। दूसरे चरण में आनेवाले प्रगतिवादी कवियों ने मानवतावाद, साम्यवाद आदि के प्रभाव में आकर उपेक्षित पौराणिक पात्रों को उजागर करके तथा उनके माध्यम से छुआछूत, जाति-भेद, दूषित राजनीति, शोषण, साम्राज्यवाद, युद्ध की विभीषिका आदि सामाजिक कुरीतियों का उद्घाटन करके उनका निर्मार्जन कराने का परिश्रम किया है। इस विभाग के अग्रणी हैं - रामधारीसिंह दिनकर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, रामकुमार वर्मा, आनन्दकुमार, केदारनाथमिश्र "प्रभात", सियारामशरण गुप्त आदि। हज़ारों वर्षों से उपेक्षित, कलंकित मानवता के मूक प्रतीक कर्ण के चरित्र का उद्धार करने का प्रयास दिनकर, आनन्दकुमार, केदारनाथमिश्र "प्रभात", लक्ष्मीनारायणमिश्र आदि कवियों ने किया है, लेकिन इस कार्य में सर्वाधिक श्रेय दिनकर को मिला है। उनके कर्ण का चरित्र पौरुष से तेजोदीप्त है और सब प्रकार के आदर्श मानवीय गुणों से विभूषित है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कर्ण के साथ साथ दुर्योधन, अश्वत्थामा, हिडिम्बा आदि के चरित्र का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है। अपने इस प्रयास में उनकी कलम से कुछ आदर्श सम्पन्न प्रमुख महाभारतीय पात्र जैसे श्रीकृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी आदि के चरित्र कलंकित हो गए हैं। डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने एकलव्य के चरित्र का अत्यन्त उज्ज्वल रूप उपस्थित किया है + जिनकी ओर महाभारत में मात्र संकेत मिलता है। उनके माध्यम से इन्होंने समाज की छुआछूत की भावना, जाति भेद आदि पर व्यंग्य कसा है। साथ ही द्रोण के चरित्र का उद्धार करके उनके माध्यम से दूषित राजनीति की ओर संकेत करने का सफल प्रयास भी उन्होंने किया। आनन्दकुमार ने भी कर्ण के चरित्र को उजागर करने के प्रयास में उनके प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन आदि पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण के चरित्र को कलंकित कर दिया है। परिवर्तन का तीसरा चरण प्रयोगवाद काल में देखा जाता है। पौराणिक पात्रों के माध्यम से जनोद्धार करने में लगे हुए इस समय के प्रमुख कवि हैं - धर्मवीर भारती तथा नरेन्द्र शर्मा। धर्मवीर भारती ने अश्वत्थामा, युधिष्ठिर, युयुत्सु, धृतराष्ट्र आदि पौराणिक पात्रों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की है और इनके माध्यम से तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को अत्यन्त सशक्त रूप में उद्घाटित किया है। नरेन्द्र शर्मा ने द्रौपदी के चरित्र को पवित्र बनाने केलिए, शक्ति के प्रतीक रूप में उन्हें उद्घाटित किया है और उनके माध्यम से स्त्री और स्त्रीत्व की महिमा उद्घाटित की है। इस प्रकार यह देखा जा सकता हैकि महाभारत के समस्त पात्र खड़ीबोली के काव्यों में विविध भाँति परिवर्तित हो गए हैं।

सप्तम अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अन्य पुराणों के पात्र

सप्तम अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के अन्य - पुराणों के पात्र

भारतीय साहित्य के अठारह पुराणों और इनकी विशेषताओं पर द्वितीय अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। इस अध्याय में इन पुराणों के पात्रों ने खड़ीबोली के कवियों और काव्यों को किस हद तक प्रभावित किया है, इस पर विचार किया जाएगा। यद्यपि पुराणों की संख्या अठारह है तो भी यह देखा जा सकता है कि द्विवेदीकाल के कवि प्रमुख रूप से श्रीमद्भागवत और मत्स्यपुराण से प्रभावित हुए हैं। श्रीमद्भागवत की विशेषता यह है कि इसके प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण हैं और कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित सभी घटनाएं और पात्र इसमें आ गए हैं। भागवतकार का उद्देश्य कृष्ण-चरित्र को चित्रित करना नहीं है, बल्कि उसके द्वारा कृष्ण का परमब्रह्मत्व सिद्ध करना है। इसलिए भागवतकार ने कृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर अन्त तक भगवान के अवतारत्व की स्थान स्थान पर अभिव्यक्ति दी है। भागवत पुराण चिर काल से भारतीय कवियों का उपजीव्य ग्रन्थ रहा है।

रामायण एवं महाभारत के समान इस पुराण का भी भारतीय साहित्य के संदर्भ में विशेष महत्व है । कृष्ण की जीवन कथा को आधार बनाकर काव्य-प्रणयन करनेवाले कवियों केलिए यह एक चिरकालीन प्रेरणा ग्रन्थ रहा है । खड़ीबोली हिन्दी काव्य पर भी भागवत का विशेष प्रभाव देखा जा सकता है । कृष्ण कथा को आधार बनाकर लिखे गए काव्य विशेष महत्व के रहे हैं जिनमें हरिऔध जी का "प्रियप्रवास", गुप्तजी का "द्वापर", धर्मवीर भारती का अंधायुग आदि आते हैं । इन काव्यों में पुराणों के चरित्र अनेक परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत हुए हैं । श्रीकृष्ण, राधा, गोपियाँ, नन्द, यशोदा - सभी के चरित्र युगीन परिवेश में ढले हैं जिसका विस्तृत विश्लेषण आगे किया जा रहा है

मत्स्यपुराण में ऐतिहासिक जलप्लावन की घटना को विशेष रूप से अंकित किया गया है । मत्स्यपुराण के अलावा जलप्लावन की घटना तथा मनु, श्रद्धा और इडा का चरित्र भागवत पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण,विष्णु,पुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा स्कन्द पुराण में भी संक्षिप्त रूप से मिलता है । इन पुराणों के आधार पर प्रमुख छायावादी कवि श्रीजयशंकर प्रसाद ने मनु, श्रद्धा और इडा के चरित्र का विस्तृत विवेचन किया है । उन्होंने इन पौराणिक पात्रों को युगानुकूल परिवर्तित करके ही प्रस्तुत किया है । इसके अलावा इन पात्रों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी की है और इनके माध्यम से समरसता का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया है । प्रत्येक पात्रों का विशद विश्लेषण आगे किया जा रहा है ।

श्रीकृष्ण

भारतीय जीवन में श्रीकृष्ण-चरित्र का बड़ा महत्व रहा है । भारतीय वाङ्मय में उनका चरित्र जितना उभरा बड़ा है उतना और किसी पात्र का नहीं । विभिन्न ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के चरित्र के विविध रूपों का वर्णन मिलता है और इस वैविध्य के कारण कहीं कहीं यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता है कि इन सभी रूपों का केन्द्र एक ही है ।

श्रीकृष्ण के नाम का सर्वप्रथम उल्लेख वेदों में पाया जाता है। लेकिन ऋग्वेद के आठवें मण्डल में कृष्ण का यह नाम किसी ऋषि का वाचक बनकर आया है, महाभारत या भागवत के कृष्ण से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। कृष्ण-कथा का विस्तृत वर्णन महाभारत में मिल जाता है, लेकिन इसमें कृष्ण का चरित्र पूर्णत्व को नहीं प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्ण के बाल रूप का इसमें अभाव है और कृष्ण से सम्बन्धित विविध घटनाओं का वर्णन होते हुए भी उसमें श्रीकृष्ण चरित्र का एक शृंखलाबद्ध वर्णन नहीं मिलता। महाभारत के परिशिष्ट हरिवंश पुराण तथा ब्रह्म पुराण में कृष्णकथा का व्यापक वर्णन मिलता है। इन सब का समन्वित और समुज्वल रूप श्रीमद्भागवत पुराण में मिल जाता है। इसमें श्रीकृष्ण के चरित्र के सभी रूप आ गए हैं।

प्रत्येक युग श्रीकृष्ण के चरित्र को अपने अनुसार ग्रहण कर प्रेरणा प्राप्त करता रहा है। महाभारत में उनके परब्रह्म रूप से अधिक उनके राजनीतिज्ञ रूप का ही विवेचन किया गया है, लेकिन अधिकांश पुराणों में श्रीकृष्ण के परब्रह्म रूप का ही वर्णन अधिक पाया जाता है[1]। भागवत में उनके ईश्वरीय रूप की महत्ता उद्घोषित की है तो "गीता" में उनके धर्मनिष्ठ रूप पर अधिक बल दिया गया है।

खड़ीबोली के कवियों ने भी पौराणिक पात्रों और घटनाओं का युगानुरूप संस्कार आवश्यक मानने के कारण कृष्ण कथा को आधुनिक जीवन के परिपार्श्व में प्रस्तुत किया है। हरिऔध जी के कृष्ण का चरित्र पौराणिक श्रीकृष्ण की अलौकिकता से प्रभावित न होकर मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित है। श्रीकृष्ण का यह मानवीय रूप संपूर्णकृष्ण-भक्ति काव्य में एक अभिनव क्रान्तिकारिता और नई दृष्टि का परिचायक है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी कृष्ण के परम्परागत स्वरूप को आधुनिक संदर्भों के अनुकूल परिवर्तित किया है

1· ब्रह्मवैवर्त पुराण — श्रीकृष्ण जन्म खण्ड अ·329

विष्णु पुराण अ·5, श्लोक·394

वर्तमान युग में अधिकांश कविगण धर्म और रूढ़ियों से सर्वथा परे हैं और परम्परागत संस्कारों की जकड़ से उन्मुक्त हैं । इसलिए ही शायद लक्ष्मीनारायण मिश्र जैसे कुछ कवियों ने श्रीकृष्ण के चरित्र को हेय घोषित करने का परिश्रम किया है । फिर भी धर्मवीर भारती जैसे कतिपय वर्तमान कवि भी हैं जिन्होंने अधुनातन जीवन और जगत के अनुकूल श्रीकृष्ण के महिमावान व्यक्तित्व को पुनः महाभारतीय रूप में चित्रित किया है । "अंधायुग" में कवि ने कृष्ण के माध्यम से युद्ध जन्य विभीषिकाओं को गर्हित, हेय, सर्वथा त्याज्य बतलाकर नवीन मानव मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने का परिश्रम किया है । "कनुप्रिया" में कवि ने कृष्ण के चरित्र के परम्परागत स्वरूप को यथावत् चित्रित किया है । उन्होंने कृष्ण के रसिकशिरोमणि और कूटनीतिज्ञ दोनों रूपों का उल्लेख किया है । खड़ी-बोली के इन कवियों द्वारा चित्रित श्रीकृष्ण के पौराणिक चरित्र के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

अलौकिकता

श्रीकृष्ण के चरित्र का यह पक्ष प्रायः भारत के प्राचीन साहित्य में बहुत मात्रा में मिलता है । महाभारत में श्रीकृष्ण के ब्रह्म रूप का प्रतिपादन किया गया है और श्रीकृष्ण के चरित्र की अलौकिकता की छाया संपूर्ण महाभारत में व्याप्त रही है । इसमें अनेक जगहों पर श्रीकृष्ण के सर्वव्यापी, सर्वातीत रूप पर प्रकाश डाला गया है । युद्ध की तथा युद्ध के पूर्व की प्रमुख घटनाओं में उनके दिव्य व्यक्तित्व का हस्तक्षेप उनके प्रभुत्व की उद्घोषणा है । खाण्डव-दाह[1], द्रौपदी-चीरहरण[2], दुर्वासा-कोप[3], शान्ति-दूत[4], जयद्रथ-वध[5], आदि प्रसंगों में श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व प्रकाश में आता है । अर्जुन का निरस्त्र

---

1. म॰आदि॰पर्व॰अ॰224
2. म॰सभा॰पर्व॰अ॰68
3. म॰वन॰पर्व॰अ॰263
4. म॰उद्योग प॰अ॰131
5. म॰द्रोण॰ प॰अ॰146

कृष्ण को नारायण सेना से भी महत्त्वपूर्ण समझना उनकी अलौकिक शक्ति का ही प्रमाण है । "गीता" में अपनी इस अलौकिकता की घोषणा करते हुए स्वयं कृष्ण कहते हैं - जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।[1]

पुराणों में भी श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व का विशद रूप अंकित किया गया है । भागवत के श्रीकृष्ण असुर संहार करनेवाले अद्भुतकर्मा हैं जो बालकपन से ही असुर संहार में लगे रहते हैं । भागवत में श्रीकृष्ण का अवतार ही दुष्टदलन और साधु रक्षण के उद्देश्य से हुआ है और इसलिए पूतनावध,[2] शकटभंजन,[3] तृणावर्तवध,[4] माता यशोदा को अपने मुंह में ब्रह्माण्ड दर्शन कराना,[5] कालीयदमन,[6] दावानलपान,[7] गोवर्धनधारण[8] आदि अनेक स्थलों पर उनके अतिमानवीय रूप के दर्शन होते हैं । उनके रसिकशिरोमणि रूप भी अलौकिकता के रंग में रंगा हुआ है । गोपियों से उनका सम्बन्ध अलौकिक माना जा सकता है क्योंकि उसमें काम वासना का स्पर्श तक नहीं।चीर-हरण के प्रसंग में यह बात पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है ।

खड़ीबोली के काव्यों में यद्यपि परिवेश के प्रेरणास्वरूप श्रीकृष्ण के राष्ट्रोद्धारक, जनहितकामी, लोकपालक तथा लोकमांगलिक रूप की अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया गया है तो भी स्थान स्थान पर उनके दिव्य रूप की भी झलक मिलती है । "जयभारत" में कवि श्रीकृष्ण को आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं और उन्होंने इसके अनुकूल श्रीकृष्ण के

1• गीता अ•4, श्लो•9
2• श्रीमद्भागवत स्कन्ध• 10, अ•6
3• वही - अ•7
4• वही - अ•7
5• वही - अ•8
6• वही - अ•16,17,18
7• वही - अ•17
8• वही - अ•25

चरित्र को मोड़ा भी है । लेकिन "जयद्रथवध" में पौराणिक कृष्ण के समान श्रीकृष्ण का ब्रह्मत्व झलक जाता है । श्रीकृष्ण को यहाँ जनार्दन, जगन्नाथ, मायापति, विभु, अच्युत, हरि आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है और उन्हें सर्वशक्तिमान परमेश्वर मानकर ही अर्जुन तथा युधिष्ठिर सदा सर्वस्व समर्पित करने केलिए तैयार रहते हैं[1] । इसी प्रकार अपने भक्त अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण कराने केलिए श्रीकृष्ण अपनी अलौकिक शक्ति से जयद्रथ को मृत्यु के घाट उतार देते हैं[2] । 'द्वापर' में गुप्तजी ने समसामयिक परिस्थितियों में संतुलन लाने के आग्रह से श्रीकृष्ण के युगानुकूल रूप का उद्घाटनकिया है । "प्रियप्रवास" में हरिऔध जी ने श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप से अधिक उनका जननायक रूप ही अंकित किया है । कर्ण-चरित्र पर आधारित खड़ीबोली के काव्यों में श्रीकृष्ण-चरित्र का अधिक महत्व न रहने पर भी स्थान स्थान पर उनके ईश्वरीय रूप को अक्षुण्ण रखा गया है । "रश्मिरथी" में उन्हें भगवान, नट नागर, केशव आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है और यहाँ श्रीकृष्ण अपने विश्वरूप प्रदर्शन से कौरव सभा में धृतराष्ट्र तथा विदुर का जीवन सफल बनाते हैं । 'सेनापति कर्ण' में कौरव और स्वयं पाण्डवों के द्वारा भी श्रीकृष्ण की दुर्बलताओं की ओर इशारा कराकर कवि ने कृष्ण की अलौकिकता से अधिक लौकिकता को उदीयमान रखा है । "अंधायुग" में धर्मवीर भारती ने श्रीकृष्ण के परम्परागत सोलह कला संपूर्ण अवतारी स्वरूप के साथ साथ उन्हें वंचक, षड्यंत्रकारी, कूटबुद्धि तथा महाभारत प्रणेता तक कह दिया है जिससे ऐसा लगता है कि कृष्ण के विषय में वे अनिश्चित हैं । लेकिन वास्तविकता यह है कि इस काव्य में भी युग के अन्धेपन के मध्य एकमात्र प्रकाश स्तम्भ कृष्ण हैं जिनकी प्रबुद्धता संपूर्ण युग को आस्था और विश्वास को बनाए रखने में तथा मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करने में समर्थ है । वे साहस, स्वतंत्रता, सृजन और मानवीय मूल्यों के प्रतीक हैं । अतएव "अन्धायुग" में प्रभु की वाणी उद्भासित होती है -

---

1. जयद्रथवध - पृ.92,93,94

2. वही - पृ.85,86

"मेरा दायित्व वह स्थित रहेगा
हर मानव मन के उस वृत्त में / जिसके सहारे वह
सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वंसों पर
मर्यादायुक्त आचरण में /
xx xx xx xx
जीवित और सक्रिय हो उठूंगा मैं बार-बार ।"[1]

इसमें प्रभु की परिकल्पना के पुराने विश्वास, मान्यताएं और मूल्यों के स्थान पर नवीन परिकल्पना की गई है । यहाँ प्रभु की सार्थकता मनुष्य होने में ही है क्योंकि प्रभु मानवीय मूल्यों की समग्रता का पुंजीभूत रूप है । मानव के भविष्य के प्रति पूर्ण आस्था प्रकट करते हुए युयुत्सु के सामने भगवान कृष्ण कहते हैं कि नूतन निर्माण के काल में, विवेक और जीवन के नवीन अर्थों का आश्रय ग्रहण करके छोटा सा छोटा आदमी भी विकृत, अर्द्धबर्बर, आत्मघाती और अनास्थामय जीवन से मुक्ति पाकर जीवन की नवीन सार्थकता पा जाएगा ।[2] "कनुप्रिया" में भी कृष्ण के परम्परागत रूप को परिवर्तित करते हुए युगानुकूल चित्रित किया गया है । इसमें कनु अनुपस्थित होने पर भी आद्यन्त उनके महत् आदर्शों, युगान्तरकारी सिद्धान्तों तथा सशक्त जीवन मूल्यों की परिव्याप्ति है जो उनके अलौकिक महनीय चरित्र की परिव्याप्ति कही जा सकती है । इसी प्रकार आम्रबौर के अर्थ में कृष्ण का अलौकिकत्व अभिव्यंजित है । यहाँ राधा और कृष्ण का जो प्रेम अभिव्यक्त है वह साधारण पद्धति से पृथक एक विशिष्ट प्रेम है[3] । "कनुप्रिया" के कृष्ण विराट पुरुष हैं जो विपरीत एवं विरोधी परिस्थितियों में जीने में समर्थ हैं । वे एक ओर इन्द्र को चुनौती देकर संत्रस्त ब्रजवासियों का परित्राण करते हैं तो दूसरी ओर

1· अंधायुग - पृ·129-130
2· वही - पृ·130
3· कनुप्रिया- पृ·31

कमजोर वर्षा से बचते हुए राधा के अंचल में शिशुवत् संरक्षण के इच्छुक हैं । भारती के कनु का यह व्यक्तित्व अपने में अद्भुत तत्व लिए हुए हैं ।

लौकिकता

महाभारत में श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व के साथ ही साथ उनके नीतिज्ञ और लोकरक्षक रूप ही अधिक मुखर है । लेकिन परवर्ती पुराणों में श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व को ही अनेक रूपों में चित्रित किया गया है । आधुनिक हिन्दी साहित्य के खड़ीबोली के अधिकांश कवियों ने महाभारत का अनुवर्तन करते हुए भी श्रीकृष्ण के लोकरक्षक और नीतिज्ञ रूप को, युगानुकूल परिष्कृत करके उद्घाटि करने का प्रयत्न किया है । खड़ीबोली के कवियों ने श्रीकृष्ण के पौराणिक रूप को परिवर्तित करके उन्हें पूर्ण रूप से लोकजीवन में प्रतिष्ठित किया है और लोकरक्षा के प्रमुख स्तम्भ के रूप में उन्हें उपस्थित किया है । आज के सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक जागरण के समय में कृष्ण को राष्ट्रीय भावना का प्रतीक मानकर सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रतीक बताया गया है । श्रीकृष्ण के मानवीयता को उद्घोषित करने केलिए खड़ीबोली के लक्ष्मीनारायणमिश्र जैसे कतिपय कवियों ने श्रीकृष्ण चरित्र की दुर्बलताओं को भी चित्रित करने का प्रयास किया है । हरिऔध जैसे कुछ अन्य कवियों ने कृष्ण चरित्र को सर्वथा निष्कलंक प्रमाणित किया है ।

पाण्डव हितैषी

महाभारत के कृष्ण पार्थ-सारथी और पाण्डवों के परम हितैषी हैं । महाभारत में उनके प्रथम दर्शन द्रौपदी स्वयंवर के संदर्भ में होते हैं । स्वयं में झगड़ा होने पर वे पाण्डवों का पक्ष लेते हैं और समय समय पर पाण्डवों का पथ प्रदर्शन करते हैं । युद्ध में आरंभ से अन्त तक वे अर्जुन को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देते हैं । महाभारत में श्रीकृष्ण की पाण्डव-हितैषिता की अभिव्यि

करनेवाले अनेक संदर्भ हैं जैसे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के नाम पर अर्जुन का युधिष्ठिर को मारने केलिए तैयार हो जाना,[1] अभिमन्यु-वध के बाद शोकाकुल अर्जुन का युद्ध से विरत रहने का भाव प्रदर्शित करना,[2] नारायणास्त्र के प्रभाव में भीम का आ जाना[3] आदि । इन सभी संदर्भों में श्रीकृष्ण अपने सदुपदेश और सद्व्यवहार से पाण्डवों की रक्षा करते हैं । पाण्डवों के हितैषी तथा उनके पक्ष समर्थक होकर भी वे समता के मूर्तिमान है । पाण्डवों के विरोधी दुर्योधन के पूछने पर वे अपनी सेना देकर उनकी सहायता करने केलिए तैयार होते हैं । महाभारत पर आधारित खड़ीबोली के कृष्ण भी पूर्णत: पाण्डव-हितैषी ही है । गुप्तजी के "जयभारत" और "जयद्रथ-वध" में अभिव्यक्त कृष्ण पाण्डवों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्रदान करते हैं । युद्ध के संदर्भ में वे अनेक बार अर्जुन की सहायता करते हैं[4] । कर्ण के नायकत्व पर रचित खड़ीबोली के काव्यों के कृष्ण भी पाण्डव हितैषी हैं और पाण्डवों केलिए सब कुछ न्योछावर करने केलिए कटिबद्ध है । "अंधायुग" तथा "कनुप्रिया" में भी कृष्ण का यह रूप देखा जा सकता है ।

राजनीतिज्ञ-रूप

महाभारत के कृष्णकुशल राजनीतिज्ञ हैं । पाण्डवों की छत्रछाया में अखंड भारत का निर्माण उनके कुशल नेतृत्व का अनुपमउदाहरण है । महाभारत के पर आधारित खड़ीबोली के काव्यों के कृष्ण भी राजनीति में इतने दक्ष है कि उनके नेतृत्व में सतत पाण्डव विजयी बन जाते हैं । लेकिन भिन्नता इस बात में है कि खड़ीबोली के कवियों ने अपनी कुशल लेखनी से श्रीकृष्ण चरित्र की अतिमानवीय और अविश्वसनीय घटनाओं को विश्वसनीय और मानवीय

---

1. म.कर्ण.प.अ.69,श्लोक.9-15
2. म.द्रोण.प.अ.72,श्लोक 19-65
3. म.द्रोण.प.अ.199,श्लोक 45-63
4. जयभारत - पृ.372-412, जयद्रथवध - पृ.85-86

आकार प्रदान करने का परिश्रम किया है । गुप्तजी के कृष्ण ने युद्ध को रोक कर दुनिया को विनाश के कगार से बचाने का परिश्रम किया है । "जयभारत" में कृष्ण का देशोद्धारक एवं देशसेवक रूप ही अधिक मुखरित रहता है । उस काव्य के कृष्ण भारतीय राष्ट्र की एकता के संस्थापक देशभक्त तथा आर्य संस्कृति के रक्षक युगपुरुष हैं । कृष्ण का यह रूप पौराणिक चरित्र केलिए सर्वथा नवीन है । कर्ण के नायकत्व पर विरचित खड़ीबोली के काव्यों में भी श्रीकृष्ण का धर्मोपदेश तथा उनकी राजनीतिक कुशलता देखी जा सकती है । लेकिन इन काव्यों में श्रीकृष्ण की कुशलता तथा उनकी लीलाओं को दुर्बलता के रूप में अंकित करके उनके मानवीयत्व की उद्घोषणा की जाती है । कौरव पक्ष के सभी वीर शिरोमणि उनकी कूटनीति और दुर्बलताओं की निन्दा करते हैं । "सेनापति कर्ण" में एक पग आगे बढ़कर श्रीकृष्ण मात्र कौरवों के नहीं, युधिष्ठिर को छोड़कर शेष सभी पाण्डवों के भी निन्दा के पात्र हैं । इस काव्य के कौरव पाण्डव पक्ष के वीरों द्वारा श्रीकृष्ण के विषय में जिन विचारों की चर्चा चलाई जाती है वह निस्सन्देह श्रीकृष्ण के चरित्र को हेय बना देती है । दुर्योधन श्रीकृष्ण की नीति को दस्युनीति मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार श्रीकृष्ण की नीति मात्र स्वार्थ - साधना की पूर्ति है[1] । कृतवर्मा की दृष्टि में कृष्ण का शस्त्र हीन होकर पाण्डवों की ओर रहना मात्र ढोंग है[2] । भीष्म का विचार है कि श्रीकृष्ण ने शान्ति-स्थापना का प्रयास नहीं किया क्योंकि शान्ति-दूत बनकर कौरव सभा में आते वक्त भी उनकी बुद्धि द्रौपदी के उन्मुक्त केश में आबद्ध हो चुकी थी[3] । भीम, अर्जुन, द्रौपदी आदि प्रमुख पाण्डव भी श्रीकृष्ण की नीति पर संतुष्ट नहीं हैं । भीम यह सोचते हैं कि कृष्ण को अर्जुन की प्राण-रक्षा की विशेष चिन्ता है और वे कर्ण से अर्जुन को बचाना चाहते हैं[4] । द्रौपदी भी कृष्ण की नीति को कूटनीति ।

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.9,22
2. वही - पृ.10
3. वही - पृ.123
4. वही - पृ.210

मानती है और उसका विचार है कि कृष्ण ने अर्जुन के प्राण बचाने केलिए ही अर्जुन को युद्ध से हटाकर अभिमन्यु का वध करवा दिया और इस प्रकार उन्होंने पाण्डवों का वंश ही डुबो दिया है[2]। अर्जुन भी एक संदर्भ में कृष्ण पर अविश्वास प्रकट करते हैं और उनकी बात मानने केलिए तैयार नहीं होते हैं। वे जानते हैं कि कृष्ण की बात मानकर युद्ध में कर्ण का सामना न करें तो अपना अपमान होगा[3]। यहाँ मात्र कूटनीतिज्ञ तथा नियतिवादी के रूप में कृष्ण को उपस्थित किया गया है।

> क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते
> क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप[4]।

जैसे वाक्य से अर्जुन को प्रेरणा देनेवाले कृष्ण को यहाँ कर्ण के भय से अर्जुन को युद्ध विरत बनाने का प्रयास करते हुए चित्रित करना बड़ा अस्वाभाविक लगता है। कवि ने कर्ण के पराक्रम को अधिकीय उद्घोषित करने के प्रयास में श्रीकृष्ण के परम्परागत चरित्र पर ध्यान नहीं दिया है। इन सबके अलावा "सेनापति कर्ण" के कृष्ण पूर्ण नियतिवादी है जो उनके चरित्र की भौतिकता का ज्वलन्त प्रमाण है। यहाँ के कृष्ण का उद्गार है कि मित्र की सही दिल से सहायता करने पर भी वैचित्र्य यह है कि उन्हें शत्रु और मित्र दोनों समान भाव से अपराधी समझ रहे हैं।

आधुनिक जटिल मनुष्य का प्रतिरूप

महाभारत से बिलकुल अलग होकर 'अंधायुग' तथा 'कनुप्रिया' के कृष्ण पूर्ण रूप से वर्तमान जटिल मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। कृष्ण का

---

1. सेनापति कर्ण - पृ.205
2. वही - पृ.205
3. वही - पृ.164-165
4. गीता - 2 / 3

यह रूप धर्मवीर भारती की मौलिक देन है । क्योंकि महाभारत में या खड़ी-बोली के और किसी काव्य में भी कृष्ण का यह रूप नहीं देखा जा सकता है । 'अंधायुग' के कृष्ण का चरित्र वैशिष्ट्यपूर्ण है । कृष्ण का चरित्र गीता के प्रभाव से बहुत अधिक आलोकित होने पर भी कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा के सहारे उन्हें मानववादी धरातल पर प्रस्तुत किया है । उनमें आसक्ति एवं अनासक्ति अन्धकार एवं प्रकाश का अन्तर्विरोध है । इस काव्य के प्रारंभ में ही कृष्ण को दिव्य आदर्शों के प्रतिमूर्ति मर्यादा रक्षक की संज्ञा से अलंकृत किया गया है । कृष्ण को ही मर्यादा की पतली डोरी को सुलझानेवाला एकमात्र अनासक्त, निर्विकार, निर्वेद व्यक्ति कहा गया है । प्रेतात्मा वृद्ध याचक उनके रथ की गति को इसलिए नहीं बाँध पाता कि वे मर्यादा के शान्तिदूत हैं[1] । उनकी प्रमुख विरोधिनी गान्धारी की उनके प्रति ममता भी कम बड़ महत्वपूर्ण नहीं है[2] । आवेश और आक्रोश से परिचालित क्रुद्ध, विक्षुब्ध गान्धारी के द्वारा अभिशाप देने पर भी वे उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं[3] । लेकिन यहाँ के कृष्ण ब्रह्म नहीं, आधुनिक संशयग्रस्त मानव के प्रतिनिधि अथवा प्रतीक हैं । वे आधुनिक जटिल मनुष्य के समान परिस्थितिवश पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, मर्यादा-अमर्यादा के समस्त दायित्वों का वहन करते हैं । अन्धकार से आप्लावित अन्धे युग में परिस्थितियों के अनुसार अपने उद्देश्य का चुनाव कर जीवन की सार्थकता पाना ही विवेकी मनुष्य केलिए एकमात्र उपाय है । भारती के कृष्ण भी यही करते हैं । अपने उद्देश्य की प्राप्ति केलिए उन्हें कभी प्रतिज्ञा-भंग करनी पड़ती है, कभी मर्यादा का त्याग, कभी छल एवं असत्य का ग्रहण भी करना पड़ता है । बलराम उन्हें कूटबुद्धि कहकर उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं[4] । भीम द्वारा दुर्योधन को अधर्म मार्ग से मारने की प्रेरणा देनेवाले कृष्ण को अश्वत्थामा[5] और गान्धारी[6] अन्यायी की संज्ञा से

1· अंधायुग - पृ·77
2· अंधायुग - पृ·103
3· वही - पृ·102
4· वही - पृ·63
5· वही - पृ· 94
6· वही - पृ·101

विक्षिप्त करती है । इसी प्रकार गान्धारी कृष्ण पर प्रभुता के दुरुपयोग का[1] खुला आरोप लगाती है और वंचक तक कहने में भी तनिक हिचकती नहीं । आस्था, विश्वास, श्रद्धा, न्याय, सत्य और मर्यादा आदि मानदण्डों को जीवन में ग्रहण करनेवाले युयुत्सु कृष्ण को वंचक, कायर और शक्तिहीन घोषित करते हैं[2] । इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि 'अंधायुग' के कृष्ण केवल प्रभु अथवा परब्रह्म ही नहीं है बल्कि देवत्व एवं दानवत्व की संधि के रेखा पर खड़े वे आधुनिक जटिल मनुष्य के प्रतिनिधि हैं जो परिस्थितियों के गुलाम हैं । "कनुप्रिया" में कृष्ण के अनुपस्थित रहने पर भी उनके चरित्र के राजनीतिक तथा युग प्रणेता के रूप का उद्घाटन किया गया है । प्रेम के सहज क्षणों के भोगी कृष्ण का चरित्र युद्धजन्य विषाक्त वातावरण में किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है, उसको कवि ने खूब दिखाया है । उनके चरित्र का वैरूप्य यहाँ भी देखा जाता है । एक ओर वे अर्जुन को स्वधर्म, कर्म तथा दायित्व का पाठ पढ़ाकर कर्मयोगी बना देते हैं[3] तो दूसरी ओर युद्धजन्य नैराश्य, घुटन, बेबसी, संत्रास तथा विघटित मानव मूल्यों के वातावरण में स्वयं किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं । महाभारत युद्ध के घोर विनाश के सामने कृष्ण स्वयं यह सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि युद्ध के साकार रूप देने में मेरा भी हाथ है[4] । कृष्ण का यह नैराश्यजन्य चिन्तन आधुनिक जटिल संत्रस्त मनुष्य के नैराश्यपूर्ण चिन्तन का साकार रूप है ।

लोकरक्षक रूप

जैसे कि महाभारत में है, महाभारत पर आधारित आधुनिक काव्यों में भी कृष्ण का चरित अपने में पूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

---

1. अंधायुग - पृ.101
2. वही - पृ.126
3. कनुप्रिया - पृ.76
4. वही - पृ.82

महाभारत के कृष्ण ज्ञानी, नीतिज्ञ तथा कुशल राजनीतिज्ञ है । इसमें कृष्ण के बाल तथा गोपीवल्लभ रूप का एकदम अभाव है । परवर्ती पुराणों में विशेषकर हरिवंश तथा भागवत में श्रीकृष्ण के चरित्र का पूर्णतः उद्घाटन किया गया है। कृष्ण भक्ति की आधारशिला पर रचे गए समस्त पुराणों में श्रेष्ठ भागवत में श्रीकृष्ण के असुरसंहारी बालकलीलामय, गोपीविहारी, राजनीतिवेत्ता, कूटनीति विशारद और योगेश्वर कृष्ण का रूप अंकित किया गया है । इन सभी रूपों में कृष्ण के चरित्र पर अलौकिकता का पुट देखा जा सकता है । भागवत के कृष्ण परब्रह्म स्वरूप है जिन्हें भागवतकार ने "एतेचांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" कहकर स्पष्ट किया है । दुष्टदलन और साधुरक्षण के उद्देश्य से कृष्ण का अवतार हुआ है, इसलिए शकटभंजन,[1] तृणावर्तवध,[2] माता यशोदा को अपने मुँह में ब्रह्माण्ड दर्शन कराना,[3] कालीयदमन,[4] दावानलपान[5] आदि अनेक जगहों पर वे अतिमानवीय रूप धारण कर लेते हैं । लेकिन भागवत पर आधारित "प्रियप्रवास", "द्वापर", "अनुप्रिया", आदि खड़ीबोली के काव्यों में कृष्ण चरित्र को मानवीय आकार प्रदान करके उनके लोकरक्षक रूप को प्रतिष्ठित किया गया है । हरिऔध जी ने कृष्ण के परब्रह्म रूप की चर्चा न करके उन्हें एक महात्मा पुरुष एवं जननायक के रूप में अंकित किया है । एक जननायक की यह प्रधान विशेषता मानी जाती है कि विपत्तियों में पड़े जन समाज के उद्धार के लिए वह जनशक्ति का आह्वान करता है । "प्रियप्रवास" के कृष्ण में यह चारित्रिक विशेषता अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हुई है । उनके जन्म और जीवन का उद्देश्य ही दानवता का विनाश करके जनजीवन का उद्धार करना है । अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे शकटासुर बकासुर, अघासुर, व्योमासुर, केशी, कंस आदि दुष्टों का विनाश करते हैं

---

1. श्रीमद्भागवत - स्कन्ध - 10, अ॰7
2. वही - अ॰7,
3. वही - अ॰8 श्लो॰38-39
4. वही - अ॰ 16,17,18
5. वही - पृ॰ 17

तथा भयंकर वर्षा से ब्रज की रक्षा करते हैं। वे मानवता की रक्षा केलिए अपने प्राणों को भी संकट में डालने केलिए तैयार हो जाते हैं तथा अपनी जाति एवं अपनी जन्मभूमि के निमित्त सर्वस्व न्योछावर करने केलिए तत्पर रहते हैं। परोपकार उनके जीवन का अंग बन जाता है, परदुःखकातरता उनके चरित्र में पग पग परदेखी जा सकती है। "द्वापर" के कृष्ण भी एक जननायक के जैसे अतिम वीर और पराक्रमी हैं जो एक ओर गोवर्धन धारण कर ब्रज के लोगों की रक्षा करते हैं तो दूसरी ओर बकासुर, कालीय आदि के आतंक से ब्रज की मुक्ति करने में भी संलग्न हैं। इस रूप में कृष्ण विदेशियों की शृंखलाओं से आबद्ध भारतीय माँ को मुक्त करने के परिश्रम में लगे तत्कालीन राजनीतिक नेता के प्रतिनिधि ही हैं।

लीलामय रूप

श्रीमद्भागवत में अलौकिकता के रंग से रंगे हुए श्रीकृष्ण के लीलामय रूप को अत्यंत विशद रूप में अंकित किया गया है। गोपियों से उनका सम्बन्ध लौकिक नहीं है। उनके प्रेम में काम वासना का स्पर्श तक नहीं है। लेकिन "प्रियप्रवास" में कृष्ण के लीलामय रूप से बढ़कर उनका कर्तव्यपरायण रूप ही उद्घाटित किया गया है। अपनी असीम कर्तव्यपरायणता के कारण कृष्ण अनन्त स्नेह, अपार वात्सल्य एवं असीम दुलार से भरे हुए नंद एवं यशोदा तथा अपने अनन्य भक्त, विनोदशील एवं सुख दुःख के सच्चे साथी गोपों और गोपिकाओं को त्याग देते हैं। अपने हृदय की एक मात्र आधारस्वरूप, बचपन से ही अनन्य प्रेम में परम तन्मय, रमणीयता, तन्मयता, अतिप्रीति, सुशीलता एवं विनोद प्रियता की साकार मूर्ति राधा तक का परित्याग करने में भी उनकी कर्तव्यपरायणता तनिक भी हिचकती नहीं। यहाँ के कृष्ण ने उद्धव के द्वारा जो संदेश ब्रजजनों को प्रसारित किया उसमें योग और ज्ञान का आदर्श नहीं

वरन् कर्तव्यपालन की ही शिक्षा है[1]। इसके विरुद्ध "द्वापर" के कृष्ण का चरित्र भगवान के लीलामय रूप से अधिक मिलता जुलता है। लेकिन गुप्तजी ने युगानुकूल उन्हें प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य किया है। उनके कृष्ण विश्व कार्य में लगे रहे हैं और विश्व कल्याण केलिए आत्मसमर्पण, त्याग का मनोभाव आदि पर बल देते रहे हैं। "कनुप्रिया" में कवि ने अत्यन्त आकर्षक एवं भव्य रूप से ही कृष्ण के लीलामय रूप पर प्रकाश डाला है। वे सहज प्रेम के तन्मयकारी क्षणों को भोगते हुए भी बाह्य रूप से निर्लिप्त और निर्विकार हैं। उन्हें राधा की प्रणामबद्ध अंजलि और बंकिम मुद्रा विस्मय विमुग्ध कर देती है। प्रिया का पन्थ निहारते हुए वे घंटों बंसी बजाते हुए प्रतीक्षा निरत हो जाते हैं। वे धीरे धीरे राधा को पूर्णतः बांध भी लेते हैं[2]। लेकिन उन दोनों के प्रेम का एक दूसरा पक्ष भी है। उनका प्रेम विशिष्ट है जो वासना, एषणा, शरीरजन्य इच्छाओं से सर्वथा परे "लोकोत्तर" आदर्शों पर टिका हुआ है। राधा के अधर, पलक, अंग-प्रत्यंग एवं संपूर्ण चम्पकवर्णी की देह तो पारस्परिक तादात्म्य का साधन मात्र है जिसकी अनुभूति चरम साक्षात्कार के क्षणों में नहीं रहती[3]। उनका प्रेम एक विशिष्ट पद्धति का है[4]। कृष्ण राधा को केवल राधा केलिए प्यार कर उन्हें ईश्वरत्व, निजत्व, आन्तरिक अर्थ, तथा स्त्रीलत्व को नववधू की भांति पवित्र रखने केलिए दिशाबोध करते हैं[5]। वे असफल इतिहास को जीर्ण वसन की भांति त्याग कर राधा का स्मरण करते हैं कि वही उनकी शक्ति है जिसके बिना नवसृष्टि की सृजना में वे असफल रह जाते हैं[6]। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अत्यन्त आकर्षक एवं भव्य रूप से कृष्ण के प्रेमी रूप का "कनुप्रिया" में उद्घाटन किया गया है।

---

1. प्रियप्रवास - पृ. 193-195
2. कनुप्रिया - पृ. 16
3. वही - पृ. 29
4. वही - पृ. 31
5. वही - पृ. 33
6. वही - पृ. 88

महाभारत तथा पुराणों पर आधारित खड़ीबोली हिन्दी काव्यों के कृष्ण चरित्र का अध्ययन करने पर यह देखा जा सकता है कि युगीन प्रभाव में आकर कृष्ण का चरित्र बहुत अधिक परिवर्तित हो गया है । आधुनिक कवि पौराणिक कवि के समान कृष्ण को आस्था के स्तर पर नहीं लेते, वे उन्हें मात्र एक चरित्र के रूप में लेते हैं । द्विवेदी युग के "हरिऔध जी के कृष्ण का चरित्र एक महापुरुष का चरित्र है । कवि ने उन्हें मानववादी पृष्ठभूमि पर स्थापित किया है जिसके कारण वे जन जन की प्रेरणा के स्रोत बन गए हैं । उनका चरित्र शील, शक्ति, प्रेम, मोह, त्याग, संयम, ओज, औदार्य आदि मानवीय गुणों का खजाना है । युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर भी गुप्तजी अपनी पुराणप्रियता और विष्णु भक्ति के प्रभाव में आकर कृष्ण के पौराणिक स्वरूप को बनाए रखने में ही अधिक सफल रहे हैं । प्रगतिवादी काव्यों में विशेषकर कर्ण के नायकत्व पर रचित काव्यों में मात्र कृष्ण की दुर्बलताओं की ओर कवियों ने ध्यान आकृष्ट किया है । लेकिन आगे चलकर प्रयोगवादी नये काव्यों जैसे "अंधायुग" तथा "कनुप्रिया" में धर्मवीर भारती ने देवत्व एवं मानवत्व की संधि रेखा पर खड़े कृष्ण का चरित्र ही उपस्थित किया है जिसके माध्यम से कवि आधुनिक संशयग्रस्त मानव की झलक दिखाने में पूर्णतः सफल रहे हैं ।

राधा

हिन्दी साहित्य में श्रीकृष्ण के समान राधा के चरित्र का भी बड़ा महत्व रहा है । उन्हें कृष्ण काव्य की नायिका का महागौरव प्राप्त हुआ है । महाभारत, हरिवंश पुराण, ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद्-भागवत आदि में राधा का उल्लेख नहीं किया गया है[1] । लेकिन एक स्थान पर

1· हिन्दी काव्य मंथन - दुर्गाशंकर मिश्र - पृ·258

भागवतकार ने एक सखी का विशेष उल्लेख किया है जो बाद के साहित्य में "राधा" नाम की कल्पना का आधार माना जाता है । श्रीकृष्ण के साथ किसी युवति के चरण चिन्ह को देखकर गोपियाँ आपस में कहने लगीं - "जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गई हो, वैसे ही श्यामसुन्दर के साथ उनके कन्धों पर हाथ रखकर चलनेवाली किस बडभागिनी के ये चरण चिन्ह हैं ? अवश्य ही वह सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण की आराधिका होगी । इसलिए इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण-प्यारे श्याम सुन्दर ने हमें छोड दिया है और इसे एकान्त में ले गए हैं[1] । ऊपर उल्लिखित भागवत के एक ही श्लोक के आधार पर परवर्ती संस्कृत साहित्य में राधा की कल्पना की गई और हिन्दी साहित्य के आदि कालीन, मध्य कालीन और रीतिकालीन साहित्य में राधा का बडा महत्व इसी आधार पर माना गया । खडीबोली के कतिपय कवि जैसे हरिऔध जी, गुप्तजी तथा भारती जी ने राधा के चरित्र को अपने काव्यों में अंकित किया । लेकिन इन कवियों की राधा आदि काल, मध्यकाल और रीतिकाल की राधा से पृथक व्यक्तित्व रखनेवाली है । "द्वापर" में गुप्तजी ने भागवत, गीतागोविन्द आदि में चित्रित पौराणिक राधा के चरित्र से मिलता जुलता रूप ही अपनाया है । राधा अपने को कृष्ण पर समर्पित करती है और कृष्ण के आगे उसे सब कुछ तुच्छ प्रतीत होता है । युग की मांग के अनुसार सेवा, सुधार, क्रान्ति आदि युगीन प्रवृत्तियों की झलक भी उसमें अवश्य देखी जा सकती है । हरिऔध जी के "प्रियप्रवास" में संयोग और वियोग में आमग्न राधा से बढकर लोकसेवा-रत नारी का रूप ही अधिक उभर आता है । "प्रियप्रवास" की राधा का चरित्र इस अर्थ में भी नवीन है कि उसके वियोग का उदात्तीकरण किया गया है । अपने प्रिय के वियोगमें द्रवित राधा संपूर्ण विश्व में श्याम की छवि ही नहीं देखती, अपितु उसके हृदय में संपूर्ण जीव जगत केलिए प्रेम उमड पडता है[1] । वे विश्व की दु:खी, संतप्त, आत्माओं की सेवा करने में व्यस्त रहती है और इस प्रकार प्रेम का वास्तविक आदर्श उपस्थित करती है । धर्मवीर भारती ने राधा की कल्पना अत्यन्त नव्यतम रूप में की है । उनकी राधा समयुगीन प्रश्नों की सूचक है, कनु की सखी, सहचरी, बान्धवी, केलिसखी, मित्र, माँ आदि

~~1- प्रियप्रवास - अ-16, पृ-254~~ 1. श्रीमद्भागवत - स्कन्ध. 10. अ. 30. श्लो. 27-28

1. प्रियप्रवास - अ.16, पृ.254

विविध सम्बन्धों की निर्वाहिका है और उस सहज भावाकुल तन्मयता की प्रतीक है और जिसके माध्यम से कवि ने समस्त इतिहास को आंका है । हरिऔध जी और गुप्तजी ने राधा को अपना व्यक्तित्व नहीं दिया है, लेकिन भारती जी ने राधा को अपनी मानसिकता भी दी है और इस मानसिकता के द्वारा ही उसका नवीनीकरण किया है । "कनुप्रिया" की भूमिका में धर्मवीर भारती ने लिखा है कि "अंधायुग" में गान्धारी, युयुत्सु और अश्वत्थामा जिस समस्या को अपनी दृष्टि से देखते हैं, उसी समस्या को राधा अपनी दृष्टि से देखती है । राधा इतिहास-निर्माण, युद्ध-नियति और मूल्यों के प्रश्नों को बौद्धिक दृष्टि से नहीं, भावाकुल तन्मयता की दृष्टि से देखती है[1] । "कनुप्रिया" के राधा के व्यक्तित्व में वैष्णव राधा, आधुनिक के रोमान्टिक राधा और त्रिपुर सुन्दरी राधा - इन तीनों का समन्वय देखा जा सकता है । खड़ीबोली के काव्यों में अभिव्यंजित राधा के चरित्र का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

प्रेमिका रूप

मध्यकालीन कवियों की राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है, कृष्ण की अनन्य आराधिका है । राधा का लीलामग्न, संयोगी और वियोगी रूप ही इसमें अधिक प्रस्फुटित किया गया है । लेकिन खड़ीबोली के कवियों की राधा इससे पृथक व्यक्तित्व रखती है । इसके पीछे मुख्यत: युगीन आवश्यकता ही कार्यरत रहती है । मध्यकाल में नारी उपेक्षिता थी, वह केवल पुरुष की क्रीड़ा की उपकरण थी । उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था । लेकिन आधुनिक युग में पश्चिमी प्रभाव से नारी का महत्व स्वीकृत हुआ है, पुरुष के साथ या उससे एक कदम आगे है उसका स्थान । खड़ीबोली के

---

1. कनुप्रिया - भूमिका - पृ. 7

विभिन्न कवियों में युग की यह मांग भिन्न भिन्न स्तरों में देखी जाती है। "द्वापर" की राधा मध्यकालीन कवियों द्वारा चित्रित राधा से मिलता जुलता व्यक्तित्व उपस्थित करती है। वे कृष्ण की अनन्य आराधिका है और अपने को कृष्ण पर अर्पित करती है और कृष्णके सामने वह सब कुछ तुच्छ मानती है[1]। लेकिन युगीन प्रभाव् इसमें इस प्रकार झलकता है कि यहाँ की राधा कृष्ण के सेवात्मक कार्यों में भी सहायता देती है। वे कृष्ण के मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहती। हरिऔधजी के "प्रियप्रवास" में राधा के प्रेममय व्यक्तित्व का क्रमिक एवं समुचित विकास किया गया है[2]। प्रणयभाव की तीव्रता में वे कृष्ण को पति के रूप में वरण करना चाहती है[3]। लेकिन यहाँ पर स्मरणीय है कि "प्रियप्रवास" में राधा के वियोगी तथा तद्जन्य मनोभावों का चित्रण अधिक विस्तार से नहीं प्रकट किया गया है। इसी प्रकार उनके चरित्र को नवीन बनाने के लिए उनके वियोग का भी उदात्तीकरण किया गया है। मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में कृष्ण के वियोग में आठ-आठ आँसु बहाती हुई वन-वन भटकनेवाली राधा "प्रियप्रवास" में लोकसेवारत नारी का रूप धारण कर लेती है। नवधा भक्ति की लोकमंगलकारी व्याख्या के द्वारा कवि ने राधा के चरित्र को उदात्तता के उस उच्च शिखर पर स्थापित किया है, जहाँ पहुँचकर वे विश्व के दुःखी, संतप्त आत्माओं की सेवा द्वारा प्रेम का वास्तविक आदर्श उपस्थित करती है। राधा कृष्ण के वियोग में आँसु बहाने की अपेक्षा विश्व को कृष्णमय मानकर उसकी उपासना करती हुई कृष्ण की अनन्य उपासिका बन जाती है। एक कदम आगे बढ़कर धर्मवीर भारती की राधा का चरित्र अत्यन्त नव्य और भव्य रूप उपस्थित करता है भारतीने राधा का दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और आधुनिक प्रेमिका का रूप उपस्थित किया है। पाश्चात्य विद्वान फ्रायड से प्रभावित होकर भारती ने राधा के प्रेम की विभिन्न स्थितियों का वर्णन किया है। उसका प्रेम प्रथम

---

1. द्वापर - पृ.14
2. प्रियप्रवास अंक - 4
3. वही - पृ.38-39

दर्शन की उपज नहीं है, वह विकासोन्मुखी है । उनका प्रेम जीवन के कटुतम अनुभवों को भुलाकर उत्सुकता, लाज, समर्पण, भय आशंका, विछोह तथा प्रतीक्षा के सुदीर्घ पड़ावों को पारकर परिपक्वता को प्राप्त करता है । राधा ने इन विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्थितियों का राधा की स्मृतियों के रूप में तन्मयता से वर्णन किया है । पूर्वराग की राधा सहज मुग्धा है, जो कृष्ण को वीतराग एवं निर्लिप्त मान बैठी है, लेकिन अचानक ही उनमें स्मृतिजन्य अनुभूतियों का संगीत झंकृत होने पर वे आपादमस्तक कृष्ण-प्रेम में निमग्न हो जाती हैं । समस्त सृष्टि उन्हें कृष्णमय लगती है[1] । यमुना की साँवली गहराई को कृष्ण के श्यामल, प्रगाढ़, अथाह आलिंगन कल्पित करती हुई वे घण्टों जल में निहारती रहती हैं[2] । कृष्ण को छोड़कर आने से वे पश्चाताप विवश भी हो जाती है । इसके पश्चात् कनुप्रिय स्वयं को कृष्ण की जन्म जन्मांतर की रहस्यमयी लीला की एकान्त-संगिनी मानती हैं और कवि ने उनके लज्जायुक्त भव्य रूप का वर्णन किया है, जहाँ वे चरम साक्षात्कार के क्षणों में जड़ और निस्पन्द हो जाती है क्योंकि लाज शरीर की ही नहीं, बल्कि मन की भी होती है । उनका मन एक अज्ञात भय, अपरिचित संशय, आग्रह भरा गोपन और सुख के क्षणों में भिर आनेवाली अव्यक्त उदासी से भर जाता है । इसलिए कृष्ण के द्वारा बुलाने पर भी वे कृष्णके पास नहीं पहुँच पाती[3] । फिर राधा वहाँ आती है और अतीत मिलन की स्थितियों का संकेत करती हुई कृष्ण को बाहों में भर कर बेसुध होना चाहती है ।

भारती के राधा-कृष्ण के प्रेम-चित्रण पर वैष्णव-दर्शन का भी प्रभाव देखा जा सकता है । राधा प्रकृति है और कनु पुरुष-विराट अपराजेय पुरुष । इस विराट कल्पनातीत पुरुष की इच्छा ही समस्त सृष्टि के सृजन विनाश, प्रवाह की जीवन-प्रक्रिया है और इस संपूर्ण का अभिप्राय है राधा[4] ।

---

1. कनुप्रिया - पृ.17
2. वही - पृ.18
3. वही - पृ.23,24
4. वही - पृ.47

राधा पूर्णरूपेण कृष्ण की समर्पिता रही है । राधा स्वयं स्वीकारती है कि मिलन के क्षणों में शरीर के बोझ से मुक्ति मिलती है और देह एक आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन सुगन्ध मात्र रह जाती है[1] । उनका प्रेम सीमातीत है, कालातीत है, उन्मुक्त और असीम है । यहाँ निम्नलिखित पंक्तियों में राधा के प्रेम में अलौकिकत्व की झलक देखी जा सकती है -

"सीमा कैसी
मैं तो वही हूँ जिसे दिग्वधू कहते हैं, कालवधू -
समय और दिशाओं की सीमाहीन पगडण्डियों पर
अनन्त काल से
अनन्त दिशाओं में तुम्हारे साथ साथ चलती चली आ रही हूँ
चली जाऊँगी ....
इस यात्रा का आदी न तो तुम्हें स्मरण है न मुझे
और अन्त तो इस यात्रा का है ही नहीं मेरे
सहयात्री[2] ।"

काव्य के अंतिम चरण तक आते आते भारती ने राधा को एक आधुनिक नारी के समान प्रस्तुत किया है । राधा अपने पति के व्यक्तित्व निर्माण में पूर्ण रूप से सहयोग देती हैं । इसे वे अपना दायित्व समझती हैं और अपने को कृष्ण की मात्र लीलासंगिनी नहीं इतिहास निर्माण की संगिनी भी मानती हैं । राधा स्वयं को लीला भूमि एवं युद्धभूमि के बीच एक सेतु स्वीकारती है । 'पूर्वराग' के तीसरे गीत में कदम्ब के नीचे खड़े श्यामवर्ण देवता समान कनु को प्रणाम करनेवाली राधा अन्तिम चरण में कृष्ण की

---

1. कनुप्रिया - पृ.57
2. वही - पृ.39

अठारह अक्षौहिणी सेनाओं को युद्ध में सम्मिलित होने जाने देखती है[1]। वे जन्म जन्मान्तरों की अनन्त पगडण्डी के कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर कनु की प्रतीक्षा कर रही थी कि कहीं इस बार इतिहास निर्माण करते समय कृष्ण अकेले न भटक जाए। वे एक आधुनिक अस्तित्ववादी दार्शनिक की भाँति इतिहास का निषेध करती हुई अन्तत: काल के सूक्ष्मतम खण्ड "क्षण" का महत्व प्रतिष्ठित कर भोगना चाहती है। उन्हें इतिहास की जटिल क्षणों की अपेक्षा तन्मयता के क्षण भावविह्वलता प्रदान करते हैं। उन्हें इतिहास बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चाँद और बीते हुए क्षण-सा प्रतीत होता है। राधा कृष्ण के ऐतिहासिक स्वरूप एवं उनके भयंकर संहार तथा उनकी अठारह अक्षौहिणी सेनाओं को निरर्थक प्रमाणित कर तन्मयता के क्षणों का महत्व प्रतिपादित करती है। भारती ने अन्तत: कृष्णके द्वारा असफल इतिहास का परित्याग कर राधा केलिए व्याकुल दिखाकर तन्मयता का महत्व प्रतिपादित किया है। राधा और कृष्ण में पारस्परिक अपेक्षा काव्य का प्राण है[2]। राधा का यह रूप आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करने मे पूर्ण रूप से सक्षम है। इस प्रकार भारती परम्परा के साथ साथ युग-सापेक्ष दृष्टि का भी निर्वाह करने में पूर्णत: सफल हुए हैं।

लोकसेविका

पौराणिक राधा के चरित्र को युगीन बनाने केलिए खड़ीबोली के कवियों ने विशेषकर हरिऔध जी तथा गुप्तजी ने राधा को विश्व-प्रेमिका और लोकसेविका का रूप दे दिया है। 'प्रियप्रवास' में कृष्ण प्रेम से तल्लीन राधा का हृदय कृष्ण के चले जाने पर विशाल, उदार और मानवीय प्रेम से भर जाता है। वे प्रत्येक वस्तु में कृष्णके दर्शन करती हैं। कृष्ण के बन्धु

1. कनुप्रिया - पृ.69
2. वही - पृ.78

उद्धव के आने पर "प्रियप्रवास की राधा पौराणिक राधा के समान उन्हें व्यंग्य या उपालम्भ नहीं देतीं और न ही मोहमग्न होकर विरह वेदना में प्रलाप करती है। वे एक आधुनिक शिष्ट नारी के समान उद्धव का स्वागत करके धैर्यपूर्वक कृष्ण का सन्देश स्वीकार करती हैं[1]। और तदनुसार मानवीय प्रेमिका की संकुचित भावना से ऊपर उठकर श्याम को जगत्पति और जगत्पति को श्याम समझकर पीड़ित पतितों और असहायों की सेवा करने में जुटी रहती हैं[2]। वे भगवान की भक्ति नवधा भक्ति की भी नवीन व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। आर्त-पीड़ितों एवं रोगियों की व्यथा सुनना श्रवण मानती है, और सद्व्यक्तियों एवं विद्वानों का आदर सत्कार करना वे वंदना मानती हैं। इसी प्रकार कंगाल दीन-दुःखियों आदि के स्मरण को वे स्मरण नामक भक्ति मानती हैं। विपत्ति में सहायता करने केलिए अपने तन और मन के अर्पण को आत्म-निवेदन मानती हैं और इसी प्रकार पीड़ितों को औषधि, प्यासों को जल, भूखों को अन्न देना अर्चना मानती हैं, संसार के अन्य प्राणियों के प्रति सहृदय होना ही सख्य नामक भक्ति मानती हैं और पतितों को शरण में लेना पाद-सेवन मानती हैं[3]। स्वयं लोकसेवा में जुटे रहने के साथ वे कुमारी गोपियों का भी ऐसा एक दल स्थापित कर देती हैं जो सारी व्रज-भूमि में सुख और शान्ति का प्रसार करने का परिश्रम करता है। इस प्रकार वे समस्त व्रज-भूमि की आराध्या देवी बन जाती हैं। "द्वापर" की राधा "प्रियप्रवास" की राधा की जैसी सेवाकार्य में नहीं जुट जाती है", फिर भी उसके सेवाभाव की तत्परता उन्हें कृष्ण के सेवात्मक कार्यों में योग देने का प्रोत्साहन प्रदान करती है।"

१.८ राधा के चरित्र का समग्रतः विचार करने पर यह देखा जा सकता है कि खड़ीबोली काव्य की राधा का चरित्र युगीन माँग के अनुसार कुछ परिवर्तित हो गया है। श्रीमद्भागवत जैसे बृहद् पुराण में मात्र एक श्लोक में अंकित राधा का चरित्र हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और रीतिकालीन साहित्य में बृहद् आकार धारण कर संयोग और वियोग शृंगार में

1• प्रियप्रवास - पृ•243, 254
2• वही - 16 सर्ग - पृ•225
3• वही - पृ•256, 257

रत पुरुष की क्रीडा के उपकरण की अभिव्यक्ति करता था । लेकिन खडीबोली के हरिऔधजी और गुप्तजी की राधा एक लोकसेविका एवं सुधारिका का उच्च पद अलंकृत करती है । एक कदम आगे बढकर भारती की राधा वर्तमान युग की रोमान्टिक नारी का ही रूप अलंकृत करती है । काम-क्रीडा में लगी रहने के साथ-साथ अपने पति के व्यक्तित्व निर्माण में तथा उनके औद्योगिक जीवन में भी वे सहायता देती हैं ।

विधृता

गुप्तजी के "द्वापर" का एक सशक्त पौराणिक पात्र है विधृता । अपने पति के अत्याचार और उत्पीडन से विवश, आत्महत्या की क्रोड में विश्राम लेने के लिए मजबूर विधृता का चरित्र केवल एक श्लोक में श्रीमद्भागवत में उल्लिखित किया गया है जैसे -

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ।
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ।।[1]

भागवत में कवि ने अत्यन्त विवश तथा सतर्क सहानुभूति का पात्र बनी विधृता का चरित्र ही उद्घाटित किया है । लेकिन नवोत्थान के युग में सांस लेनेवाले गुप्तजी में इसने नवीन प्रेरणा फूंक दी । उन्होंने विधृता का अत्यन्त क्रान्तिकारी और तेजस्वी चरित्र अंकित किया है ।

---

1. श्रीमद्भागवत स्कन्ध - 10 अ.23

क्रान्तिकारी रूप

गुप्तजी की विधृता भी पति के अत्याचार और उत्पीडन से विवश होकर आत्महत्या कर लेती है। लेकिन इसके पहले वे अत्यन्त सशक्त वाणी में पुरुषों के अत्याचार को खुलकर प्रकट करती है। उन्होंने अपने जीवन के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पुरुष जाति जितना भी अधिकार, जितना भी बल नारियों पर दिखाये, वह केवल बाह्य ही होता है, अबलाओं का मन अत्यन्त बलवान होता है, उसको बन्दी बनाना असंभव है। उनका हर भाव, हर शब्द एवं हर वाक्य इतना सशक्त है। नारी के स्वतंत्र अस्तित्व एवं उसके अधिकारों पर वे अत्यन्त तेजस्वी वाणी में प्रकाश डालती है[1]। विधृता का यह प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय ही है, क्योंकि उन्होंने नारी जाति को दासत्व की बेडियों को तोड फेंकने की महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान की है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि "द्वापर" में विधृता का चरित्र अत्यन्त सशक्त बन गया है। गुप्तजी ने नारी के ऊपर चिर काल से किये जानेवाले पुरुष के अत्याचार और उत्पीडन के विरुद्ध विधृता के माध्यम से स्वर उठाया है।

देवकी

श्रीकृष्ण की माता देवकी का चरित्र पुराणों में, विशेषकर श्रीमद्भागवत में अत्यन्त विस्तृत रूप में चित्रित किया गया है। पुत्रवियोग से संतप्त देवकी के दुःख और उसके कठोर भाग्य का जीता जागता चित्र श्रीमद्भागवत में उतारा गया है। एक या दो नहीं, ...

---

1. द्वापर - पृ. 33

छः छः बच्चों को अपने भाई कंस की नृशंसता के शिकार बनते देख जेल में पड़ी सड़नेवाली देवकी का दुःख किसको न सताएगा ?

गुप्तजी ने "द्वापर" में मनोविश्लेषणात्मक ढंग से देवकी की करुण दशा का अत्यन्त तीव्र वाणी में अंकन किया है[1]। "द्वापर" का प्रारंभ ही कवि की इस दुःखपूर्ण संवेदना का सफल परिचायक है। गुप्तजी की करुणास्नात लेखनी से स्त्री-हृदय का चित्रण अत्यन्त मार्मिक बन गया है। इसके साथ ही युगीन प्रभाव में आकर कवि ने देवकी की मनोव्यथा के माध्यम से विदेशों की दासता की बेड़ियों से जकड़ी हुई भारत माता की व्यथा को खोलने का प्रयास किया है। कंस की आड़ में, तत्कालीन विदेशी शासन पर भी कवि ने देवकी के द्वारा आघात कराया है[2]। कवि ने दुःख विवश देवकी के चरित्र का उद्घाटन करने के साथ साथ उनका क्रान्तिकारी रूप भी उपस्थित किया है। कवि ने देवकी के दुःखपूर्ण आत्मोद्गारों में क्रान्ति की चिनगारियाँ भी व्यक्त की हैं। स्वार्थलीन, हीन शासन को उखाड़ फेंककर एक नवीन युग की स्थापना की कामना वे मन में करती हैं और इसकेलिए उनकी आत्मा कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करती है। उनकी आकांक्षा के पीछे युगीन आकांक्षा ही पूर्ण रूप से झलक रही है।

यशोदा

भारतीय पौराणिक वाङ्मय में यशोदा का चरित्र असीम स्याग अनन्त वात्सल्य एवं अलौकिक दुलार केलिए मशहूर है। श्रीमद्भागवत में ऐसा बताया गया है कि अनेक दासियों के होने पर भी नन्दरानी यशोदा स्वयं अपने पुत्र केलिए दधि मंथने में कटिबद्ध है। वे किसी भी मूल्य पर अपने पुत्र को

---

1. द्वापर - पृ.82,98
2. वही - पृ.87

प्रसन्न देखना ही चाहती हैं । खड़ीबोली के कवियों ने, विशेषकर गुप्तजी ने और हरिऔधजी ने उनके मातृस्वरूप की अभिव्यक्ति करते हुए उनके वात्सल्य, उनकी ममता एवं उनकी उदार मनोवृत्ति की सशक्त अभिव्यक्ति की है । "प्रियप्रवास" में अक्रूर द्वारा कृष्ण को ब्रज से ले जाने की बात से व्याकुल यशोदा खुलकर रो भी नहीं पातीं क्योंकि कहीं यह रोदन सुनकर सोनेवाला कृष्ण जाग ~~कहीं यह रोदन सुनकर सोनेवाला कृष्ण जाग~~ उठें तो उन्हें बहुत कष्ट होगा । ये ममतामयी माँ हर पल अपने पुत्र के कल्याण केलिए देवी देवताओं से प्रार्थना करने में लीन रहती हैं । कृष्ण के मथुरा चले जाने पर वे अत्यन्त व्यथित हो जाती हैं । इसका विशद अंकन भागवत तथा 'प्रियप्रवास' में पाया जाता है[1] । "द्वापर" में गुप्तजी ने भी यशोदा के चरित्र को ममतामयी, वात्सल्य से परिपूर्ण माता के रूप में अंकित किया है ।

उदारता

ममतामयी माँ होने के साथ साथ यशोदा उदारता, दया, सहनशीलता, त्याग आदि सद्गुणों से सुसज्जित एक भव्य तेजदीप्त भारतीय नारी भी हैं । कृष्ण के वियोग से अत्यधिक व्यथित होने पर भी वे कृष्ण को अपने साथ रखकर उनकी यथार्थ माता देवकी को दुःख में डुबोना नहीं चाहतीं । 'प्रियप्रवास' की यशोदा के मन में केवल यही कामना है कि भले ही कृष्ण दूसरों का बन जाय, परन्तु धाई के नाते से ही एक बार मुझे अपना मुख तो दिखा जाए[2] । "द्वापर" की यशोदा भी एक आदर्श माता की भाँति अपने पुत्र को लोक-सेवा एवं लोकहित केलिए नितान्त अग्रसर कराना चाहती हैं । यही भाव उन्हें विश्व में श्रेष्ठ और उच्च माताएं जैसी कुन्ती, विदुला, सुभद्रा आदि की कोटि में रखने में पर्याप्त है ।

1· श्रीमद्भागवत - अ·46, प्रियप्रवास सर्ग 5,7,10

2· वही - अ·10, पृ·130

G3480.

यशोदा के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि पौराणिक यशोदा के साथ हरिऔधजी ने तथा गुप्तजी ने पूरा न्याय किया है और पौराणिक यशोदा के गुणों को अत्यन्त उज्ज्वल रूप में प्रकाशित किया है ।

नन्द

एक आदर्श पिता तथा पति के रूप में नन्द के चरित्र का अंकन पुराणों में किया गया है । खड़ीबोली के कवियों ने भी विशेषकर गुप्तजी तथा हरिऔध जी ने भी उनके इस परम्परागत चरित्र के साथ पूरा न्याय किया है । देवकी के कोष रूपी कृष्ण को मथुरा छोड़कर आनेवाले नन्द की व्यथा को मनोवैज्ञानिक ढंग से "द्वापर" में प्रस्तुत किया गया है । कृष्ण के अभाव में गोकुल की हर वस्तु उन्हें दुःख सागर में निमज्जित करती है । अत्यधिक व्यथित होने पर भी कृष्ण का तुरन्त आने की वादा उनकेलिए आशादायक ही है और उसके सहारे ही वे जीवन बिता रहे हैं । हरिऔध जी ने नन्दजी के पितृत्व, उनके हृदयोद्गारों का मार्मिक वर्णन किया है[1] । लेकिन वियोग के अवसर पर भी वे कर्तव्य विमुख नहीं होते । वे अपनी मर्म व्यथा को दबाए कृष्ण को साथ लेकर मथुरा चले जाते हैं और कृष्ण को मोकहित में रत छोड़कर लौट आते हैं ।

आदर्श पति

हरिऔधजी और गुप्तजी के नन्द पौराणिक नन्द के समान आदर्श पिता होने के साथ आदर्श पति भी हैं । "प्रियप्रवास" में कृष्ण के वियोग से दुःख यशोदा को वे हर पल आश्वासन देने में और सहारा देने में लगे रहते हैं[2] ।

---

1. प्रियप्रवास - सर्ग - 10, पृ.134
2. वही - पृ.सर्ग 7

नन्द के चरित्र का विवेचन करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक नन्द के चरित्र के साथ पूरा न्याय करके उनके आदर्श पिता तथा पति का रूप सशक्त बनाया है ।

उद्धव

कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद उनका संदेश लेकर आनेवाले विश्वस्त मन्त्री है उद्धव । पुराणों में चित्रित उद्धव तो बड़े तत्वज्ञानी, नीति कुशल, घमण्डी पण्डित हैं । लेकिन खड़ीबोली के कवियों ने उनको एक भिन्न रूप प्रदान करके नवीनता के साथ उन्हें उपस्थित किया है । गुप्तजी के उद्धव पण्डित एवं ज्ञान का प्रदर्शन करने पर भी एक सहृदय व्यक्ति हैं जो यशोदा एवं गोपियों के दुःख के अथाह को मापकर उसका निवारण करने का परिश्रम करते हैं[1] । इतना सब होने पर भी वे कृष्ण का दौत्य, लोकसेवा की आवश्यकता उन्हें समझाने का भी परिश्रम करते हैं[2] । एक कदम आगे बढ़कर हरिऔधजी के उद्धव भी एक ज्ञानी, नीतिकुशल किन्तु सहृदय मन्त्री का रूप प्रकट करते हैं । वे कृष्ण के दायित्वों, उनकी लोकसेवा करने की आवश्यकता को यशोदा तथा गोपियों को समझाने में समर्थ हो जाते हैं । राधा उनका संदेश स्वीकार करके लोकसेवा में व्यस्त रहती हैं[3] ।

अन्य पात्र

गुप्तजी ने अपने "द्वापर" में पौराणिक पात्रों जैसे बलराम, नारद, कुब्जा, उग्रसेन, अक्रूर, कंस, गोपियाँ, सुदामा आदि के चरित्रों को

---

1. द्वापर - पृ.161
2. वही - पृ.165
3. प्रियप्रवास - सर्ग-16, पृ.254-259

अत्यन्त संक्षिप्त रूप में चित्रित करने पर भी परम्परा के आवरणों को सुरक्षित रखते हुए युगीन माँग के अनुसार परिवर्तित किया है । इस कार्य में खड़ीबोली के कवियों में गुप्तजी अकेले हैं । गुप्तजी के बलराम रूढ़ि का विरोध करके युगानुसार चलने पर ज़ोर देनेवाले ओरोंमें नवयुवक का प्रतिनिधित्व करते हैं । कलहप्रियता के लिए चिरकाल से प्रसिद्ध नारद ऋषि को गुप्तजी ने इस प्रकार परिवर्तित किया है कि नारद अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए अपनी करनी का समर्थन करते हैं[1] । क्रूर और नृशंस अपने पुत्र कंस के सामने पौराणिक उग्रसेन जितने निस्सहाय थे, गुप्तजी ने इसका मर्मस्पर्शी शब्दों में वर्णन किया है[2] । उग्रसेन की निस्सहायता को अंकित करने के साथ कवि ने अपने पुत्र के अत्याचार को देखकर, पुत्रवात्सल्य को त्याग कर उनके विरुद्ध ललकारनेवाले उग्रसेन का चित्र भी उतारा है[3] । यह अत्यन्त उज्ज्वल बन गया है और उग्रसेन की महानता और नवीनता दिखाने में समर्थ भी है । क्रूर, घमण्डी तथा नृशंस पौराणिक राजा कंस की क्रूरता, नृशंसता तथा घमण्ड को गुप्तजी ने भागवत से एक कदम आगे बढ़कर अत्यन्त सजीवता और सफलता के साथ "द्वापर" में उतारा है । स्वयं को सबका एकमात्र नियन्ता माननेवाले वे अपने स्वार्थ की पूर्ति केलिए नन्हे, निष्कलंक देवकी के पुत्रों की हत्या करने में, देवकी-वसुदेव तथा अपने माँ-बाप को बन्दी बनाने में तनिक भी हिचकते नहीं क्योंकि उनकेलिए दयाभाव दुर्बलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं[4] । कृष्ण को मथुरा ले जाने केलिए आनेवाले कंस के मन्त्री अक्रूर के मन का जो अन्तर्द्वन्द्व गुप्तजी ने अत्यन्त सुचारु ढंग से अंकित किया है वह बिलकुल नवीन ही है । स्वभावतः दयाशील और मृदुल अक्रूर जब कंस के द्वारा क्रूर कर्म करने केलिए प्रेरित होते हैं तब कर्तव्य के आगे वे इसके लिए तैयार होने पर भी परस्पर विरुद्ध भावों से उनका मन दोलायमान रहता है । गुप्तजी ने इसका मार्मिक

---

1. द्वापर - पृ.78
2. वही - पृ.102,107
3. वही - पृ.109
4. वही - पृ.111,113,119

वर्णन किया है[1]। पुराणों में चित्रित कंस की कुबड़ी दासी कुब्जा के चरित्र को भी गुप्तजी ने अत्यन्त सहानुभूति एवं कोमलता के साथ खींचा है[2]। परंपरा से हटकर गुप्तजी ने कुब्जा के अनन्य प्रेम का स्वाभाविकता और सुन्दरता के साथ चित्रण किया है[3]। कृष्ण के प्रथम दर्शन से ही वे कृष्ण पर पूर्ण रूप से समर्पित रहने केलिए तरस रही है[4]। विरहाग्नि में तड़पनेवाली कुब्जा के उद्गार अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं[5]। कृष्ण और गोपियों के प्रेम को स्वाभाविकता प्रदान करने केलिए, उनकी अलौकिकता हटाने केलिए गुप्तजी ने प्रेम में व्यस्त गोपिकाओं को राधा की अनन्य सखियों का रूप दे दिया है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि पुराणों में चित्रित कृष्ण चरित्र संबन्धी पात्र आधुनिक युग में आकर युगानुकूल एवं नवीन चित्रित किये गये हैं।

मनु

मानवता के जनक मनु जयशंकरप्रसाद द्वारा विरचित "कामायनी" के नायक हैं और काव्य के कथा संचालन और उद्देश्य की प्राप्ति में वे आद्यन्त कार्यरत रहते हैं। उनका पूरा नाम वैवस्वत मनु है और प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मनु का चरित्र अत्यन्त व्यापक रूप में अंकित किया गया है। "कामायनी" के आमुख में महाकवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा हैकि आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है[6]। सर्वप्रथम हमें मनु के दर्शन ऋग्वेद में

---

1. द्वापर - पृ.130-131
2. वही - पृ.147
3. वही - पृ.153
4. वही - पृ.152
5. वही - पृ.158
6. कामायनी - आमुख - पृ.1

होते हैं, जहाँ वे ऋषि के रूप में अन्तः एवं बाह्य सुख-समृद्धि के लिए ईश्वर की स्तुति करते हैं।[1] अधिकांश पुराणों में वैवस्वत मनु को सातवें मन्वन्तर के मनु के रूप में उल्लिखित किया गया है और उन्हें श्राद्धदेव भी माना गया है।[2] इसके अलावा पुराणों में वैवस्वत मनु को प्रजापति, पृथ्वीपति, प्रथम-पाक-यज्ञ-कर्ता एवं सृष्टिकर्ता आदि कहा गया है। प्रसादजी ने पुराणों में चित्रित मनु के चरित्र की सभी विशेषताओं को स्वीकार करते हुए उन्हें नवीन रूप में उपस्थित किया है। सातवें मन्वन्तर के प्रवर्तक विवस्वान के पुत्र वैवस्वत मनु को "कामायनी" में प्रलयावशिष्ट, अग्निहोत्री एवं पाक-यज्ञ कर्ता, प्रजापति, द्रष्टा-व्यभिचारक तथा विचाराध्यक्ष के रूप में अंकित किया गया है। साथ ही मनु को मन के प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है तथा इसमें उन्हीं के माध्यम से मन की द्वन्द्व स्थितियों का विवेचन किया गया है। "कामायनी" में चित्रित मनु की चारित्रिक विशेषताओं का विवेचन आगे किया जायेगा।

देवता मनु

पौराणिक मनु के अनुकूल "कामायनी" में मनु के चरित्र के देवत्व का संकेत दिया गया है। इस काव्य के प्रारंभ में कवि ने शारीरिक गठन और सुदृढ़ता का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है।[3] जलप्लावन से नष्ट-भ्रष्ट देवजाति की विलासिता की ओर कवि ने चिन्ताग्रस्त मनु के माध्यम से प्रकाश डाला है।[4] प्रसादजी ने जलप्लावन की घटना भारतीय वेदों और पुराणों के आधार पर ही वर्णित की है, यद्यपि जलप्लावन की घटना संसार के सभी देशों के प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होती है।[5]

---

1. ऋग्वेद - मं॰8, अंक 4, सूक्त 27
2. मार्कण्डेय पुराण अ॰103, श्लो॰4, आग्नेय पु॰अ॰150, श्लोक 2,8
   वायु॰ उत्तरार्द्ध अ॰22, श्लो॰38, हरिवंश पु॰हरिवंश पर्व, अ॰9, श्लो॰8
   कूर्म प॰पूर्वार्द्ध अ॰51, श्लो॰23, ब्रह्मवैवर्त पु॰ प्रकृति खण्ड, अ॰54, श्लो॰61
3. कामायनी - पृ॰12 4. कामायनी - पृ॰18
5. आग्नेय पुराण अ॰368, श्लो॰1,2 कूर्म पु॰अ॰45, श्लो॰5,6,
   वायु प॰ अ॰1, श्लो॰143, ब्रह्म पु॰अ॰3, श्लो॰57

ऋषि मनु

आन्तरिक एवं बाह्य सुख-समृद्धि के लिए विश्वेश्वर की स्तुति करनेवाले मनु का चित्र वेदों और पुराणों में देखा जा सकता है । प्रसादजी ने भी ऋषितुल्य, ज्ञान-भण्डार के अक्षय कोश, विश्वेश्वर की स्तुति में लीन मनु का चित्र अंकित किया है । प्रलय से बचने के बाद मनु सभी प्राकृतिक शक्तियों पर शासन करनेवाले विराट सत्ता के अस्तित्व को मानकर ऋषियों की तरह अग्निहोत्र, पाकयज्ञ आदि में लीन हो जाते हैं[1] जीवन की नश्वरता, अमरत्व का मिथ्या दम्भ, मृत्यु की सत्यता और परिवर्तनशीलता आदि के सम्बन्ध में चिन्तित मनु के उद्गार उनके असीम ज्ञान का परिचय ही प्रदान करते हैं[2] ।

श्रद्धादेव

अनेक पुराणों जैसे मार्कण्डेय पुराण, आग्नेय पुराण, वायु पुराण, हरिवंश पुराण, कूर्म पुराण आदि में मनु को श्रद्धादेव माना गया है । "कामायनी" की श्रद्धा काम की पुत्री गन्धर्व देश गान्धार की निवासिनी है[3] । लेकिन कतिपय पुराणों में श्रद्धा को काम की माता माना गया है[4] । अनन्त सौन्दर्यमयी श्रद्धा के संपर्क में आकर मनु का ऋषि-तुल्य जीवन परिवर्तित हो जाता है । वे श्रद्धा पर आसक्त हो जाते हैं । श्रद्धा नारी का सर्वस्व भाव लेकर उनके जीवन में प्रविष्ट होती है[5] । श्रद्धा और मनु प्रणय सूत्र में बंधकर यज्ञादि कर्मों को सम्पन्न करते हुए गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट होते हैं ।

---

1. कामायनी - पृ.40
2. वही - पृ.32,33
3. वही - पृ.46
4. वायु पु.पूर्वार्द्ध अ.10, श्लो.33, कूर्म पु.अ.8, श्लोक.20
5. कामायनी - पृ.67

श्रद्धा जैसी पवित्र नारी के संपर्क में रहने पर भी "कामायनी" के मनु में उनका चंचल, कामुक, वासनाप्रिय, हिंसक तथा स्वार्थ पूर्ण पूर्व व्यक्तित्व झलक जाता है। इतिहास और पुराणों में मनु के इस प्रकार के रूप के दर्शन नहीं होते हैं। लेकिन कामायनी के मनु के चरित्र में मानवगत सभी दुर्बलताएं देखी जाती है। वे मांस खाने के लिए यज्ञ की आड में आकुलि और किलात के परामर्श से श्रद्धा के पालित पशु की बलि दे देते हैं। इन कार्यों में श्रद्धा का विरोध उन्हें अच्छा नहीं लगता[1]। मनु इन्द्रियजन्य अभिलाषाओं की तृप्ति को ही जीवन का ध्येय मान लेते हैं[2] और वे गर्भवती श्रद्धा से अपनी उद्दाम काम-वासना की तृप्ति चाहते हैं[3]। उनका अहं और स्वार्थ इतना प्रबल है कि वे संपूर्ण सृष्टि पर अपना अधिकार चाहते हैं। अपनी सन्तान की चिन्ता में खोई श्रद्धा को देखकर उन्हें विरक्ति का अनुभव होता है और वे परम पवित्र श्रद्धा को त्याग कर चले जाते हैं[4]।

इडा-व्यभिचारक मनु

पुराणों में इडा-व्यभिचारक मनु का चित्र, विस्तृत रूप में न मिलने पर भी, इडा और मनु के द्वारा उन पर किये गये अत्याचार का उल्लेख तो अवश्य मिलता है। हरिवंश पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णुपुराण तथा पद्म पुराण में इडा को मनु के यज्ञ से उत्पन्न दुहिता माना गया है[5]। पुत्री होने पर भी मनु के इडा के ऊपर की कुदृष्टि और देवीशक्तियों के विरोध का उल्लेख इन में किया गया है। लेकिन एक पग आगे बढ़कर प्रसादजी ने

---

1. कामायनी - पृ॰125
2. वही - पृ॰138
3. वही - पृ॰144
4. वही - पृ॰162
5. हरिवंश पु॰अ॰10,श्लो॰3,7 ब्रह्माण्ड पु॰ अ॰60,श्लो॰3,17
   विष्णु पु॰ अंश 4, अ॰1, पद्म पु॰ सृष्टि खण्ड अ॰8, श्लो॰75-76

दुर्बलतायुक्त मनु का जीता जागता चित्र उतारा है । "कामायनी" में इडा मनु की पुत्री नहीं मानी गयी है । वे सारस्वत प्रदेश की रानी है । श्रद्धा से रूठकर सारस्वत प्रदेश पर आनेवाले मनु वहाँ की रानी इडा के रूप-सौन्दर्य पर आकृष्ट होकर सारस्वत प्रदेश के शासन का संचालन करते हैं[1] । लेकिन उनकी स्वाभाविक दुर्बलता, विलास वासना फिर एकदम जाग उठने के कारण, अपने मन को नियन्त्रित करने में असमर्थ होने के कारण, वे किसी न किसी प्रकार अपनी कामेच्छा की तुष्टि चाहते हैं । कामातुर मनु के सामने न तो भविष्य टिक पाता है और न अतीत । वे मात्र वर्तमान के सुखों को अपने में समेट लेना चाहते हैं और इडा पर बलात्कार करते हैं । फलतः उन्हें समग्र प्रजा के विरोध और घृणा का सामना करना पड़ता है और वे युद्ध में घायल होकर किसी न किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर पाते हैं[2] ।

<u>शिवाराधक मनु</u>

त्रिपुर तथा त्रिपुर-भेदन का उल्लेख वेदों तथा पुराणों में मिल जाता है । त्रिपुर-भेदन होने पर शिव की विराट सत्ता का अनुभव करनेवाले आनन्दमग्न मनु का उल्लेख पुराणों तथा वेदों में किया गया है[3] । लेकिन "कामायनी" में प्रसादजी ने श्रद्धा स्मित-प्रकाश से तीनों लोकों जैसे इच्छा, कर्म और ज्ञान के समन्वय से शिव दर्शन करने में समर्थ, आनन्दमग्न मनु का उज्वल चित्र खींचा है । प्रजा के प्रबल विरोध से मनु की उत्कट अहंभावना नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है । और श्रद्धा के प्रयत्न से भौतिकता प्रेमी मनु में एक साथ परिवर्तन हो जाता है । वे अपने अपराधों को जानकर पश्चाताप विवश हो जाते हैं[4] । श्रद्धा के संपर्क से वे संसार से पराङ्मुख होकर निवृत्ति मार्ग के

1. कामायनी - पृ.189
2. वही - पृ.210
3. मत्स्य पुराण अ.129, श्लोक 33-34, श्रीमद्भागवत स्कन्ध-7,अ.10
4. कामायनी - पृ.232 -236

अनुगामी हो जाते हैं और भौतिकता का आवरण दूर फेंककर आध्यात्मिक मार्ग को अपना लेते हैं । वे अनुभव करने लगते हैं कि जिस सुख की प्राप्ति केलिए वे भटक रहे हैं, वह क्षणिक और नश्वर है, उसके पीछे भटकना जीवन के महत् उद्देश्य की उपेक्षा करना है । वे श्रद्धा के साथ जीवन के उत्कर्ष पर चढ़ने लगते हैं और श्रद्धा इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय करके मनु के जीवन में समरसता का संचार करती है और मनु अपने-पराये की भेद-बुद्धि से ऊपर उठकर जीवन-वसुधा की समतल भूमि में पहुँच जाते हैं । जहाँ उनके अहं का इदम में पूर्ण समावेश हो जाता है, समस्त चराचर उनके अंग हो जाते हैं, जड-चेतन में एक ही चेतनता विलास करती हुई प्रतीत होने लगती है[1] । यहीं आकर मनु को अखण्ड आनन्द का अनुभव होता है और उनके परिवार के सारे लोग भी उनके साथ आनन्द को प्राप्त होकर अपना जीवन सफल बनाते हैं ।

प्रसादजी ने बुद्धि और हृदय को सम्बल देनेवाली, आत्मा की चेतन शक्ति मन का प्रतीक रूप भी मनु को दिया है । "कामायनी" में कवि ने यही तथ्य उद्घाटित किया है कि मनु रूपी मन कभी हृदय माने श्रद्धा की ओर अग्रसर होता है तो कभी बुद्धि माने इडा का आश्रय लेता है और इस प्रकार अनेक भावों की उद्भावनाएं कर आत्मा को सुख दुःख का भागी बनाता है

"कामायनी" के मनु के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि उनका चरित्र आदर्श और यथार्थ की समन्वित भूमि पर अवतरित हुआ है । उनके चरित्र-विकास में कवि ने मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का पूर्ण परिचय दिया है । मनु के चरित्र में जिस निराशा, वासनाजन्य कुण्ठा, अहंवादिता और पराजयवादी प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है उनके कारण वे यथार्थ की भूमिका पर आसीन होकर सामान्य मानव की श्रेणी में आते हैं ।

1• कामायनी - पृ•295-297

इन्हीं दुर्बलताओं के कारण उनका चरित्र युगानुरूप और अनुकरणीय बन जाता है । उनके चरित्र का दूसरा पक्ष वह है जिसमें उन्हें निवृत्तिमार्गी किंवा आनन्दपथ के अन्वेषक के रूप में चित्रित किया गया है । काव्य के अन्तिम तीन सर्गों में मनु का चरित्र अत्यन्त उदात्त बन गया है जो उन्हें महान चारित्रिक गरिमा प्रदान करता है ।

श्रद्धा

"श्रद्धा" कामायनी की नायिका है और महाकाव्य का नामकरण भी उन्हीं के नाम पर किया जाता है । वे काम गोत्र की बालिका हैं, इसलिए उन्हें कामायनी संज्ञा भी दी जाती है । पुराणों में श्रद्धा का व्यक्तित्व कामायनी की श्रद्धा के समान विस्तृत और व्यापक रूप में नहीं उतारा गया है । लेकिन श्रद्धा का मनु की पत्नी होना निगमागमसम्मत ही है क्योंकि ~~कामायनी~~ कामात्मजा के बदले सूर्यवंशी के रूप में चित्रित करने पर भी मनु को श्रद्धा देव माना गया है[1] । मार्कण्डेय, आग्नेय, वायु, हरिवंश कूर्म ब्रह्मवैवर्त पुराणों में भी श्रद्धा को मनु की पत्नी के रूप में उल्लिखित किया गया है[2] । वैदिक साहित्य में श्रद्धा का भावमूलक विवेचन ही अधिक हुआ है । उनके वैयक्तिक स्वरूप का पर्याप्त उल्लेख नहीं मिलता है[3] । हरिवंश पुराण में श्रद्धा को माता के समान सब धर्मों की हितकारिणी और लोकद्वय में मनुष्यों की सिद्धि प्रदायिनी कहा गया है[4] । "कामायनी" की श्रद्धा का स्वरूप प्रसाद जी की कल्पना शक्ति की देन है और उन्होंने भारतीय ग्रन्थों के आधार पर श्रद्धा पात्र की कल्पना की है । ऋग्वेद से लेकर आगम पुराणों तक श्रद्धा मनोभाव एवं श्रद्धा पात्र संबन्धी जितनी विवेचनाएं हैं, उन सब को संकलित करके उन्होंने कामायनी या श्रद्धा के रूप में एक सच्ची आदर्श नारी का सजीव चित्र अंकित

1· ऋग्वेद मन्त्र - प·अ·1, सूक्त-2
2· मार्कण्डेय पु·अ·103, श्लोक 4
3· कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन - द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ·112
4· हरिवंश पु· ~~अ~~· अ·3, श्लो·15-16

किया है । उनकी श्रद्धा का चरित्र त्याग, बलिदान, तपस्या, सत्य, विश्वास आदि महान गुणों से देदीप्यमान रहता है । "कामायनी" में चित्रित श्रद्धा की चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण आगे किया जायेगा ।

त्याग की मूर्ति

श्रद्धा का समग्र चरित्र एक ऐसी आदर्श भारतीय नारी का चरित्र है जिसका निर्माण दया, माया, ममता, माधुर्य और अगाध विश्वास आदि उदात्त गुणों से किया गया है । निराशा के अन्धकार में भटकनेवाले मनु को उन्होंने उभार कर प्रकाश का सबल प्रदान किया और अगाध दया, ममता, मधुरिमा एवं विश्वास के साथ मनु के चरणों में सदैव के लिए आत्म समर्पण कर लिया तथा भावी मानव समाज के कल्याण एवं विकास के लिए उन्हें प्रेरणा दी और तदर्थ आजीवन सहयोग भी दे दिया[1] ।

पतिपरायणता

मनु द्वारा श्रद्धा को पत्नी रूप में स्वीकार कर लिये जाने पर वे एक पतिपरायण धर्मपत्नी का आदर्श उपस्थित करती है । उनमें एक नव विवाहिता वधू की सी लज्जाशीलता, सरलता, कोमलता तथा आकर्षण है[2] । साथ ही साथ वे एक कर्तव्यनिष्ठ साध्वी की भाँति मनु को अपना कर्तव्य पथ सुझाती हैं । पति के अनुराग की एकमात्र उपासिका होने पर भी श्रद्धा मनु की कामवासना का अंधानुकरण नहीं करती । वे पति केलिए अपना जीवन उत्सर्ग कर चुकी है । अतः पति के उचित अनुचित कार्यों का निरन्तर ध्यान रखती है ।

---

1. कामायनी - पृ.60-65
2. वही - पृ.105-107

वे मनु पर पडे हुए आसुरी प्रभाव से रुष्ट होकर, अपने रमणीय उपदेशों द्वारा उन्हें हिंसा कर्म से विरक्त बनाती हैं । पशु-वध तथा सुरापान आदि कुकृत्यों से वे उन्हें बचाती है तथा सुखी जीवन व्यतीत करने का उचित सलाह देती हैं[1]। इस प्रकार वे मनु की सच्ची सहधर्मिणी हैं, जो पति को पथभ्रष्ट होते देखकर उन्हें सत्पथ पर लाने का हर संभव प्रयास करती हैं ।

श्रद्धा की पतिपरायणता का उज्वल रूप उस समय और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है जब वे स्वप्न में मनु को सारस्वत नगर की क्रुद्ध जनता से घायल होते देखती हैं । वे पुत्र के साथ मनु की खोज में निकल पड़ती हैं[2]। और उनकी सेवा में प्राण पण से जुट जाती है । उनमें अपने परस्त्रीगामी एवं आसन्न गर्भावस्था में छोड़कर भाग जानेवाले पति के प्रति क्रोध एवं घृणा के भाव उदित नहीं होते । वे इतनी सहिष्णु हैं कि मनु के सब कुकृत्यों के बारे में सुन और देख कर भी मनु को सान्त्वना प्रदान करती हैं[3] तथा मनु जब कुछ स्वस्थ होकर वहाँ से भी दूर चले जाते हैं तब श्रद्धा दुबारा उनकी खोज में निकल पड़ती हैं[4]। वे मानवता के भाग्योदय एवं समरसता के प्रचार केलिए मानव को इडा के पास छोड़कर मनु के साथ अखण्ड आनन्द की उपलब्धि केलिए कैलास की ओर प्रस्थान करती हैं । अन्ततः श्रद्धा मनु के आनन्द पथ की प्रदर्शिका बन कर उन्हें भगवान शिव के ताण्डव नृत्य का दर्शन कराती हैं और इच्छा, ज्ञान व क्रिया के त्रिपुर का समन्वय करके मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कराती हैं । त्रिपुर समन्वय के कारण समरसता के सात्त्विक भाव का संचार मनु के हृदय में होता है । वे उन्हें राग-द्वेष से मुक्त कराके सच्चे सुख की प्राप्ति कराती है[5]।

---

1. कामायनी - पृ.137-140-141
2. वही - पृ.219-220
3. वही - पृ.223
4. वही - पृ.251
5. वही - पृ.255-392

आदर्श माता एवं गृहिणी

श्रद्धा के चरित्र में नारी का मातृत्व रूप भी सुन्दर ढंग से अंकित किया गया है। गर्भिणी श्रद्धा का भावी संतति केलिए कुटीर बनाना, पशुओं के ऊन से वस्त्र केलिए तकली पर सूत कातना, पुआलों का छाजन, और बेतसी लता के झूले का निर्माण करना श्रद्धा के मातृसहज प्रेम का प्रमाण है[1]। जब मनु श्रद्धा को छोड़कर चले जाते हैं तब विरह-व्यथा में तड़पते समय भी वे अपने पुत्र के लालन-पालन में समय खोज निकालती हैं। वे पुत्र को पिता का प्रतिनिधि मानकर बड़े लाड़-चाव के साथ दुलार करती है।

श्रद्धा एक आदर्श गृहिणी भी हैं। वे एक आदर्श गृहिणी के समान पशु पालन और कृषि कर्म आदि कार्यों में संलग्न रहती हैं। उनके गृह विधान को देखकर मनु चकित हो जाते हैं[2]।

लोककल्याण की भावना

मनु जब सारस्वत नगर से भी चुपचाप चले जाते हैं तब श्रद्धा का अत्यन्त भव्य चरित्र हमारे सम्मुख आता है। जब कुमार उस निर्जन स्थान को छोड़कर जन्मस्थल को जाने की आकांक्षा प्रकट करते हैं तब श्रद्धा यह कहकर उन्हें समझाती है कि यह सारा विश्व ही मेरा घर है, इसमें उन्मुक्त अपार नीलाकाश छत के रूप में घिरे रहते हैं, यहाँ सुख दुःख प्रत्येक पल पर आते जाते रहते हैं। यहाँ वायु भी बच्चे के समान खेलती हुई बहती रहती है और कान्ति नक्षत्र झिलमिल-झिलमिल करते हुए जुगनू की भाँति चमकते रहते हैं।

---

1. कामायनी - पृ.157
2. वही - पृ.158

इतने उदार और मनमोहक विश्व को श्रद्धा अपना मानती है[1]; और इसके कल्याण में लीन रहने की आतुरता प्रकट करती है। इडा के साथ का उनका आचरण भी अत्यन्त उदार और भव्य है। जब इडा क्षमा याचना करती हुई श्रद्धा के सम्मुख अपनी सारी दुर्बलता प्रकट कर देती है तब वे उनको समझाती हैं और अपने पुत्र तक को उनकी सेवा में छोड़कर उन दोनों को शासन कार्य चलाने का आदेश देती हैं[2]। लोक कल्याण के लिए अपने इकलौते पुत्र तक का उत्सर्ग करने की उनकी यह उदारता अत्यन्त सराहनीय ही है।

आनन्द की पथ-प्रदर्शिका

प्रसादजी ने अपने काव्य की नायिका की महिमा का दिग्दर्शन कराके जनजीवन को सुधारने का परिश्रम किया है। उपनिषदों एवं पुराणों में त्रिपुर भेदन का जो कार्य विष्णु या शिव द्वारा किया गया है[3], वह कार्य कामायनी में इच्छा कर्म और ज्ञान के समन्वय से श्रद्धा द्वारा कराके प्रसादजी ने अपनी नायिका की महानता की पराकाष्ठा का परिचय ही प्रस्तुत किया है। श्रद्धा के सात्त्विक भाव एवं पवित्र गुणों की प्रेरणा से मनु के साथ साथ इडा तथा उनकी समस्त प्रजा और मानव भी अखण्ड आनन्द का अनुभव करते हैं। उनके उदार चरित्र एवं विश्व प्रेम के प्रभाव से सारा विशृंखलित कुटुम्ब हिम गिरी के उच्च शिखर पर पुनः एकत्र हो जाता है और सर्वत्र अखण्ड आनन्द व्याप्त हो जाता है।

'कामायनी' की श्रद्धा के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि कवि ने श्रद्धा के माध्यम से आदर्श भारतीय नारी की साकार प्रतिमा ही प्रस्तुत की है। यहाँ की श्रद्धा दया, ममता आदि गुणों की साकार

---

1. कामायनी - पृ.242-244
2. वही - पृ.249-251
3. श्रीमद्भागवत स्कन्ध 7, अ.10, श्लो.53, मत्स्य पु.अ.129

मूर्ति, सच्ची प्रेमिका, आदर्श पत्नी, मातृत्व की अनुपम विभूति, प्रेम और त्याग की अनुपम आदर्श देवी है । उसके चरित्र का सबसे उल्लेखनीय गुण उसका लोककल्याणकारी रूप है ।

इसके अलावा कवि ने "कामायनी" में श्रद्धा के चरित्र की प्रतीकात्मक व्यंजना भी की है । प्रतीक रूप श्रद्धा नारी हृदय की संपूर्ण उदात्त वृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है । इस प्रकार श्रद्धा को एक भावना भी बतलाई गयी है, जिसके बिना मनुष्य जीवन निरर्थक है, क्योंकि वही ज्ञान प्रदान करती है, वही विश्वास को उत्पन्न करती है, वही आस्तिक्य बुद्धि स्वरूपा है और वही आनन्द की प्राप्ति कराती है । आगम तथा निगम सभी ग्रन्थों में इस श्रद्धा नामक भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है । इन ग्रन्थों से ही प्रेरणा लेकर प्रसादजी ने मानव जीवन में इसका संचार करने के लिए श्रद्धा की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की है ।

इडा

"कामायनी" के प्रमुख पात्रों में इडा का भी एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इडा का वर्णन ऋग्वेद तथा पुराणों में मिल जाता है । हरिवंश पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण तथा पद्म पुराण में इडा को मनु के यज्ञ से उत्पन्न दुहिता माना जाता है[1] । प्रसाद जी ने इडा के चित्रण में वैदिक और पौराणिक साहित्य से अधिक अपने चिन्तन, मनन और कल्पना शक्ति से काम लिया है । उन्होंने इडा को सारस्वत प्रदेश की रानी के रूप में चित्रित किया है और उसके माध्यम से आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से

1· हरिवंश पु·अ·10, श्लोक·3-17, ब्रह्माण्ड पु·अ·60 श्लो·3-17
विष्णु पु· अंश-4, अ·1, पद्म पु·सृष्टि खण्ड अ·8, श्लो·75-76

विलासिता की मोहक शक्ति

इडा मनु को अपने रूप सौन्दर्य की मोहक किरणों द्वारा आकृष्ट कर लेती है और उन्होंने मनु को केवल प्रसार की भौतिक उन्नति की ही प्रेरणा नहीं दी है, अपितु मनु को मदिरा के चषक पर चषक पिलाकर विलासिता की ओर उन्मुख किया है,[1] जिसका परिणाम यह निकलता है कि विलासी मनु अपनी तीव्र पिपासा शान्त करने केलिए इडा के साथ ही अनैतिक आचरण करने केलिए उद्यत हो जाते हैं ।

कोमल एवं उदार नारी

"कामायनी" की इडा अत्यन्त कोमल एवं उदार नारी है । वे मनु के दुर्व्यवहार एवं बलात्कार से क्षुब्ध तो होती है, परन्तु एक आधुनिका की भांति उन्हें क्षमा कर देती है[2] और स्वयं को उनकी शुभकांक्षिणी कहकर उन्हें समझाती है । मनु की खोज में लगी श्रद्धा की व्यथा सुनकर वे पानी पानी हो जाती है । वे आंसुओं के साथ अपनी दुर्बलताओं को निस्संकोच श्रद्धा के सामने रखकर उनसे क्षमा याचना मांगती है[3] । श्रद्धा के उपदेश के अनुसार वे हृदयवादी पद्धति पर शासन सूत्र संभालती है, जिससे सारस्वत प्रसार की ऐसी श्रीवृद्धि होती है कि फिर कभी अनिष्ट की आशंका नहीं होती ।

आनन्द-पथ-गामिनी

बुद्धितत्व को प्रधानता देनेवाली इडा अन्त में श्रद्धा के उपदेश से हृदय तत्व को प्रधानता देकर कोमल बन जाती है और कुमार के साथ

---

1. कामायनी - पृ.101
2. वही - पृ.215-216
3. वही - पृ.244-246

समरसता की पद्धति से शासन करती हुई सर्वत्र सुख शान्ति का संचार करती है और अपनी प्रजा का एक कुटुम्ब बनाकर कैलाश गिरि की यात्रा करती है।[1] वे समस्त प्रजा को मनु-श्रद्धा द्वारा स्थापित शान्त तपोवन का दर्शन कराती हुई अनन्त आनन्द की उपलब्धि कराती है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त होकर वे भौतिकता के संकुचित दायरे से ऊँचे उठकर अपनी प्रजा सहित अखण्ड आनन्द की अधिकारिणी बन जाती है।

समग्र रूप से विचार करने पर इडा का व्यक्तित्व श्रद्धा के बाद सबसे अधिक प्रखर और प्रभावशाली रहा है। प्रारंभ में बुद्धिवादिनी नारी के रूप में आनेवाली इडा अन्त में श्रद्धा के मार्ग-निर्देश पर चलकर मानवता के विकास केलिए सचेष्ट होती है। उसके चित्रण में प्रसाद ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर बुद्धिवादिनी प्रगार भटकी हुई नारी का अत्यन्त प्रभावशाली रूप अंकित किया है।

इडा को प्रतीकात्मक रूप में उपस्थित कराके प्रसाद जी ने यह भी प्रमाणित करने का परिश्रम किया है कि श्रद्धारहित बुद्धि संकट और संघर्ष में उलझ जाती है। श्रद्धा समन्वित होने पर ही बुद्धि को सफलता मिल जाती है। कवि ने आधुनिक युग को समन्वय की भावना का महत्व बतलाने केलिए इडा की कल्पना की है। कवि ने इडा के रूप में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति में निष्णात बुद्धि के अतिवाद का प्रचार करनेवाली नारी का ही चित्रण किया है।

मानव

मनु और श्रद्धा के पुत्र कुमार कामायनी का एक गौण पात्र रहा है। वेदों और पुराणों में उनके चरित्र का उल्लेख मिल जाता है।

---

1. कामायनी - पृ.286

उनके माध्यम से कवि ने मानवता का विकास प्रदर्शित किया है । कामायनी में कुमार का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त है लेकिन स्वाभाविक और संयत है । कुमार के चरित्र का विवेचन आगे किया जाएगा ।

मातृस्नेह

कुमार के चरित्र की सब से उल्लेखनीय विशेषता उनका मातृस्नेह है । वे माता के परम दुलारे हैं और मनु के चले जाने पर विरह-विदग्धा माँ को परम शान्ति प्रदान करते हैं । वे दुःखिता माँ को मीठी मीठी बातें कहकर प्रसन्न करते रहते हैं । वे हमेशा माँ के दुःख के साथी हैं । जब अशुभ स्वप्न के उपरान्त श्रद्धा मनु की खोज में निकलती है तो मानव भी उनके साथ जाते हैं । उनका मातृस्नेह उस समय और भी अधिक स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होता है, जब मनु के चले जाने पर व्यथित माँ को वे सान्त्वना देने में लग जाते हैं[1]। जब श्रद्धा उन्हें इड़ा को सौंपकर मनु की खोज केलिए पुनः जाती है तब उनका ममत्व पुनः जाग्रत हो जाता है । वे कहते हैं कि हे जननि, तू मुझसे मुख न मोड़, मैं तो सदा तेरी आज्ञा का पालन करता रहा हूँ और सदा मरूँ या जीऊँ, मैं तेरे ही क्रोड का आश्रय चाहता हूँ[2]। लेकिन जब श्रद्धा उन्हें इड़ा के साथ सारस्वत प्रदेश के शासन करने का आदेश देती है तो वे उनके आदेशानुसार इड़ा के सहयोग से सारस्वत प्रदेश को पुनः श्रीसंपन्न बना देते हैं । अन्त में वे कैलास पहुँचकर इड़ा एवं प्रजा के साथ श्रद्धा एवं मनु द्वारा प्रसारित शान्त आनन्द में निमग्न हो जाते हैं ।

पितृप्रेम

कुमार मातृभक्त के समान पितृभक्त भी है । वे श्रद्धा के साथ पिता की खोज मे चले जाते हैं । पिता से मिलने पर वे उनसे जाकर लिपट जाते

1· कामायनी - पृ·242

2· वही - पृ·251

और आत्मीय भाव से उनका उपचार करने में लग जाते हैं[1]। मानव के इस ममत्व से मनु भी द्रवित होकर उनकी प्रशंसा करते हैं, साथ ही वे उन्हें सुखी रहने का आशीर्वाद भी देते हैं। मानव का पितृस्नेह उस समय और भी मुखर हो जाता है जब मनु सब को छोड़कर चले जाते हैं तब वे अशान्त होकर "पिता कहाँ" कहकर इधर उधर उनकी खोज करते हैं।

कैलास-यात्रा के समय अभूतपूर्व तेज, शौर्य आदि पूर्ण रूप से अभिव्यक्त किया जाता है।

कुमार के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह देखा जा सकता है कि कुमार का चरित्र मनु की मननशीलता, श्रद्धा की उदार वृत्तियाँ तथा इड़ा के ज्ञान-विज्ञान संबन्धी बौद्धिक गुणों से ओतप्रोत है। वे अपने इन तीनों गुणों के समन्वय से सारस्वत नगर को पुनः समृद्धिशाली बनाते हैं। उनके माध्यम से कवि ने समन्वय भावना तथा वैयक्तिकता के विकसित सामूहिक विकास का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया है।

<u>निष्कर्ष</u>

विवेच्य काल के खड़ीबोली के काव्यों में चित्रित अन्य पुराणों के पात्रों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिकांश पौराणिक पात्र परिवर्तन के शिकार बन गये हैं। द्विवेदी-युग के कवि गुप्तजी ने तथा हरिऔध जी ने प्रत्येक पात्र के परंपरागत गुणों को सशक्त बनाने के साथ युगीन माँग के अनुसार उनको नवीन आलोक भी प्रदान किया है। उदा: देखिए नवोत्थान के युग में साँस लेनेवाले गुप्तजी के अधिकांश पात्र विशेषतः देवकी, वसुदेव, बलराम आदि क्रान्ति के सन्देशवाहक हैं और इनके माध्यम से

1· कामायनी - पृ·224

क्रान्ति तथा नारी जागरण की आवश्यकता की ओर संकेत मिलता है। गोपियाँ तथा राधा की सौत के रूप में मथुरा कुब्जा आदि के चरित्र को परिवर्तित करके कवि ने एक ओर कृष्ण चरित्र की अलौकिकता को परम्परागत परकीयात्व की भावना का भी निवारण किया है। एक ओर कवि श्रीकृष्ण चरित्र की अलौकिकता को हटाकर मानवीय आकार प्रदान करते हैं तो कभी कभी वे अपनी वैष्णव भक्ति की अधिकता के कारण स्वयं इस उलझन में पड जाते हैं और कृष्ण की अलौकिकता की अभिव्यक्ति करते हैं। इसी प्रकार राधा को भी वे कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति से बढकर समाज सुधारिका और लोकसेविका का पद प्रदान करते हैं। हरिऔधजी ने विश्व कल्याण में रत समाजसुधारक एवं लोकसेविका का पद क्रमश: कृष्णऔर राधा को प्रदान करके उनकी अलौकिकता को हटा दिया है। ये दोनों कवि नन्द और यशोदा के परम्परागत गुणों को सामान्य बना देते हैं तो कृष्ण के विश्वस्त सन्देशवाहक उद्धव के चरित्र को परिवर्तित करके उनके द्वारा शुष्क ब्रह्मवाद या तत्वज्ञान का उपदेश न देकर जाति-हित एवं विश्व प्रेम का सन्देश प्रदान करते हैं।

श्री॰ जयशंकर प्रसाद ने "कामायनी" में अत्यन्त भव्य और उदात्त ऐतिहासिक पात्र मनु का आदर्श और यथार्थ समन्वित रूप उपस्थित करके उनके चरित्र को सबकेलिए अनुकरणीय बना दिया है। इसी प्रकार नारी-महत्व को उद्घोषित करने केलिए पुराणों में उल्लिखित श्रद्धा का अत्यन्त भव्य और मनमोहक चित्र उपस्थित किया है। साथ ही इडा के चरित्र को भी अत्यन्त विशद रूप में अंकित करके बुद्धि के अतिवाद से ग्रस्त वर्तमान वैज्ञानिक युग की असफलता की ओर इशारा किया है। इन तीनों चरित्रों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से कवि ने जीवन में सफलता पाने के लिए मनु के दो पक्ष - हृदय और बुद्धि - के समन्वय की आवश्यकता पर भी बल दिया है।

धर्मवीर भारती ने "कनुप्रिया" में राधा के माध्यम से नारी की महत्ता भी उद्घोषित की है । इस केलिए उन्होंने मात्र कृष्ण की केलिसखी के रूप में अभिव्यक्त पौराणिक राधा के चरित्र को आधुनिक रोमान्टिक नारी की जैसी कृष्ण की सखी, सहचरी, [illegible], केलिसखी, मित्र, माँ आदि सभी के दायित्वों को वहन करनेवाली के रूप में उपस्थित किया है । कृष्णके औद्योगिक जीवन इतिहास निर्माणके कार्यों भी सहायता देने केलिए नायिका राधा के माध्यम से पुरुष के व्यक्तित्व निर्माण के साथ साथ उनके औद्योगिक जीवन में भी सहायता देनेवाली आधुनिक नारी की महत्ता प्रस्फुटित की गयी है ।

अष्टम अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पौराणिक पात्र - एक मूल्यांकन

अष्टम अध्याय

खड़ीबोली हिन्दी काव्य के पौराणिक पात्र - एक मूल्यांकन

भारत के पौराणिक वाङ्मय भारतीय संस्कृति और साहित्य की चिरन्तन निधि हैं। भारतीय मनीषा के विविधोन्मुखी चिन्तन और चेतना की सुन्दर, सुव्यवस्थित, संपूर्ण और सर्वग्राह्य अभिव्यक्ति पुराण साहित्य में मिल जाती है। ये ज्ञान राशि के अनन्त स्रोत हैं और परवर्ती साहित्यकारों केलिए उपजीव्य रहे हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ और "काव्यादर्श" के प्रणेता दण्डी ने एक स्वर से प्रबन्धकाव्यों के कथानक के प्रेरणास्रोत के रूप में ऐतिहासिक पात्रों और कथाओं का महत्व प्रतिपादित किया है -

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् [साहित्य दर्पण - विश्वनाथ]
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् [काव्यादर्श - दण्डी]

भारतीय साहित्यकारों ने आरंभ से ही इस अमूल्य ज्ञान सामग्री का समुचित प्रयोग किया है। हिन्दी का आधुनिक साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। विवेच्य काल के करीब पच्चीस महत्वपूर्ण खड़ीबोली के प्रबन्धकाव्यों का प्रेरणास्रोत पौराणिक वाङ्मय ही रहा है। खड़ीबोली के कवियों ने पुराणों से

वस्तु ग्रहण करके, युगीन परिस्थितियों, सामाजिक वातावरण और तत्कालीन जीवनादर्शों के अनुरूप उन्हें परिवर्तित तथा परिवर्द्धित किया है । आधुनिक काल के द्विवेदी युग के कवियों ने अतीत वैभव का गौरव गान करके सुप्त भारत वासियों को नया मार्ग, नया उत्साह, नई दिशा तथा नई ज्योति प्रदान करने का परिश्रम किया है । प्रगतिवादी कवियों ने अतीत की सामग्री को जनता और समाज की दृष्टि से परख कर, वैज्ञानिक और तर्क सम्मत दृष्टि से उसकी जाँच कर, जनता और समाज के कल्याण केलिए उसका प्रयोग किया है । इस सम्बन्ध में प्रकाशचन्द्र गुप्त का कहना है कि "अतीत से सीख लेते हुए वह नवनिर्माण का आकांक्षी है, पुनरुत्थान का नहीं"[1] । प्रयोगवादी और नये कवियों ने वर्तमान जीवन की जटिल स्थितियों और संश्लिष्ट मनोभावों की व्यंजना केलिए अपनी कविता में पौराणिक प्रतीकों और कथा प्रसंगों का व्यापक प्रयोग किया है । पुनरुत्थानवादी कवियों की भाँति नये कवि ने इतिहास और पुराण में मात्र सांस्कृतिक गौरव की खोज नहीं की, बल्कि उन्होंने नयी दृष्टि और संवेदना के माध्यम से युग की जटिल स्थितियों को परिभाषित करने का परिश्रम किया है । नये कवि ने इतिहास और पुराण के उन कथाप्रसंगों के माध्यम से वर्तमान व्यक्ति और समाज जीवन में व्याप्त घुटन, कुण्ठा, सन्देह और दिशाहीनता की मन:स्थितियों की व्यंजना की है । बाबू गुलाब राय ने आधुनिक युग में लिखे गए प्रबन्धकाव्यों की इसी विशेषता का उल्लेख करते हुए लिखा हैकि इस युग में इतिहास पुराणों से सम्बन्धित कुछ महाकाव्य भी लिखे गए हैं, किन्तु इनमें नवीन विचारधाराओं का समावेश हुआ है । इन महाकवियों में प्राचीन और नवीन का अपूर्व समन्वय है । ये इस बात को प्रमाणित करते हैं कि साहित्य चिर नवीन भी है और चिर पुरातन भी[2] ।

1• प्रगति और परम्परा - प्रकाशचन्द्र गुप्त
2• काव्य विमर्श - बाबू गुलाब राय - पृ•287

खड़ीबोली हिन्दी काव्य अपने में उपर्युक्त कथन का साक्षी रहा है । इस युग के प्राय: सभी कवियों ने प्राचीन आधार पर नये भवन खड़ा करने का प्रयत्न किया है । द्विवेदी युगीन कवियों से लेकर यह लंबी परम्परा शुरू होती है । स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भी इस क्षेत्र में काफी कार्य कर चुके हैं । लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ प्राचीन आधार नवीनताओं से सुसज्जित रहा है । इसका प्रमुख कारण था युग की माँग । युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए प्राचीन ढाँचों में नूतन रस भर दिया गया और तदर्थ प्राचीन कथा खण्डों एवं चरित्रों में नवीन प्राण प्रतिष्ठित किये गए । यह कार्य कई दिशाओं में संपन्न किया गया जिसका संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषण किया जा सकता है ।

1. बौद्धिकता

बौद्धिकता के अन्तर्गत पुराणों के अविश्वसनीय तथ्यों, घटनाओं, चरित्रों, भावनाओं को विश्वसनीय बुद्धिसंगत बनाने की प्रक्रिया आती है । विज्ञान के विकास से तत्कालीन युग तर्कबुद्धि से परिचालित रहा है और पुराणों में चित्रित अस्वाभाविक और अलौकिक घटनाओं को ज्यों का त्यों अपनाने केलिए झिझकता है । इस बात को ध्यान में रखकर, खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक वाङ्मय में चित्रित अलौकिक घटनाओं को लौकिक बनाने का प्रयास किया है । इस प्रयत्न में पुराणों के आदर्श पात्र भी गुण-दोष युक्त यथार्थ मानव के रूप में अंकित हुए हैं । खड़ीबोली के "प्रियप्रवास", "वैदेही वनवास", "साकेत", आदि सभी काव्यों में यही परिवर्तन देखने को मिलता है । प्रियप्रवास में स्वयं हरिऔध जी ने स्वीकार किया है कि उन्होंने श्रीकृष्ण को ब्रह्म के रूप में नहीं, एक महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है[1]। कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा, अटूट प्रेम एवं अनन्य विश्वास को रखते हुए भी

---

1. प्रियप्रवास - भूमिका - पृ.30

उनके अलौकिक एवं अमानवीय कार्यों को लौकिक एवं मानवीय बनाने की चेष्टा की है। उनके कृष्ण और राधा दीन-दुःखियों, वृद्धजनों तथा विपद्ग्रस्त लोगों की सेवा शुश्रूषा में व्यस्त रहते हैं। लोकसेवा में नितांत अग्रसर होने के कारण ही श्रीकृष्ण माता-पिता तथा प्रेम करनेवाली गोपियों तक को त्याग कर मथुरा चले जाते हैं। इसी प्रकार कवि ने गोवर्धन धारण से लेकर दावानल पान तक की समस्त घटनाओं को अधिक से अधिक स्वाभाविक रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। "साकेत" के राम भी अवतारी राम न होकर आदर्श मानव हैं जो नर को ईश्वरता प्रदान करके निज कर्मों से इस भू को स्वर्गवत् बनाने केलिए कृतसंकल्प हैं -

"भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।[1]

इस पर प्रकाश डालते हुए श्रीरामधारीसिंह दिनकर ने कहा है "कवि की सुदृढ़ आस्था ने राम के ईश्वरत्व में सन्देह करनेवाले युग को बड़े ज़ोर से ललकारा, किन्तु राम का रूप उन्होंने वैसे ही अंकित किया, जैसा उनका युग चाहता था। अपने हृदय के मूल में राम को परब्रह्म का अवतार मानते हुए भी बुद्धिवादी युग के इस परम आस्तिक कवि ने साकेत में उन्हें अवतार के रूप में कम, युग पुरुष के रूप में अधिक चित्रित किया है[2]। "रामचरित चिन्तामणि" में भी राम का गुण-दोष सम्मिश्रित रूप ही अंकित हुआ है। "राम-राज्य" में कवि ने राम के व्यक्तित्व का निरूपण यथार्थदर्शी लोकनायक के रूप में किया है और विज्ञान युग के ह्रास और विकास,

---

1. साकेत - पृ.167
2. पंत : प्रसाद : और मैथिलीशरण गुप्त - श्री दिनकर - पृ.18

प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता, शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा, गार्हस्थ्य जीवन की महत्ता, सहकारिता, पंचशील आदि जीवन प्रेरक प्रवृत्तियों से संचालित "राम-राज्य" की प्रतिष्ठा का आग्रह किया है । इसी प्रकार "वैदेही वनवास" में भी राम-सीता के परब्रह्म रूप से अधिक उनका लोकाराधक रूप ही सामने आता है । कवि के शब्दों में महाराजा रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकोत्तर चरित्र और आदर्श नरेन्द्र अथ महाप्राण हैं, श्रीमति जनकनन्दिनी सतीशिरोमणि और लोकपूज्या आर्यबाला है । इनका आदर्श आर्य संस्कृति का सर्वस्व है, मानवता की महनीय विभूति है और है स्वर्गीय सम्पत्ति सम्पन्न ।"[1] साकेत सन्त में राम ईश, ईश्वर, प्रभु, विश्वपुरुष आदि पौराणिक नामों से अभिहित हैं, किन्तु यहाँ जनता में जनार्दन को देखने की बात कहकर ईश्वर और धर्म की मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत करने का परिश्रम किया गया है ।[2] "जयभारत" के कृष्ण परब्रह्म से बढ़कर देशोद्धारक एवं देशसेवक हैं । वे भारत की एकता को सुरक्षित रखने के लिए कृतसंकल्प हैं । कर्ण के नायकत्व पर रचित खड़ीबोली के सभी काव्यों में श्रीकृष्ण की लीलाओं को धूर्तता का रूप प्रदान किया गया है । "सेनापति कर्ण" में कृतवर्मा ने कृष्ण का शस्त्रहीन होकर पाण्डवों की ओर रहना मात्र ढोंग माना है । 'सेनापति कर्ण' के अर्जुन भी एक संदर्भ में कृष्ण पर अविश्वास प्रकट करते हैं और उनकी बात नहीं स्वीकारते हैं ।[3] धर्मवीर भारती के कृष्ण आधुनिक जटिल मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं । उनके कृष्ण अन्धकार से आच्छादित अन्धे युग में परिस्थितियों के अनुसार अपने उद्देश्य चुनकर जीवन व्यतीत करते हैं । इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति में उन्हें कभी छल, असत्य, अमर्यादा आदि को स्वीकारना पड़ता है । आस्था, विश्वास, श्रद्धा, न्याय, सत्य, मर्यादा आदि जीवन मूल्यों को ग्रहण करनेवाले युयुत्सु कृष्ण को वंचक, कायर और शक्तिहीन घोषित करते हैं ।[4] "कनुप्रिया" में भी कृष्ण के

---

1. वैदेही वनवास - भूमिका - पृ.8
2. साकेत सन्त - 11/147,151
3. सेनापति कर्ण - पृ.164-165
4. अंधायुग - पृ.124

वैदुष्यपूर्ण चरित्र की ओर इशारा किया गया है । महाभारत युद्ध के घोर विनाश तथा विघटित मानव मूल्यों के वातावरण में, युद्ध को साकार रूप देने में अपना भी हाथ मानकर कृष्ण चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं[1] । इसी बौद्धिकता के प्रभाव में आकर ही अन्य पौराणिक सीता के अलौकिक चरित्र को लोकसेविका के रूप में तथा उदात्त द्रौपदी के चरित्र को गुण दोष सम्मिश्रित रूप में कवियों ने उपस्थित किया है इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि बौद्धिकता के प्रभाव में आकर अनेक पौराणिक पात्र खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में परिवर्तन के शिकार बन गए हैं ।

नारी की महत्ता

आधुनिक युग में नारी सम्बन्धी मान्यता बदल गई है और इसका स्पष्ट प्रभाव खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में देखा जा सकता है । आधुनिक युग में नारी को उन्नत एवं सचेष्ट बनाने के लिए तथा सामाजिक कार्यों में पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा लगाकर कार्य करने के लिए, विश्वप्रेम एवं लोकहित में तल्लीन नारियों की आवश्यकता थी और इसी आवश्यकता की पूर्ति खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से की है । उन्होंने भारतीयों के भीतर यह अनुभूति जाग्रत कराने का परिश्रम किया है कि नारी निन्दा की पात्र नहीं, पूजा की अधिकारिणी है । इस के लिए कवियों ने अनेक माध्यमों को अपनाया है । "साकेत", "साकेत सन्त", "उर्मिला" आदि काव्यों में पुराणों में उपेक्षित उर्मिला तथा माण्डवी के चरित्र को नारीत्व की उज्ज्वल विभूति के रूप में अंकित किया गया है तो प्रभात जी ने "कैकेयी" काव्य में युग युगों से कलंकित कैकेयी के चरित्र का उद्धार किया है । पुराणों के अनामी श्रद्धा, इडा, विद्युता, राधा आदि चरित्रों को कवियों ने अत्यन्त भव्य, उदात्त, क्रान्तिकारी तथा लोकनायिका तक के रूप में अंकित किया है ।

1· कनुप्रिया - पृ·82

प्रसाद जी की 'कामायनी' की श्रद्धा सारे जग को आनन्द प्रदान करनेवाली, नारी हृदय की संपूर्ण उदात्त वृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करनेवाली है। विधृता को गुप्तजी ने अत्यन्त क्रान्तिकारी एवं तेजस्वी चरित्र के रूप में ही उपस्थित किया है। पुरुष की अनीतियों एवं अत्याचारों के विरुद्ध क्रान्ति करनेवाली विधृता के माध्यम से कवि ने नारी के स्वतंत्र अस्तित्व एवं उसके अधिकारों केलिए लड़ने की आवश्यकता प्रकट की है। अंग्रेज़ी शासन की बेड़ियों को तोड़ फेंकने की युगीन आवश्यकता को प्रतिध्वनित करने केलिए गुप्तजी ने "द्वापर" में देवकी के चरित्र को परिवर्तित करके उपस्थित किया है। "द्वापर" की देवकी के दुःखपूर्ण आत्मोद्गारों में क्रान्ति की चिनगारियाँ प्रज्वलित रहती है। "प्रियप्रवास" में हरिऔध जी ने राधा को लोकनायिका के रूप में अंकित करके नारीत्व की महिमा उद्घोषित की है तो प्रयोगवादी काव्य "कनुप्रिया" में भारती जी ने पति के व्यक्तित्व निर्माण में संलग्न एक आधुनिक नारी के समान उन्हें उपस्थित किया है। "साकेत", "साकेत-सन्त" तथा "वैदेही-वनवास" में कौसल्या, सुमित्रा तथा सीता के माध्यम से स्त्री हृदय के मातृत्व की उद्घोषणा की गई है तो "द्वापर", "प्रियप्रवास" आदि में यशोदा, देवकी आदि के माध्यम से यही कार्य किया गया है। युगयुगों से कलंकित कुन्ती के मातृत्व को भी युगीन प्रभाव में आकर दिनकर जी ने "रश्मिरथी" में अत्यन्त उज्ज्वल रूप में उपस्थित किया है। "वैदेही वनवास" में सीता के माध्यम से पातिव्रत्य के महत्व का बखान करने के साथ उनके समाज सुधारिका रूप का भी उद्घाटन किया गया है। इन सबसे बढ़कर "द्रौपदी" काव्य में श्री नरेन्द्र शर्मा ने द्रौपदी को शक्ति के प्रतीक के रूप में अवतरित कराके नारी की शक्ति तथा महत्व का वर्णन किया है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि खड़ीबोली के कवियों ने युगीन परिस्थितियों के प्रभाव में आकर पौराणिक नारी चरित्रों को परिवर्तित करके अपने काव्यों में प्रस्तुत किया है।

परम्परा और आधुनिकता का संगम

खड़ीबोली हिन्दी काव्य में चित्रित पौराणिक पात्र अपने में परम्परा और आधुनिकता का अटूट संगम प्रस्तुत करते हैं। उनमें प्राचीन से प्राचीन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ ही साथ नवीन से नवीन बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों का भी समावेश मिलता है।

खड़ीबोली के कवियों ने पुराणों में चित्रित भारत की अतीत संस्कृति पर बल देते हुए विदेशी दासता की बेड़ियों से आक्रान्त, सुप्त भारतवासियों का उद्धार करने का परिश्रम किया है। द्विवेदी युग के कवियों ने धर्मपरायणता, सत्य, तप, त्याग, न्याय, अहिंसा, दान, उदारता, मैत्री आदि मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा, कर्मण्यता, आदि भारतीय संस्कृति के विशेष गुणों के अनुकूल खड़ीबोली के पौराणिक पात्रों को उपस्थित करके लोगों के सम्मुख नये नये आदर्श प्रस्तुत किए हैं।

धर्मपरायणता

प्राचीन भारत के लोग धर्मभीरु हैं। उन्होंने नैतिकता, शिष्टाचार, भक्ति, मर्यादा आदि का आचरण किया है। खड़ीबोली के कवियों ने भी अपने पात्रों को आदर्श रूप प्रदान करने केलिए धर्मपरायणता को अपनाया है। "साकेत" के सभी पात्र नैतिक शिष्टाचार एवं लोक की मर्यादा के अनुसार अपना कर्तव्यपालन करते हैं। "साकेत" के राम हमेशा अपने गुरुजनों के साथ निष्ठा एवं विनम्रता का आचरण करते हैं। माता-पिता के सामने वे आज्ञापालक रहे हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि अनुज राम के प्रति और सीता, उर्मिला, माण्डवी आदि अपने पतियों के प्रति सेवा एवं श्रद्धा भाव द्वारा पूर्ण नैतिक निष्ठा का आचरण करती हैं।

"प्रियप्रवास", "वैदेही वनवास", "नहुष", "कुरुक्षेत्र" आदि सभी काव्यों के पात्र अनुकरणीय धर्म का आचरण करते हैं। "नहुष" और "कुरुक्षेत्र" तथा "जयभारत" के युधिष्ठिर की धर्मपरायणता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज्ञा पालन तथा गुरुभक्ति में "जयभारत" के अर्जुन भी युधिष्ठिर की समता रखते हैं। अर्जुन अत्यन्त वीर शूर पराक्रमी होने पर भी माता तथा अग्रज की आज्ञा का पालन करने में कभी भी हिचकते नहीं। द्रौपदी-स्वयंवर में, द्यूत-सभा में तथा विराट युद्ध में यह पूर्ण रूप से अभिव्यक्त होता है। "जय-भारत" में अभिव्यक्ति अत्यन्त तेजस्वी और पराक्रमी भीष्म की पितृभक्ति और ब्रह्मचर्य-पालन भी सबकेलिए प्रेरणादायिनी है। गुरुभक्ति के कार्य में रामकुमार वर्मा जी के "एकलव्य" की समता करनेवाला कोई दूसरा पात्र नहीं है। अपने गुरु के नाम की रक्षा केलिए, युग युगों की साधना के फल को नष्टभ्रष्ट करने, अपना अँगूठा काटने केलिए वे तनिक भी हिचकते नहीं हैं।

मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा

तत्कालीन जीवन के मूल्यगत संक्रमण और पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों से विक्षिप्त जनता को पुनर्जागरित करने केलिए खड़ीबोली के कवियों ने सत्य, तप, त्याग, अहिंसा, दान, मैत्री, परोपकार आदि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है। "प्रियप्रवास" में हरिऔध जी ने श्रीकृष्ण और राधा की चरित्रसृष्टि के माध्यम से स्वार्थ की अपेक्षा परार्थ की, भोग की अपेक्षा त्याग की, व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा जातीय एवं राष्ट्रीय हितों की महत्ता प्रतिपादित की है। हरिऔध जी ने भौतिकता की अति से आक्रान्त स्वार्थी, विपद्ग्रस्त, अनाश्रयवान एवं स्वच्छन्द मानव समाज को परहित, परोपकार, आस्था, संयम, धर्मनिष्ठा एवं स्वदेश प्रेम का सन्देश दिया है[1]। उनके कृष्ण सत्य और नीति के सर्वदा समर्थक रहे हैं।

---

1. प्रियप्रवास - 16 / 254

"साकेत" में गुप्तजी ने प्रायः सभी पात्रों के जीवन चरित्र द्वारा समष्टि केलिए व्यष्टि के बलिदान की भावना का पूर्णतया समर्थन किया है । "साकेत-सन्त" में मिश्र जी ने भरत के चरित्र के माध्यम से दया, करुणा, शान्ति, ममता आदि जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की है । "वैदेही वनवास" में कवि ने स्वार्थ-हित-साधन को पशुता कहकर लोकहित साधन करने का आह्वान दिया है और सत्य और न्याय जैसे मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का सन्देश दिया है । "कुरुक्षेत्र" में भी त्याग, तप, स्नेह, बलिदान, विश्वास आदि मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति अनन्य आस्था व्यक्त की गई है । "उर्मिला" काव्य में नवीन जी ने सत्य, तप, त्याग, यज्ञ, विश्वबन्धुत्व, आत्मवाद आदि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया गया है । काव्य के अन्तिम सर्ग में लंका विजय के अनन्तर, विभीषण के लंकाधिपति बनने पर राम अपने लम्बे भाषण द्वारा सत्य की महिमा का बखान करते हैं । परहित भावना का सर्वोत्कृष्ट रूप "कैकेयी" काव्य की कैकेयी में देखा जाता है । देश की भलाई केलिए कैकेयी अपने वैधव्य तक को भी तृणतुल्य मानकर राम को वन भेजती हैं । "जयभारत", "नहुष" आदि के युधिष्ठिर सत्य, त्याग, दया, करुणा आदि मानवीय मूल्यों के प्रतिमूर्ति हैं । उद्धत वीर भीम भी "शकसंहार" में आकर अत्यन्त दयालु बन जाते हैं । "कामायनी" में अत्यन्त कोमल एवं उदार श्रद्धा के माध्यम से प्रसाद जी ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है । प्रगतिवादी रचनाओं में कवियों ने कर्ण के माध्यम से दान, दया, कृतज्ञता, कोमलता आदि मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति की है । प्रयोगवादी कवि भारती ने "अंधायुग" तथा "कनुप्रिया" में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा की है । कवि ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से अनास्था, अविश्वास, अमर्यादा, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध एवं आत्मघात आदि की चर्चा करते हुए अन्ततः आस्था, विश्वास, मर्यादा, सत्य, धर्म, श्रद्धा एवं सद्भाव आदि वृत्तियों की महत्ता उद्घोषित की है । विदुर एवं गान्धारी के माध्यम से कवि ने मर्यादा की महत्ता प्रतिपादित की है[1] ।

---

1. अंधायुग - पृ. 19

युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य वाक्य को आधार बनाकर कवि ने सत्य की महत्ता उद्घोषित की है । युयुत्सु अन्याय के विरुद्ध सत्य के पक्ष में युद्ध करनेवाला योद्धा है ।

कर्मण्यता

गीता, महाभारत आदि पौराणिक ग्रन्थों में कर्मनिरत होने का संदेश दिया गया है । इससे प्रेरणा ग्रहण करके खड़ीबोली के कवियों ने भी अपने पात्रों के ज़रिये कर्म निरत होकर सामाजिक विद्रूपताओं से बचाने का संदेश दिया है । दिनकर जी "कुरुक्षेत्र" में भीष्म के माध्यम से यही संदेश देते हैं ।

अकर्मण्य वह पुरुष काम
जिससे, क्या आ सकता है ?
मिट्टी पर कैसे वह कोई
कुसुम खिला सकता है[1] ?

"प्रियप्रवास" में भी भाग्यवाद के साथ साथ कर्त्तव्यपरायणता को विशेष महत्व दिया गया है । "कामायनी" में भी प्रसाद जी ने कर्मण्यता की महत्ता उद्घोषित की है । "साकेत" की सीता का चरित्र कर्मनिष्ठता का उज्ज्वल प्रतीक है । राजमहिषी होते हुए भी वे हमेशा कर्म में संलग्न रहती है । वृक्षों को सींचने में, कातने बुनने में तथा अन्य गृह कार्यों को करने में भी वे आनन्द का अनुभव करती हैं । इसी प्रकार "साकेत" की माण्डवी भी कर्मण्यता का संदेश देती दिखाई पड़ती है । "कुरुक्षेत्र" में दिनकर जी ने भीष्म के माध्यम से

---

1. कुरुक्षेत्र - पृ. 100

यही कार्य किया है तो "अंधायुग" में धर्मवीर भारती ने संजय के माध्यम से कर्मण्य होने की प्रेरणा दी है ।

विश्वबन्धुत्व की भावना

वसुधैवकुटुम्बकम् का आदर्श भारतीय जीवन दर्शन की महनीय विशेषता है । खड़ीबोली के सभी पौराणिक काव्यों में कवियों ने विशेषकर द्विवेदीयुगीन कवियों ने इस आदर्श को चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है । 'प्रियप्रवास' के कृष्ण और राधा दोनों कुटुम्ब, जाति, समाज आदि संकुचित सीमाओं से बाहर निकल कर सर्वभूतहित एवं लोक कार्य में लीन रहते हैं । 'साकेत' की उर्मिला विरह वेदना में जलते समय भी विश्व कल्याण की उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत रहती है । वे बादलों से सारे त्रिभुवन को अपनी पुष्प धारा से रस सिक्त करने की प्रार्थना करती है ।[1] "कामायनी" के प्रथम सर्ग में ही श्रद्धा मनु से मानवता की जय और विश्व के कल्याण की बात कहती है । वे किसी राष्ट्र या संस्कृति की मंगल कामना न करके सारे विश्व के अभ्युदय की कामना करती है । "उर्मिला" काव्य की उर्मिला राष्ट्रवाद में न सीमित रहकर संपूर्ण विश्व की भलाई की कामना करती हैं और त्याग द्वारा उसे प्रवृत्तिपथ पर लाने का परिश्रम करती हैं ।

गान्धीवाद का प्रभाव

सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशप्रेम, खादी तथा ग्रामोद्योग का विकास, अस्पृश्यता निवारण, नारी जागृति, समाज सेवा, साम्प्रदायिक सौहार्द की स्थापना आदि प्रमुख गान्धी के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से द्विवेदी युग तथा छायावादी युग के काव्यों में देखी जाती है । खड़ी-बोली के पौराणिक काव्यों में भी गान्धीजी के सिद्धान्तों का प्रभाव देखा जाता भगवान राम की सेवा परायणता, सर्वोदय की भावना, सीता का लोक-मिलन

---

1. साकेत - पृ.386-387

बालाओं को कातना बुनना सिखाना, उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को राष्ट्रसेविका के रूप में उपस्थित करना आदि साकेत के अनेक प्रसंग गान्धीचिन्तन के प्रभाव से सम्पन्न है । 'पंचवटी' के राम, लक्ष्मण तथा सीता के जीवन में स्वावलम्बन तथा श्रम की प्रतिष्ठा गान्धी नीति के अनुसार ही हुई है । मैथिलीशरणगुप्तजी के "जयभारत" में तथा सियाराम शरण गुप्तजी के "नकुल" काव्य में गान्धी चिन्तन के अनुसार ही सत्य, त्याग और अहिंसापूर्ण सात्विक मनोवृत्तियों को युधिष्ठिर के व्यक्तित्व में चरितार्थ किया गया है । "प्रियप्रवास" के कृष्ण और राधा भी गांधीजी के दर्शन से अछूते नहीं है । छायावाद-युग में गान्धीविचारधारा का प्रभाव अधिक व्यापक रूप में देखा जाता है । "कामायनी" की श्रद्धा के चरित्र में अहिंसा, श्रम तथा शाश्वत शान्ति के पुनीत गुणों का समावेश है जिसमें गान्धीजी की छाप स्पष्ट परिलक्षित है । मृगया प्रेमी, हिंसक तथा विलासी मनु के चरित्र को पूर्ण रूप से परिवर्तित करने में अहिंसा की अनुगामिनी श्रद्धा सफल हो जाती है । "साकेत" की सीता के समान "कामायनी" की श्रद्धा भी चरखे के स्वर में अपना स्वर मिला रही है । नवीन जी के "उर्मिला" काव्य में गान्धी-दर्शन का व्यापक प्रभाव है । "उर्मिला" के राम गान्धीजी के जैसे साम्राज्यवाद के विरोधी हैं । "साकेत-सन्त" के भरत गान्धीजी की भांति अहिंसा के परम पूजक हैं । वे हिंसा और अमानवीय नीति का विरोध करते हैं और अपने मामा युधाजित् के ऐसे विचारों की आलोचना करते हैं । 'राम-राज्य' में भी मिश्र जी ने व्यापक गान्धीवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति की है । इस काव्य में कवि ने 'राम-राज्य' की सविस्तार चर्चा करते हुए राजतंत्र, प्रजातंत्र, अहिंसा से युक्त अपनी गान्धीवादी दृष्टि का ही परिचय दिया है ।

द्विवेदी युग तथा छायावादी युग में गान्धीविचारधारा का खूब प्रचार हुआ है । लेकिन प्रगतिवाद युग में आने पर इसका स्थान मार्क्सवाद तथा साम्यवाद ने ले लिया है । दिनकर जी के "कुरुक्षेत्र" में भी धर्मराज युधिष्ठिर का चरित्र गान्धीवाद के अनुकूल है ।

मानवतावाद का प्रभाव

परम्परा और आधुनिकता के संगम का सर्वाधिक सशक्त स्वर मानवतावाद के अन्तर्गत ही मिलता है । यह विवेच्य युग का सबसे उन्नत विचार दर्शन है । पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध में भारतीय चिन्तन पर मानवतावाद का व्यापक प्रभाव पड़ा है । यह मानवतावाद भारतीयों केलिए कुछ नया नहीं, उनकी संस्कृति में, उनके पौराणिक वाङ्मय में सर्वभूतहित की भावना सन्निहित है । खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से "सर्वे सुखिन: सन्तु" की भावना को पुनरुज्जीवित किया है ।

मानवतावाद की अभिव्यक्ति खड़ीबोली के पौराणिक काव्यों में दो रूपों में हुई है - [1] साहित्य में मानव की अवतारणा के रूप में तथा उसकी महत्ता की घोषणा के रूप में, [2] शुद्ध मानव मूल्यों की स्थापना के रूप में । द्विवेदी युग के साहित्य में मानव को इतना महत्व दिया गया कि पौराणिक, धार्मिक और मानवेतर पात्रों को भी साहित्य में मानव के रूप में अवतरित किया गया है । गुप्तजी के "साकेत" में, रामचरित उपाध्याय के "रामचरित चिन्तामणि" में, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" के "उर्मिला"में हरिऔध जी के "वैदेही वनवास" में, डॉ॰ बलदेवप्रसाद मिश्र जी के "राम-राज्य" में राम को और हरिऔध जी के "प्रियप्रवास", गुप्तजी के "द्वापर" में, धर्मवीर भारती के "अन्धायुग" तथा "कनुप्रिया" में कृष्ण को मानव का रूप दिया गया है मानवतावाद का दूसरा रूप मानव मूल्यों की स्थापना के रूप में व्यक्त किया गया है । खड़ीबोली के सभी पौराणिक काव्यों में लोकोपकार, देशसेवा, समाज सेवा, एकता, समता, विश्वप्रेम आदि मानवीय मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित की गई है ।

युगविशेष के अनुसार मानवतावाद का स्वरूप भी बदलता रहा है । द्विवेदी युग के मानवतावादी कवि मानव की भलाई की आशा मात्र व्यक्त करते हैं । इसलिए उन्होंने मानव तथा नारी की महत्ता उद्घोषित की है

तथा देवों को भी मानव का आकार प्रदान किया है । गुप्तजी ने उर्मिला, कैकेयी, माण्डवी आदि अनेक उपेक्षित और कलंकित चरित्रों को मानवतावादी आलोक में भव्य बना दिया है । उनसे प्रेरणा प्राप्त करके नवीन जी ने उर्मिला के चरित्र का बलदेवप्रसाद मिश्र जी ने भरत और माण्डवी के चरित्र का तथा प्रभातजी ने कैकेयी के चरित्र का उद्धार किया है । गुप्तजी ने 'जयभारत' में नहुष के द्वारा ही मानव की महत्ता उद्घोषित की है । 'जयभारत' में मानव-सेवा एवं मानव प्रेम करनेवाले युधिष्ठिरादि पौराणिक पात्रों का चित्र खींचा गया है । "प्रियप्रवास" के कृष्ण और राधा लोकसेवा केलिए अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर देती है । छायावाद की प्रमुख रचना "कामायनी" भी मानवतावाद पर आधारित है । "कामायनी" के कथानक और काव्यफल के उपभोक्ता मानवता के जनक मनु हैं । अन्तिम सर्ग में आनन्द में आमग्न मनु, श्रद्धा तथा इडा के माध्यम से मानवता की जयध्वनि उद्घोषित करते हैं । प्रगतिवादी साहित्यकारों ने मानव की भलाई की आशा व्यक्त करते हुए उपेक्षितों के प्रति प्रेम और सहानुभूति तो व्यक्त की है और साथ ही उनके अधिकारों का जोरदार समाधान भी प्रस्तुत किया है । दिनकर आनन्दकुमार तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि साहित्यकारों ने सामाजिक विषमताओं को मिटाने केलिए साम्यवाद की प्रतिष्ठा की है तथा क्रान्ति और संघर्ष का आह्वान किया है । दिनकर "रश्मिरथी में, प्रभात 'कर्ण' में, आनन्दकुमार "अंगराज" में लक्ष्मीनारायणमिश्र "सेनापति कर्ण" में तथा रामकुमार वर्मा "एकलव्य" में वर्ण भेद, शोषण और उत्पीडन का विरोध करते हैं । कर्ण के नायकत्व पर लिखित खडीबोली के सभी काव्यों में कवियों ने कर्ण के चरित्र के माध्यम से कलंकित उपेक्षित, मानवता की मूकता को वाणी दी है । उन्होंने कुलजन्य, जातिजन्य, आभिजात्य जन्य अहंकार को मिथ्या सिद्ध कर दिया है । कर्ण के माध्यम से उन्होंने दान, त्याग, विवेक, पौरुष आदि मानवीय गुणों से

सज्जित मानव की महत्ता उद्घोषित की है । यही कार्य एकलव्य काव्य में रामकुमार वर्मा जी ने किया है । उन्होंने निषाद पुत्र एकलव्य को काव्य का नायक बनाकर व्यापक मानवतावादी जीवन दृष्टि का परिचय दिया है । "कुरुक्षेत्र" में दिनकर जी तथा 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में साम्राज्यवाद तथा अन्यायपूर्ण युद्धों की भर्त्सना करते है और मानवता के विकास और सर्वतोमुखी प्रगति केलिए विश्व-शान्ति की स्थापना पर साग्रह बल देते हैं । इस आधुनिक युग में प्रयोगवाद और नई कविता के धर्मवीर भारती जैसे कवियों ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से मानव जाति की गरिमा सुरक्षित रखने का प्रयास किया है । भारती जी ने "अंधायुग" *[illegible]* तथा "कनुप्रिया" में पौराणिक कृष्ण के चरित्र को आधुनिक जटिल मानव के रूप में उपस्थित किया है ।

युगीन समस्याओं का चित्रण

खड़ीबोली के कवियों ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से युगीन समस्याओं का चित्रण किया है । कवियों ने वर्ण व्यवस्था, छुआछूत, शोषण, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, युद्ध की समस्या आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों पर पौराणिक पात्रों के माध्यम से प्रकाश डालकर जनता को उनसे दूर रहने की चेतावनी दी है ।

वर्ण-व्यवस्था

प्राचीन काल में समाज और राष्ट्र के सुव्यवस्था केलिए समाज को चार भागों में विभक्त किया गया था जिसका आधार श्रम या कर्म था । उनमें कोई भेद भाव नहीं था और वे सभी सामाजिक दृष्टि से समान थे ।

परन्तु परवर्ती युग में, इसी कारण समाज में घोर अव्यवस्था फैल गई। अशिक्षित, अनपढ एवं पापी भी जन्म से ब्राह्मण होने लगे और सुशिक्षित एवं धार्मिक मनुष्य जन्म के कारण शूद्र। खड़ीबोली कवियों ने इस सामाजिक व्यवस्था की खुलकर निन्दा की है। प्रगतिवाद युग के "एकलव्य", "कर्ण", सेनापति कर्ण", "रश्मिरथी" आदि रचनाओं में इस व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश प्रकट किया गया। "एकलव्य" काव्य में एकलव्य के साथ दुर्व्यवहार करनेवाले विप्र द्रोण की लघुता तथा शूद्र एकलव्य की महानता की अभिव्यक्ति क्रान्तिकारी कवि श्री रामकुमार वर्मा ने स्वयं द्रोण के माध्यम से करायी है -

> तुम विप्र हो, हे शिष्य, गुरु द्रोण शूद्र है
> हाँ तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है[1]।

"एकलव्य" की महत्ता अंकित करते हुए कवि ने जन्मगत उच्चता को अन्याय और अर्जित प्रतिष्ठा को व्यक्ति का वास्तविक अर्जित धन स्थापित करने का परिश्रम किया है। कर्ण के चरित्र के नायकत्व पर लिखित सभी काव्यों में कवियों ने कर्ण के माध्यम से कुलजन्य, जातिजन्य महत्ता की निन्दा करके व्यक्ति को वैयक्तिक गुणों के आधार पर मापने की आवश्यकता प्रकट की है[2]।

छुआछूत

छुआछूत चिरकाल से भारतीय समाज की एक निन्दनीय कुरीति रही है। खड़ीबोली के कवियों ने इसके विरुद्ध सशक्त स्वर उठाया है। गुप्तजी ने अछूतोद्धार पर अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक लिखा है। "साकेत" में क्षत्रिय-कुलभूषण राम तथा निम्नवर्गीय वनवासी गुह को परस्पर गले लगाते हुए अंकित किया है और इस प्रकार अस्पृश्यता निवारण तथा ऊँच-नीच जातियों में समन्वय स्थापित करने की भावना को दृढ बनाया है। अस्पृश्य कोल-भिल्ल बालाओं को सिखाने में व्यस्त सीता, निषाद राजा गुह से प्रेम करनेवाले राम

---

1. एकलव्य - पृ.296
2. रश्मिरथी - पृ.5

चित्र खींचने में कवि की यही भावना ही कार्यरत रही है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद से आक्रान्त जनता की रक्षा केलिए "साकेत सन्त" के कवि ने भरत के माध्यम से साम्यवादी विचारों का प्रचार कराया है। "नकुल" काव्य में सियाराम गुप्तजी ने शोषण का विरोध और समता की भावना प्रकट की है। भीम, अर्जुन जैसे शक्तिशाली अनुजों कीतुलना में निर्बल और छोटे माद्री-पुत्र नकुल के जीवन केलिए प्रमुखता देनेवाले युधिष्ठिर के माध्यम से कवि ने यही भाव प्रकट किया है।

युद्ध की समस्या

दिनकर ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से "कुरुक्षेत्र" में तथा धर्मवीर भारती ने "अंधायुग" में युद्ध की समस्या पर विचार किया है। "कुरुक्षेत्र" में कवि ने साम्यवादी विचारों से प्रेरित होकर भीष्म के माध्यम से अनिवार्य परिस्थितियों में युद्ध की आवश्यकता की ओर ही इशारा किया है। उनके अनुसार समाज में जब तक विषमतायें हैं, जब दो वर्गों के सुखों में आकाश पाताल का अन्तर है तब तक युद्ध की संभावना मिटायी नहीं जा सकती। अंधायुग में कवि ने वैज्ञानिक प्रगति से अणुबम, न्यूट्रोण बम जैसे विनाशकारी आयुधों के निर्माण की होड में लगे मानव को अश्वत्थामा तथा उनके ब्रह्मास्त्र के माध्यम से परिचित कराने का परिश्रम किया है। आज के परिवेश से, युद्ध की परिस्थितियों से पीड़ित मानव अश्वत्थामा के समान स्वयमेव पशुत्व की ओर झुक जाता है तथा खीझ, झुंझलाहट तथा पागलपन में वही करता है जो अश्वत्थामा करता रहा है। धर्मवीर भारती ने वर्तमान मानव के प्रतीक के रूप में अश्वत्थामा की अभिव्यक्ति करके आधुनिक मानव को सुधारने का परिश्रम ही किया है।

"अंधायुग" में धर्मवीर भारती जी ने अन्य अनेक समस्याओं को उद्घाटित किया है। धृतराष्ट्र के माध्यम से उन्होंने वर्तमान शासक की अनीति और अत्याचारों की ओर इशारा किया है। इसी प्रकार युधिष्ठिर के माध्यम से उन्होंने वर्तमान नेता की कमियों की ओर प्रकाश डाला है। संजय के माध्यम से उन्होंने भारत के तटस्थ दृष्टिकोण पर व्यंग्य किया है तो प्रहरियों के माध्यम से आधुनिक मानव की दायित्वहीनता और उचित नेता न प्राप्त होने की समस्या को उद्घाटित किया है।

प्रतीकात्मकता

आधुनिक जीवन की जटिल स्थितियों और क्लिष्ट मनोभावों की व्यंजना के लिए खड़ीबोली के कवियों ने अपनी कविता में अनेक पौराणिक प्रतीकों और कथाप्रसंगों का सुनियोजित प्रयोग किया है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से यह प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर युग की कविता में ही अधिक देखी जाती है। इस विधान की विशेषता यह है कि कवि किसी मन:स्थिति, विचारधारा या भावदशा को पौराणिक वाङ्मय में चित्रित घटनाओं या पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्ति देने का प्रयास द्विवेदी युगीन कविता से ही देखा जा सकता है। गुप्तजी ने अपने "द्वापर" में अत्याचारी शासन को कंस, महात्मा गान्धी को कृष्ण तथा भारत माता को देवकी के रूप में अभिव्यक्त करके तत्कालीन समस्या का यथार्थ चित्र खींचा है। पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग छायावादी युग के "कामायनी" में प्रसाद जी ने अत्यन्त कुशलता से किया है। पौराणिक पात्र मनु, श्रद्धा और इड़ा के क्रमानुसार मन, हृदय और बुद्धि के प्रतीक रूप में उपस्थित करने में कवि पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। पौराणिक घटनाओं या पात्रों के

प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान की अभिव्यक्ति करने में प्रयोगवादी तथा नये कवि ही अत्यन्त प्रवीण हैं। धर्मवीर भारती ने महाभारत की घटनाओं और पात्रों के प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान का सशक्त अंकन किया है। प्रथम अंक में ही कुण्ठित महाभारत के युद्ध के दुष्परिणामों से उजड़ी हुई कौरव नगरी युद्ध की विभीषिका से ग्रस्त आधुनिक नगरी का ही प्रतीक है। आज के युग में विज्ञान की प्रगति दिन-प्रति-दिन बढ़ती रही है। और अणुबम, न्यूट्रोन बम जैसे घोर विध्वंसकारी अस्त्र शस्त्रों के निर्माण में इसका दुरुपयोग किया जाता है इसी अणुबम, न्यूट्रोन बम जैसे घोर विध्वंसकारी अस्त्र शस्त्रों के निर्माण में इसका दुरुपयोग किया जाता है। इसी अणुबम तथा न्यूट्रोन बमों के पैशाचिक दुर्दान्त, अभिशप्त प्रभाव को ही भारती ने ब्रह्मास्त्र के माध्यम से प्रकट किया है। प्रहरियों द्वारा गिद्धों को माध्यम बनाकर युद्ध की स्थिति और उलूक-काक घटना द्वारा अश्वत्थामा के द्वारा द्रौपदी के पुत्रों के हनन का निदर्शन बड़ी ही प्रतीकात्मक और सांकेतिक अभिव्यक्ति के उदाहरण हैं। तृतीय विश्वयुद्ध की त्रासदायक स्थितियों और द्वन्द्वों के बीच पलनेवाले वर्तमान युग को ज्योति और विश्वास देने के लिए कवि ने इस काव्य में मूल्यहीनता से कुण्ठित, स्वार्थान्ध, महाभारतीय युग को युद्ध के माध्यम से विध्वंस कराके कृष्ण के माध्यम से विश्वास, आस्था और सृजन की प्रेरणा प्रदान करनेवाली घटना को खींच लिया है।

इस काव्य के अधिकांश पात्र भी प्रतीकात्मक हैं। अश्वत्थामा वर्तमान परिवेश से पीड़ित आधुनिक मानव का प्रतीक है। धृतराष्ट्र वैयक्तिक सीमाओं से आबद्ध आज के शासक का प्रतिनिधि है। अठारह दिवसीय भीषण महाभारत युद्ध, सभी पुत्रों की मृत्यु तथा अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश, सब उनकी अन्धी राजनीति का दुष्परिणाम है। युधिष्ठिर तो आज के असमर्थ नेता का प्रतिनिधित्व करता है। अपने समाज ही को ही नहीं, परिवार तक को वश में करने में वे असमर्थ हैं। युयुत्सु के अपमान करने के कार्य से भीम को

रोकने तक में वे असमर्थ होते हैं । प्रहरियों के रूप में जनसाधारण की निर्लिप्तता प्रकट की गई है तो तटस्थ संजय के माध्यम से भारतीय विदेश नीति की तटस्थता ही अभिव्यंजित है । युयुत्सु निर्भीक सत्य का प्रतीक हैजिसकी दुर्दशा सत्य की दुर्दशा है । "अंधायुग" के पात्रों की प्रतीकात्मकता की चर्चा करते हुए ज्वालाप्रसाद खेतान ने लिखा है - "अंधायुग के अधिकांश पात्र निश्चित ऐतिहासिक चरित्र होते हुए भी विशिष्ट मानसिक प्रवृत्तियों, दृष्टिकोण एवं अन्तर्ग्रन्थियों के प्रतीक हैं । यह प्रतीकत्व उनके चरित्र की स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता वरन् उन्हें एक विशिष्ट भारतीय मानवीय प्रासंगिकता प्रदान करता है, जिसके कारण महाभारत की कथा के एक अंश का पुनर्कथन मात्र न रहकर "अंधायुग" मानव मन के अन्तर्गत का महाकाव्य बन गया है[1] "कनुप्रिया" में भी कवि ने पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से भावाकुल तन्मयता में डूबी राधा की प्रश्नाकुलता की अभिव्यक्ति की है । इसमें कवि ने पौराणिक प्रतीकों के साथ अन्य प्राकृतिक और सांस्कृतिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया है । रागात्मक सम्बन्धों के अंकुरण, पल्लवन, उपभोग और प्रश्नाकुल सार्थकता के काव्य-कनुप्रिया-में कवि ने प्रतीकों के माध्यम से ही रोमानी भावों की अभिव्यक्ति की है । छायावादर पावन अशोकवृक्ष राधा कृष्ण के निश्छल पावन प्रेम का प्रतीक है तो सांवली गहराई का प्रतीक (कृष्ण) केलिए प्रयुक्त किया गया है । इसी प्रकार "द्रौपदी" काव्य मे नरेन्द्रशर्मा ने मात्र पौराणिक कथा को दुहराया नहीं है । "द्रौपदी" के प्रमुख पात्र द्रौपदी को कवि ने प्रतीकात्मक रूप में ही अभिव्यक्त किया है । उन्होंने द्रौपदी को शक्ति का प्रतीक माना है और कवि के अनुसार द्रौपदी की जीवनी शक्ति ही पांच महातत्वों को संश्लिष्ट करने में सफल हुई है ।

बिम्बवाद

बिम्बों के माध्यम से भावों सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ऐन्द्रिक मूर्त आधारों के माध्यम से गोचर रूप में व्यक्त करने की प्रवृत्ति अतीव

---

1. सृजन के आयाम - ज्वालाप्रसाद खेतान - पृ.153

पौराणिक काव्यों में देखी जाती है । 'कामायनी' में अनेक पौराणिक बिम्बों का प्रयोग किया गया है । चिन्ता सर्ग में ध्वस्त देवसंस्कृति का बड़ा मोहक चित्र उपस्थित किया गया है । सुरबालाओं के श्रृंगार का चित्रण करते हुए कवि ने अनेक सौन्दर्य बिम्बों की कल्पना की है । इसका सबसे उज्ज्वल रूप प्रयोगवादी रचना कनुप्रिया में देखा जाता है । कनुप्रिया में बिम्ब के विविध रूप अभिव्यंजित है । कृष्ण की लहराती छवि का अंकन जितने सुन्दर रूप में किया गया है, वह देखिए -

> तुम्हारा साँवला लहराता हुआ जिस्म
> तुम्हारी किंचित मुड़ी हुई शंख-ग्रीवा
> तुम्हारी उठी हुई चन्दन बाहें
> तुम्हारी अपने में डूबी हुई
> अधखुली दृष्टि
> धीरे धीरे हिलते हुए
> तुम्हारे जादुभरे होंठ ।[1]

इसके अलावा इसमें व्यापार बिम्ब[2], अन्य संवेद्य बिम्ब, ध्वनि बिम्ब[3], भाव बिम्ब[4] आदि सभी प्रकार के बिम्बों की अभिव्यक्ति की गई है ।

मनोवैज्ञानिकता

मनोविज्ञान के आधार पर चरित्र विश्लेषण की प्रवृत्ति भी अंग्रेजी शिक्षा की ही देन है । स्वातन्त्र्योत्तर रचनाओं में भी चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है । लेकिन इसका

1• कनुप्रिया - पृ•70
2• वही - पृ•46-52
3• वही - पृ•51
4• वही - पृ•52-53

तात्पर्य यह नहीं कि स्वतंत्रता-पूर्व का साहित्य इससे पूर्ण रूप से अछूता है। स्वतंत्रता के पूर्व के साहित्य में भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की झलक देखी जाती है। "रामचरित चिन्तामणि" में वनवास की आज्ञा मिलने पर अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण राम-चरित्र ही उद्घाटित किया गया है। "साकेत" में भरत के त्यागी रूप के चित्रण में गुप्तजी की दृष्टि मनोवैज्ञानिक रही है। अपनी माता की कुटिल करनी से दु:ख विदग्ध भरत की मानसिक पीड़ा का कवि ने खुलकर अभिव्यक्ति की है। कैकेयी के चरित्र को भी कवि ने मनःसंघर्षयुक्त रूप में खींचा है।

"भूल अवधि सुध प्रिय से कहती जगती हुई
कभी आओ .... जाओ।"

उर्मिला का चरित्र मनोवैज्ञानिक स्तर पर काफी ऊंचा उठ गया बलदेवप्रसाद मिश्र जी ने भी मन:संघर्षयुक्त कैकेयी तथा भरत का चरित्र अंकित किया है। स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में "सेनापति कर्ण" मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है। श्रीकृष्ण की आज्ञा से युद्धविरत अर्जुन की वीरता को द्रौपदी ललकारती है। पत्नी की ललकार से अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण, श्रीकृष्ण की आज्ञा तक को धिक्कारनेवाले अर्जुन का जो चित्र मिश्र जी ने खींचा है[1] वह अत्यन्त स्वाभाविक ही है। अम्बा की कल्पित कथा के माध्यम से स्थिर आदर्श भीष्म के चरित्र में भी मिश्र जी ने मानसिक संघर्ष की अवतारणा की है[2]। "एकलव्य" काव्य मे अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण द्रोण के चरित्र को उपस्थित करके डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने द्रोण के ब्राह्मणत्व की सुरक्षा की है। मानसिक द्वन्द्व युक्त कर्ण के चरित्र को खड़ीबोली के काव्यों में अनेक प्रसंगों में उठाया है। "रश्मिरथी" के कुन्ती-कर्ण-संवाद में कुन्ती की मानसिक व्यथा को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से आंक कर दिनकर जी ने उनके मातृत्व की सुरक्षा की है। "सेनापति कर्ण" में भीम का चरित्र भी मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। कुल के विचार से हिडिम्बा तथा अपने पुत्र घटोत्कच को त्यागने केलिए मजबूर भीम की जो मानसिक व्यथा इसमें खोल दी गई है

1॰ सेनापति कर्ण - पृ॰164 2॰ वही - पृ॰107

वह अत्यन्त मनोरम बन गया है । घटोत्कच को युद्धभूमि में भेजने के अवसर पर भी अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण भीम का चरित्र कवि ने प्रस्तुत किया है[1] और इस प्रकार भीम के परम्परागत चरित्र की कठोरता में कोमलता का पुनस्पर्श किया है । इन सबसे बढ़कर धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' के अश्वत्थामा के चरित्र में कवि ने मानसिक संघर्ष की अवतारणा की है । परिस्थितियों से प्रेरित होकर नैरय युद्ध में कुत्सित आचरण करनेवाले अश्वत्थामा की मनःस्थिति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या द्वारा कवि ने उन्हें कलंक कालिमा से बचा दिया है[2] ।

निष्कर्ष

निर्वेयक्तक के खड़ीबोली के पौराणिक पात्रों का मूल्यांकन करने पर यह देखा जा सकता है कि मात्रा में अन्तर होने पर भी युगीन परिस्थितियों के प्रभाव में अधिकांश पौराणिक पात्र परिवर्तन के शिकार बन गए हैं । कवि के व्यक्तित्व तथा युगीन प्रभाव में आकर कतिपय पवित्र पौराणिक पात्रों जैसे राम, सीता, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, द्रौपदी, विभीषण, सुग्रीव, मनु आदि चरित्रों को हेय बना दिया गया है तो कतिपय बुरे आचरण करनेवाले पौराणिक पात्रों जैसे रावण, दुर्योधन, कैकेयी, द्रोण, अश्वत्थामा शूर्पणखा, कुन्ती, हिडिम्बा, भीम आदि के हीनत्व की मात्रा कम करके उन्हें महान बना दिया गया है तो कतिपय पात्र जैसे नन्द, यशोदा, देवकी, गान्धारी, कौसल्या, सुमित्रा आदि के पवित्र पौराणिक चरित्र को सशक्त बनाकर उभार दिया गया है । भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, अभिमन्यु जैसे कुछ ऐसे भी पात्र हैं जिनको खड़ीबोली के कवियों ने पूर्ण बना दिया है । इन सबसे बढ़कर नारी जागरणवाद के प्रभाव में आकर खड़ीबोली के कवियों ने पुराणों में उल्लिखित अनेक नारी चरित्रों जैसे उर्मिला, माण्डवी, राधा, विद्युता, श्रद्धा, इड़ा आदि को अत्यन्त उदात्त और उज्ज्वल रूप में उपस्थित किया है ।

1. सेनापति कर्ण – पृ.21।
2. वही – पृ.10-15

अछूतोद्धार के प्रभाव में आकर जाति में निकृष्ट एकलव्य तथा कर्ण के नायकोचित गुणों की खुलकर अभिव्यक्ति की है । वर्तमान शासक के अत्याचारों और अनीतियों की अभिव्यक्ति के लिए धर्मवीर भारती ने धृतराष्ट्र के चरित्र को औंधा भी हेय बनाकर वर्तमान शासक के प्रतीक के रूप में उपस्थित किया है । अत्यन्त पवित्र आचरण करनेवाले राम और सीता के चरित्र को अधिकांश खड़ीबोली के कवियों ने लोकनायक और लोकनायिका के रूप में उपस्थित किया है । रामचरित चिन्तामणि में राम के मानवीयत्व की उद्घोषणा के लिए वनवास की आज्ञा मिलने पर अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण राम के मानस का उद्घाटन किया जो पौराणिक राम से सर्वथा पृथक रहा । परब्रह्म श्रीकृष्ण को हरिऔध जी ने लोकनायक के रूप में उपस्थित किया । धर्मवीर भारती ने गुण-दोष सम्मिलित आधुनिक जटिल मनुष्य के प्रतीक के रूप में श्रीकृष्ण को देखा । इस प्रकार पुराणों के आदर्श पात्र धीरे धीरे युगीन प्रेरणाओं के आलोक में सीढ़ी दर सीढ़ी यथार्थ की ओर विकसित होते हुए आधुनिक जटिल मनुष्य तक पहुँच गये हैं । खड़ी-बोली हिन्दी काव्य इसका स्पष्ट निदर्शन है ।

उपसंहार

उपसंहार

रामायण, महाभारत तथा पुराणों में भारतीय मनीषा तथा तत्वचिन्तता को आख्यानों के द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है। सृष्टि के आरंभ से ही, जबसे मानव अस्तित्व में आया है, मिथकों का अस्तित्व निरन्तर बना हुआ है। काव्यशास्त्र में पुराण, पुराख्यान आदि शब्दों का प्रयोग मिथक के समानान्तर शब्द के रूप में मिलता है। अज्ञेय के शब्दों में मिथक या पुराख्यान एक रहस्यमय शक्तिस्रोत है। उन्होंने सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान और उसकी सुरक्षा केलिए मिथकों की महत्ता प्रतिपादित की है। हिन्दी काव्य के प्रत्येक युग के महत्वपूर्ण कृतित्व पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट होगा कि समस्त लोकप्रिय रचनाओं का आधार किसी न किसी रूप में मिथक या पुराख्यान ही रहा है। खड़ी-बोली के भी अनेक कवियों ने मिथकों का प्रयोग किया है। प्रियप्रवास, साकेत, द्वापर, जयभारत, कामायनी, सेनापति कर्ण, कौरव, कर्ण, द्रौपदी, अंधायुग, कनुप्रिया आदि जितनी भी महत्वपूर्ण रचनाओं की चर्चा हम आधुनिक हिन्दी काव्य में पाते हैं, सबके आधार ये पुराख्यान ही हैं।

---

1. मिथक और भाषा - अनिल कुमार तिवारी

मिथकों का प्रयोग करनेवाले प्राचीन और नवीन युग के कवियों में अवश्य अन्तर रहता है । आधुनिक युग के काव्यों में चित्रित पौराणिक आख्यानों में अतीत का जड मोह नहीं देखा जाता । पुराकथाओं के माध्यम से आधुनिक कवि एक ओर जहाँ परम्परा से जुडे हैं तो दूसरी ओर युग जीवन के समर्थ चित्रण द्वारा आधुनिकता से संबद्ध रहे हैं । काव्य के क्षेत्र में परम्पराओं से तात्पर्य उन आदर्शों, रीतियों एवं स्थापनाओं से है जो पूर्ववर्ती कवियों से उत्तरवर्ती कवियों को प्राप्त होती चली आई हैं । वस्तु, चरित्र, भाव, तुक, लय, छन्द, रूप, भाषा एवं अप्रस्तुत विधान में इनका अस्तित्व मिलता है । परम्पराओं की स्वीकृति से यह लाभ होता है कि जो कुछ परम्परागत निधि है, वह सुरक्षित रहती है । पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने परंपरा की महत्ता के बारे में लिखते हुए कहा है - "कोई भी देश अपनी साहित्यिक परंपरा से नाता नहीं तोड सकता । अतीत का प्रभाव वर्तमान पर पडता ही है । इसके साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि भारतीय परंपरा बहुत पुरानी है । पुरानी ही नहीं, वह अतिशय समृद्ध भी है । ऐसी स्थिति में यह संभव नहीं है कि हम अपनी सारी विरासत को छोडकर दूसरे देशों के साहित्यों का छिछला अनुकरण करने लगें[1] ।" यही नहीं, "कवि के लिए अतीत की चेतना से प्रभाव ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक होता है । उसको इस चेतना का विकास जीवन पर्यन्त करते रहने की आवश्यकता है[2] । इस प्रकार रामायण, महाभारत तथा पुराणों में कविता के रूप में साकार हुई भारत की अमूल्य परंपरा भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप ही प्रस्तुत करती है । ये ग्रन्थ परवर्ती समस्त भारतीय काव्य साहित्य के आदिस्रोत हैं और इनका प्रभाव आधुनिक हिन्दी साहित्य पर भी देखा जा सकता है । खडीबोली हिन्दी काव्य के विवेचन के संदर्भ में इन प्राचीन स्रोत ग्रन्थों की विशेष महत्ता रही है ।

1· नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य : नये प्रश्न - पृ·128

2· टी·एस· इलियट - सिलेक्टेड प्रोज - पृ·25

पुराकथाओं से संबंधित आधुनिक काव्य में पुराण कथाओं का उल्था मात्र नहीं हुआ करता, बल्कि आधुनिकता इनमें पूर्ण रूप से झलकती रहती है । आधुनिकता का तात्पर्य परंपरा की उपेक्षा अथवा विरोध नहीं है, वरन् मृत एवं खण्डित रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों को त्याग कर जीवन्त पक्ष को आत्मसात् करती हुई अग्रसर होनेवाली एक सतत गत्यात्मक एवं विकासवान प्रक्रिया का नाम है । भारतेन्दु युग से आधुनिकता प्रारंभ होती है और छायावाद-युग में यह एक नये धरातल पर प्रतिफलित होती है । प्रयोगवाद तथा नई कविता में इसका सर्वोच्च विकास देखा जाता है । आज का मनुष्य तो अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों और असंगतियों से ग्रस्त है । वर्तमान जीवन और जगत में पुरानी नैतिक धारणाएं लुप्त हो गई हैं । सारे जीवन मूल्य नष्टभ्रष्ट हुए हैं और सर्वत्र अराजकता, घुटन, विघटन आदि लक्षित होते हैं । इस स्थिति में नये कवियों ने अतीत की निधि को समाजिक यथार्थ से मिलाकर चित्रित किया है । गुप्तजी जैसे पुनरुत्थानवादी कवियों ने अतीत निधि के प्रकाश में सांस्कृति गौरव की खोज की; प्रसाद जैसे छायावादी कवियों ने इन्हीं के ज़रिए सौन्दर्य के दर्शन किए, दिनकर जैसे प्रगतिवादी कवियों ने पौराणिक आख्यानों में प्रगति के स्वर सुनाए तो नये कवियों ने इतिहास और पुराणों में आधुनिक जीवन में व्याप्त घुटन, कुण्ठा, दिशाहीनता आदि की मन:स्थितियों की व्यंजना की खोज की । इसका प्रभाव इनके द्वारा चित्रित चरित्रों पर भी व्यक्त देखा जा सकता है ।

खड़ीबोली हिन्दी कवियों ने पुराणों में चित्रित अनेक असंभव और अलौकिक घटनाओं को संभव और लौकिक बनाकर चित्रित करने का परिश्रम किया है । इसके फलस्वरूप इन काव्यों में चित्रित चरित्रों का रूप भी पौराणिक चरित्रों की अपेक्षा नवीन बन गया है । नये कवियों ने निराशा, अनास्था, अविश्वास, कुण्ठा, संघर्ष, शोषण, असमानता, पराधीनता जैसे नवमानवीय यथार्थ को परिभाषित करनेवाले शब्दों को पौराणिक संदर्भ में भी

---

1. नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका - डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल - पृ॰

यथावत् प्रस्तुत करने का परिश्रम किया है । यथार्थ का मार्मिक वर्णन करने केलिए नया कवि व्यंग के माध्यम से मिथक या पुराख्यान का प्रयोग करने लगा । यह नई प्रवृत्ति विषय विधान के साथ साथ चरित्रों में भी संक्रमित मिलती है ।

पुनरुत्थानवादी कवियों में प्रमुख है मैथिलीशरणगुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध आदि । उन्होंने भारत के कगार पर खड़ी भारतीय जनता का उद्धार करने केलिए समस्त पौराणिक पात्रों को परिवर्तित करके, उनकी दुर्बलताओं को धोकर उज्वल आदर्श मूर्ति के रूप में उपस्थित किया है । एक ओर उन्होंने पौराणिक राम और कृष्ण की अलौकिकता के आवरण को हटाकर उनको आदर्श मानव का रूप प्रदान करने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर दुर्बलताओं से युक्त पौराणिक पात्रों जैसे कर्ण, द्रौपदी, भीम, अश्वत्थामा, युधिष्ठिर, द्रोण, भीष्म आदि सभी चरित्रों को पूर्ण आदर्श रूप प्रदान किया है । अनेक उपेक्षित पात्रों जैसी माण्डवी, उर्मिला, लक्ष्मण आदि के चरित्रों को अत्यन्त आदर्शात्मक रूप में उजागर किया है । गुप्तजी के अधिकांश पात्र आदर्शात्मक चरित्र प्रस्तुत करते हैं, लेकिन देवकी, विधृता आदि के परिवर्तित चरित्रों के माध्यम से कवि ने क्रान्ति का शंखनाद भी मुखरित किया है । छायावाद युग में पुराणों से संबन्धित काव्य लिखनेवाले कवियों में प्रसादजी अग्रणी हैं । उन्होंने श्रद्धा, इडा आदि पौराणिक नारी पात्रों की अत्यन्त भव्यात्मक प्रस्तुति की है जिन चरित्रों की ओर पुराणों में मात्र संकेत है । प्रगतिवादी कवियों ने कलंकित पौराणिक पात्रों जैसे कर्ण, कैकेयी, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि की कलंक कालिमा को धोकर उनका क्रान्तिकारी रूप प्रस्तुत किया है । इस कोटि के प्रमुख कवि आनन्दकुमार तथा लक्ष्मी-नारायणमिश्र हैं । उनके इस प्रयास में अनेक पौराणिक आदर्श चरित्र अपनी महिमा खो बैठे हैं । कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि पात्रों के कलंकित चरित्र को पवित्र बनाने के प्रयास में कवियों ने महाभारत के युधिष्ठिर, अर्जुन, द्रौपदी आदि प्रमुख पात्रों के चरित्रों को कलंकित कर दिया है । आगे चलकर प्रयोगवादी और नये कवियों ने पौराणिक पात्रों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से

तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को प्रकाश में लाने का परिश्रम किया है। असमर्थ राजनीतिक नेता के प्रतीक के रूप में युधिष्ठिर को लेकर, समाज की बर्बरता, पाशविकता आदि से पीड़ित आधुनिक मानव के प्रतीक के रूप में अश्वत्थामा को लेकर, वर्तमान शासक के प्रतीक के रूप में धृतराष्ट्र को लेकर तथा सत्य की त्रासदी के जीते जागते प्रतीक के रूप में युयुत्सु को लेकर, धर्मवीर भारती ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से समसामयिक यथार्थ से जुड़ने का परिश्रम किया है। समसामयिक कुण्ठा और यथार्थ से संबद्ध रखने केलिए कृष्ण की केलिसखी के रूप में विख्यात राधा के चरित्र को भारती जी ने आधुनिक रोमान्टिक नारी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। "कनुप्रिया" की राधा मात्र कृष्ण की केलिसखी नहीं है बल्कि वह कृष्ण की सखी, सहचरी, बांधवी, केलिसखी, मित्र, माँ आदि सभी के दायित्वों का वहन करती है और कृष्णके औद्योगिक जीवन-इतिहास निर्माण के कार्य में भी सहायता देती है। उसके माध्यम से कवि ने पुरुष के व्यक्तित्व निर्माण के साथ साथ उसके औद्योगिक जीवन में भी सहायता देनेवाली आधुनिक नारी की महत्ता उद्घोषित की है। इस प्रकार नरेन्द्र शर्मा ने शक्ति के प्रतीक के रूप में द्रौपदी को प्रस्तुत किया और उसके माध्यम से स्त्री और स्त्रीत्व की महिमा उद्घोषित की।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि खड़ीबोली के कवियों ने बदलते जीवन दर्शनों के अनुरूप पौराणिक पात्रों को परिवर्तित करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और इस प्रयासमें वे सफल भी हुए हैं। अतीत के माध्यम से वर्तमान को समझाने का जो प्रयास आलोच्यकाल के पौराणिक काव्यों में किया गया है, वह पूर्ण रूप से श्लाघनीय ही है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

खड़ीबोली हिन्दी काव्य (1900 - 1968) सूची

1.	अंगराज	श्री आनन्दकुमार
2.	अंधायुग	डॉ॰ धर्मवीर भारती
3.	अभिमन्यु का आत्मदान	श्री कमलाप्रसाद वर्मा
4.	अभिमन्यु वध	पं॰ रामचन्द्र शुक्ल
5.	एकलव्य	डॉ॰ रामकुमार वर्मा
6.	उर्मिला	श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
7.	कर्ण	श्री केदारनाथ मिश्र "प्रभात"
8.	कामायनी	श्री जयशंकर प्रसाद
9.	कनुप्रिया	डा धर्मवीर भारती
10.	कुरुक्षेत्र	डा रामधारी सिंह दिनकर
11.	कैकेयी	श्री केदारनाथ मिश्र "प्रभात"
12.	कौशल किशोर	श्री बलदेवप्रसाद मिश्र
13.	जयद्रथ वध	श्री मैथिली शरण गुप्त
14.	जयभारत	वही
15.	त्रिपथगा	श्री भगवतीचरण वर्मा
16.	द्रौपदी	श्री नरेन्द्र शर्मा
17.	द्वापर	श्री मैथिली शरण गुप्त
18.	नकुल	श्री सियाराम शरण गुप्त
19.	पंचवटी	श्री मैथिलीशरण गुप्त
20.	पांचाली	डा रांगेय राघव
21.	प्रदक्षिणा	श्री मैथिलीशरण गुप्त
22.	प्रियप्रवास	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"
23.	बकसंहार	श्री मैथिलीशरण गुप्त

24.	रश्मिरथी	डॉ॰ रामधारी सिंह दिनकर
25.	राम की शक्तिपूजा	श्री॰ सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"
26.	रामचन्द्रिका	श्री॰ रामचरित उपाध्याय
27.	रामचरित चिन्तामणि	वही
28.	रामचरित मानस	लोकनायक तुलसीदास
29.	राम राज्य	श्री॰ बलदेवप्रसाद मिश्र
30.	वन वैभव	श्री॰ मैथिलीशरण गुप्त
31.	वैदेही वनवास	श्री॰ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
32.	साकेत	श्री॰ मैथिलीशरण गुप्त
33.	साकेत सन्त	श्री॰ बलदेवप्रसाद मिश्र
34.	सेनापति कर्ण	श्री॰ लक्ष्मीनारायणमिश्र

संस्कृत ग्रंथ

वाल्मीकिरामायण

महाभारत

आध्यात्मरामायण

उत्तररामचरित

ब्रह्मपुराण

पद्मपुराण

विष्णुपुराण

शिवपुराण

भागवतपुराण

नारदीयपुराण

मार्कण्डेय पुराण

अग्निपुराण

भविष्यपुराण

ब्रह्मवैवर्तपुराण

लिङ्गपुराण

वराह पुराण

स्कन्द पुराण

वामन पुराण

कूर्मपुराण

मत्स्यपुराण

गरुड़पुराण

ब्रह्माण्डपुराण

साहित्यदर्पण

आलोचनात्मक ग्रंथ

1. अंधायुग - एक सृजनात्मक उपलब्धि — श्री सुरेश गौतम, साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली - 6, 1973
2. अभिनव साहित्यिक निबन्ध — डॉ. सर्वेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 197
3. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ — प्रेम प्रकाश गौतम, सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा-3, 1972
4. आधुनिक काव्य में नवीन जीवनमूल्य — हुकमचन्द, भारतीय संस्कृत भवन, माई हीरा गेट, जालन्धर, 1972
5. आधुनिक परिवेश और नवलेखन — शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती, इलाहाबाद, 1970

6. आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य देवीप्रसाद गुप्त
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1971

7. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य कृष्णबिहारी मिश्र
आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1972

8. आधुनिक साहित्य नन्ददुलारे वाजपेयी
भारती भण्डार, इलाहाबाद, 19(

9. आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका शंभुनाथ पाण्डेय
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 19

10. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
द्वि.सं. 1962

11. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान - डॉ. केदारनाथ सिंह
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली-6, 19

12. आधुनिक हिन्दी कवितामें शिल्प डॉ. कैलाश वाजपेयी
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6,

13. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्यसिद्धान्त - डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 6

14. आधुनिक हिन्दी काव्य डॉ. भागीरथ मिश्र और डॉ. बलभद्र तिवारी
मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल

15. आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-

16. आधुनिक हिन्दी काव्य में परंपरा तथा प्रयोग — डॉ॰ गोपालदत्त सारस्वत, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, 1961

17. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन — डॉ॰ गणेश दत्त गौड़, सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा, 1965

18. आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान — डॉ॰ श्यामनंदन किशोर, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, 19[illegible]

19. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास — डॉ॰ श्रीकृष्णलाल, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग, चौथा सं॰ 1965

20. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका — लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद, 195[illegible]

21. उर्वशी : एक अध्ययन — टी॰ मधुसूदन, शास्त्र साहित्य भण्डार, आगरा, मस्जिद डिस्पेन्सरी, दिल्ली, 1969

22. उर्वशी - एक नवीन दृष्टि — डॉ॰ सतीशकुमार भार्गव, हिमाचल प्रकाशन, 3014, वैदवाड़ा, दिल्ली-6, 1978

23. एकलव्य - डॉ॰ रामकुमार वर्मा का काव्य — प्रेमनाथ तिवारी, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, [illegible]

24. काँग्रेस का इतिहास, पहला भाग — डॉ॰ पट्टाभि सीतारामैया, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली 1958

25· कविता के नये प्रतिमान — डॉ॰ नामवरसिंह
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
दिल्ली,6, प्र॰सं॰1970

26· कामायनी : अनुशीलन — रामलाल सिंह
इण्डियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड,
प्रयाग, सं॰1970

27· कामायनी - इतिहास और रूपक — सुशीला भारती
मिलिन्दा प्रकाशन, 588
बोकरवाडी,हैदराबाद-2, सं॰196[illegible]

28· कामायनी-चिन्तन — विमलकुमार जैन
भारती साहित्य मन्दिर,फव्वारा
दिल्ली, सं॰1965

29· कामायनी में काव्य संस्कृति और चिन्तन — डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
विनोद पुस्तक मन्दिर, हॉस्पिटल
आगरा, सं॰1958

30· काव्य शास्त्र — भागीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
द्वि॰सं॰1963

31· क्योंकि समय एक शब्द है — रमेश कुन्तल मेघ (कापीराइट)
लोकभारती प्रकाशन, 15 ए,
महात्मागान्धी मार्ग, इलाहाबाद
197[illegible]

32· गान्धी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव — अरविन्द जोशी
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ॰प्र॰

33. कुरुक्षेत्र — श्री रामधारी सिंह दिनकर
उदयाचल, आर्यकुमार रोड,
पटना-4, 1956

34. छायावाद के गौरव चिन्ह — प्रो. क्षेम
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी, 1962

35. छायावाद : स्वरूप और व्याख्या — राजेश्वर दयाल सक्सेना
अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, 1963

36. छोड़ा हुआ रास्ता — अज्ञेय
राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट,
दिल्ली, 1975

37. त्रिशंकु — अज्ञेय
सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर
1973

38. त्रिवेणी — श्री रामचन्द्र शुक्ल
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी,
18 सं.1962

39. दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र — प्रो. देवराजसिंह भाटी
अशोक प्रकाशन, नई सड़क,
दिल्ली-6, 1962

40. दिनकर की उर्वशी — रमाशंकर तिवारी
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
1962

41• द्वापर-एक विवेचन — डॉ० एम०सुनीता बाई
गीता प्रकाशन, कोचिन-25 केरल,
1972

42• द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास — लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट,
दिल्ली, 1973

43• द्विवेदी युगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव — भक्तराम शर्मा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली-7, सं०191

44• धर्मवीर भारती — लक्ष्मणदत्त गौतम (संपादक)
कुमार प्रकाशन, 20/5 मोती नगर,
नई दिल्ली, सं०1974

45• धर्मवीर भारती-कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ — डॉ० बृजमोहन शर्मा
भारती भाषा प्रकाशन, 518/6 ई
विश्वास नगर, शाहदरा,
दिल्ली-32, सं०1976

46• धर्मवीर भारती - साहित्य के विविध आयाम — डॉ० हुकुमचन्द राजपाल
विभु प्रकाशन, साहिबाबाद-2010
सं०1980

47• नई कविता की नाट्यमुखी भूमिका — डा० हुकुमचन्द राजपाल
वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमला नग
दिल्ली-7, सं०1976

48• नई कविता में वैयक्तिक चेतना — डॉ०लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, सं०19

49• नया हिन्दी काव्य — डॉ० शिवकुमार मिश्र
अनुसन्धान प्रकाशन, 87/259,
आचार्य नगर, कानपुर, सं०1962

50. नया हिन्दी काव्य और विवेचना — डॉ॰ शंभुनाथ चतुर्वेदी
नंद किशोर एण्ड सन्स, चौक
वाराणसी, सं॰1964

51. नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य — लक्ष्मीनारायण शर्मा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-6,
1967

52. नवजागरण और छायावाद — महेन्द्रनाथ राय
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-6

53. परंपरा का मूल्यांकन — रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
सं॰1981

54. पुराण विमर्श — बलदेव मिश्र

55. पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन — रामशंकर भट्टाचार्य
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,

56. पौराणिक आख्यानों का विकासात्मक अध्ययन - उमापतिराय चन्देल
कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, 1975

57. प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन — डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
राजकिशोर अग्रवाल, विनोद पुस्तक
मन्दिर, आगरा, सं॰1960

58. प्रियप्रवास समीक्षा — प्रो॰कृष्णकुमार पाठक शास्त्री
अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
1962

59· भागवत दर्शन — डॉ॰हरवंशलाल शर्मा
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 196

60· भारतीय काव्यशास्त्र — रामचन्द्र वर्मा शास्त्री
अनीता प्रकाशन, दिल्ली-6, 1976

61· भारतीय नवजागरण प्रणेता तथा आन्दोलन — गौरीशंकर भट्ट
साहित्य सदन, देहरादून, 1968

62· भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा — बलदेव उपाध्याय
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराण
1956

63· भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — ब्रजरत्नदास
हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,
तृतीय संस्करण, 1962

64· भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि — श्रीमती कमला कानोडिया
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
1971

65· महाभारत की कथाओं पर आधारित हिन्दी काव्य — डॉ॰ राघव प्रसाद पाण्डेय
विकास हरमू रोड, राँची (बिहार,
सं॰1971

66· मानवतावाद और साहित्य — नवलकिशोर
अरविन्द कुमार, राधाकृष्ण प्रकाश
दिल्ली-6, 1972

67· मिथक और साहित्य — डॉ॰ नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल
जयपुर, इलाहाबाद, सं॰1979

68. मैथिलीशरण गुप्त-कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता — उमाकान्त, हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, द्वि.सं. 1964

69. मैथिलीशरण गुप्त - व्यक्ति और काव्य - डॉ. कमलाकान्त, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, चाँदनी चौक, दिल्ली-6, सं. 1960

70. युगचेता दिनकर और उनकी उर्वशी — डॉ. राजपाल शर्मा, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6 सं. 1973

71. रामकथा — फादर कामिल बुल्के, हिन्दी प्रचार परिषद् प्रकाशन, 19

72. रामकथा और तुलसी — डॉ. भ.ह. राजूरकर, पुस्तक संस्थान, 109/50 ए नेहरू नगर, कानपुर, 208012, सं. 19

73. रामकथा के पात्र — डॉ. भ.ह. राजूरकर, ग्रंथम, रामबाग, कानपुर, 12, सं. 1

74. रामकाव्य की भूमिका — श्री जगदीश प्रसाद शर्मा, ग्रन्थम, कानपुर, 12, सं. 1968

75. लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक - डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, हिन्दी साहित्य संसार, पटना-4, सं. 1967

76॰ संस्कृति के चार अध्याय — डॉ॰ रामधारीसिंह दिनकर
उदयाचल, पटना । सं॰1962

77॰ सियारामशरण गुप्त — डॉ॰ नगेन्द्र [संपादक]
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
द्वि॰ सं॰1965

78॰ सूर और उनका साहित्य — डॉ॰ हरवंशलाल शर्मा
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।

79॰ हरिऔध शती-स्मारक ग्रन्थ — डॉ॰ कामताप्रसाद सक्सेना 'निर्मल'
निर्मल प्रकाशन संस्थान, जयपुर-4
सं॰1975

80॰ हिन्दी कविता - आधुनिक आयाम — डॉ॰ रामदरश मिश्र
वाणी प्रकाशन, 61 एफ कमला
नगर, दिल्ली-110007, सं॰1978

81॰ हिन्दी और उसके कलाकार — श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
सं॰1955

82॰ हिन्दी कविता में युगान्तर — सुधीन्द्र
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,
सं॰1957

83॰ हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य — डॉ॰ सिस्टर क्लेमेंट मेरी
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद

84॰ हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध कविता का पौराणिक आधार — डॉ॰ नन्दकिशोर नंदन
नन्दन प्रकाशन संस्थान, श्रीराम न
शाहदरा, दिल्ली-110032, सं॰1

85• हिन्दी के पौराणिक नाटक — डॉ• देवर्षि सनाढ्य शास्त्री
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1,
सं•1961

86• हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत - शशि प्रभा शास्त्री
राजकमल प्रकाशन, प्रा•लि•, सं•19

87• हिन्दी भाषाऔर साहित्य कोके आर्यसमाज की देन — लक्ष्मीनारायणलाल गुप्त
लखनऊ विश्वविद्यालय, सं•1961

88• हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्यांकन — डॉ• देवीप्रसाद गुप्त
अशोका पब्लिकेशन, जयपुर-3, 196

89• हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व- भाग-1 — डॉ• कामताप्रसाद सक्सेना "अनिल"
निर्मल प्रकाशन संस्थान,
जयपुर-4, सं•1973

90• हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व भाग-2 — वही सं•1974

91• हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य - श्री अज्ञेय
हिन्दी राधाकृष्ण प्रकाशन,
दिल्ली, सं•1967

92• हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ•नगेन्द्र
कुमार प्रकाशन, नई दिल्ली, 197

93• हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
16 वाँ सं•1968

94· हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास — गणपति चन्द्रगुप्त
भारतेन्दु भवन, चंडीगढ़-2, सं॰1965

95· हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ — प्रो॰ शिवकुमार शर्मा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6, सं॰19

96· हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास नवम भाग — कमलापति त्रिपाठी [संपादक]
सुधाकर पाण्डेय
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं॰1

97· हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास चतुर्थ: भाग — डॉ॰ हरवंशलाल शर्मा और
डॉ॰ कैलाशचन्द्र भाटिया [संपादक]
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं॰1

अंग्रेजी ग्रंथ

98. A History of Indian Literature—M. Winterning
University of Calcutta, 19

99. History of Freedom movement in India, Vol.I — R.C. Majumdar
Firma, K.L. Mukhopadyaya, Calcutta, 1962

100. Cultural Heritage of India — Haridas Battacharya
The Ramakrishna Mission Institute ofCalcutta, 1956

101. Lectures on the Ramayana — V.S. Srinivasa Sastri
Madras Sanskrit Academy, 19

पत्रिकाएँ

1.	अनुशीलन	हिन्दी विभाग, कोचिन विश्व कोचिन-22, सं. 1973
2.	ज्योत्स्ना	ज्योत्स्ना बंधु-कुटी, पथ 8, राजेन्द्र नगर, पटना-16, सन् 1976
3.	नई धारा	अशोक प्रेस, गोरखपुर, पटना - 14, सन् 1972